संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का 102वाँ पुष्प

संस्कृतशिक्षा का सशक्तीकरण : मुद्दे एवं चुनौतियाँ

प्रधान सम्पादक

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय

कुलपति

अध्यक्ष, सम्पादक मण्डल

प्रो. रमेश प्रसाद पाठक

संकायाध्यक्ष

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली - 110016

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का 102वाँ पुष्प

संस्कृतशिक्षा का सशक्तीकरण : मुद्दे एवं चुनौतियाँ

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान सङ्काय द्वारा आयोजित

संगोष्ठी-कार्यवृत्त

(Seminar Proceedings)

27 - 28 मार्च 2014

प्रधान सम्पादक

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय

कुलपति

प्रकाशक:
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालय:)
कुतुब सांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

आई.एस.बी.एन : 81-87987-75-8

प्रकाशन वर्ष - 2015

मूल्यम् : ₹ 330/-

मुद्रक:
अमरप्रिंटिंगप्रैस:
8/25 विजयनगरम्, देहली-११०००९
दूरभाष: : 9871699565, 8802451208

नैवेद्यम्

शिक्षा ज्ञानस्य साधनमस्ति तद् ज्ञानमखण्डं प्रकाशरूपञ्चास्ति। प्रकाशस्य कर्त्ता सूर्यः, सूर्याभावे अग्निः वर्तते। अग्निः पुरोहितोऽपि वर्तते। तस्मात्कारणाद् ऋग्वेदस्य प्रथमे मन्त्रे अग्निदेवमर्चयति ऋषिः **''अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्''** प्रकाशरूपं ज्ञानं सर्वप्रथमं सर्वोपरि स्थितम्भवति। संसाररूपस्य यज्ञस्य एतद् देवरूपम्भवति यथा देवाः यज्ञं सम्यक्तया चालयितुं व्यवस्थां कुर्वन्ति एवमेव जनाः ज्ञानम्प्राप्य सांसारिककार्याणि सुचारुसम्पादयितुं शक्नुवन्ति।

शिक्षा एका सतत प्रक्रिया वर्तते। ऋग्वेदस्य द्वितीये मन्त्रे **''अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यः स नूतनैरुत।''** यथा अग्निः पूर्वैः ऋषिभिः आराध्यः आसीत् अनन्तरकालिकैः ऋषिभिरपि स पूज्यो भवति। एवमेव पूर्वसन्तत्या अर्जितं ज्ञानं नूतनसन्तत्या प्राप्तव्यं तथा चाग्रे विकासं कृत्वा अग्रिमसन्तत्यै प्रेषणीयम्भवति। सर्वे विद्यार्थिनः समानाः भवन्ति तेषु व्यक्तिगतभेदा अपि भवन्ति, अतः आचार्येण तान् भेदान् मनसि निधाय छात्राणामध्यापनं कर्तव्यम्भवति। शिक्षाविषये यास्कः कथयति–

''साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्यो साक्षात्कृतधर्मस्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे विल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।'' (निरुक्तम् १/६/२०)। सर्वप्रथमं सर्वप्रथमं ऋषयः परेश्वरप्रदत्तं ज्ञानं स्वयमेव प्राप्तवन्तः तदनन्तरमन्यान् ऋषीन् उपदेशेन प्रबोधितवन्तः। एतदन्तरं ये ऋषयः उपदेशे रुचिं न प्रादर्शयन् तान् प्रबोधयितुम् आचार्याः ग्रन्थानां सर्जनम् अकुर्वन्। एतेनायं क्रमः स्पष्टो भवति यत् प्रथमा शिक्षा मौखिकी अनन्तरं पुस्तकीया च, शिक्षणकार्ये पक्षद्वयं प्रमुखं भजते– शास्त्रज्ञानं शिक्षणकौशलञ्चोभयोः पक्षयोः सम्पुष्टः आचार्य एव शिक्षणे प्रशस्तः भवेत्। महाकविकालिदासेन मालविकाग्निमित्रे एतत् तथ्यं रूचिपूर्णेन विधिना प्रतिपादितम्–

शिलष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।

माल. १/१६

संस्कृतप्राक्काले जनभाषा आसीत् कालवशादस्माकं देश: पराधीनतायां बहुकालं व्यतीत:। अतीते काले संस्कृतभाषाया: अवनति: जाता:। इदानीं स्वातन्त्रे देशे संस्कृतस्य पुन: स्थापनमपेक्षितं वर्तते। संस्कृतस्य गौरववर्धनेन देशस्य संसारे गौरववर्धापनं भविष्यति। इत्थं विचिन्त्य विद्यापीठस्य आधुनिकज्ञान— विज्ञानसंकायेन द्विदिवसीया (२७—२८मार्च, २०१४) संगोष्ठी **''संस्कृतशिक्षा का सशक्तीकरण : मुद्दे एवं चुनौतियाँ''** इति विषये आयोजिता। अस्यां संगोष्ठ्यां पठितेषु शोध— निबन्धेषु केचन सारगर्भितशोधनिबन्धानां ग्रन्थरूपेण प्रकाशनं जायते। शोधपत्रसंग्रहप्रकाशनाय आधुनिकज्ञान—विज्ञानसंकायस्य सदस्येभ्य: हार्दिकीशुभ—कामना वितनोमि। आशासेऽयं ग्रन्थ: संस्कृतशिक्षासशक्तीकरणे समाजे महत्वपूर्ण योगदानं करिष्यति। संस्कृतविद्यापीठग्रन्थमालाया अनुपम: ग्रन्थरत्न: भविष्यति। ये ये संगोष्ठ्यां भागं गृहीतवन्त: येषां शोधपत्राणि प्रकाशितानि ते सर्वे धन्यवादार्हा: तेभ्य: धन्यवादं वितनोमि। अस्य ग्रन्थस्य सम्यक् मुद्रणाय अमरप्रिंटिंगप्रेसस्य संचालकाय श्रीहीरालालाय धन्यवादं विज्ञापयामि।

दिनांक: २४/०९/२०१५

रमेशकुमारपाण्डेय:
कुलपति:

सम्पादकीय

'शिक्षाया आपनौति सर्वम्' इस सूक्ति के अनुसार शिक्षा ही समस्त वैश्विक विभूतियों की जननी है। यह शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया है जो आत्मानुसंधान और प्रविधि के निरन्तर संगम से अग्रसारित होती है। श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के शिक्षा संकाय द्वारा इसी शैक्षिक परम्परा को और द्रुत बनाने के लिए दिनांक 27-28 मार्च 2014 को एक राष्ट्रीय संगोष्ठी **संस्कृत शिक्षा का सशक्तीकरण : मुद्दे एवं चुनौतियाँ** विषय पर आयोजित की गई। इस शोध-संगोष्ठी में मुख्य अतिथि प्रो. के.पी.पांडेय ने 4-डी सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो ड्रीम, डिजायन, डेवलव और डिलिवट के रूप में था। इस शोध-संगोष्ठी में प्रो. श्रीधर वशिष्ठ ने संस्कृत के उन्नयन के विषय में प्रभाव पूर्ण विचार रखे। यह संगोष्ठी छः तकनीकी सत्रों एवं दो समानान्तर तकनीकी सत्रों में सम्पन्न हुई थी। इस सम्पूर्ण संगोष्ठी के मध्य जिन शोध पत्रों का वाचन हुआ वे इस ग्रन्थ में संग्रहित किए गए हैं। इनमें प्रो. शरदिन्दु जी, प्रो. लोकमान्य मिश्र, प्रो. श्रीधर वशिष्ठ, प्रो. आर.एल. यादव जैसे विद्वानों के विचार प्रकाशित किए गए हैं। इस अवसर पर संकाय के वरिष्ठ आचार्य प्रो. नागेन्द्र झा की पुस्तक का भी विमोचन किया गया।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि इस संगोष्ठी में जो विचार एवं शोध पत्र प्रस्तुत हुए वे संस्कृत शिक्षा को वर्तमान समय में

और आगे ले जाने में सक्षम होंगे। इन शोध पत्रों के प्रकाशन से न केवल शिक्षा शास्त्र संकाय अपितु समग्र विद्यापीठ तथा समग्र शिक्षा जगत का मार्ग दर्शन होगा। मैं, इस अवसर पर सभी शिक्षाविदों के समक्ष यह ग्रंथ-पुष्प अर्पित करते हुए अपने को कृत-कृत्य मानता हूँ तथा सभी लेखकों को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने सारगर्भित लेखों को प्रस्तुत कर इस संगोष्ठी को सफल बनाया।

प्रो. रमेश प्रसाद पाठक
संकायाध्यक्ष
आधुनिक ज्ञान विज्ञान संकाय
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

प्रतिवेदन

'संस्कृत शिक्षा का सशक्तीकरण : मुद्दे एवं चुनौतियाँ'

शिक्षाशास्त्र विभाग द्वारा द्विदिवसीय राष्ट्रीय **"संगोष्ठी संस्कृत शिक्षा का सशक्तीकरण : मुद्दे एवं चुनौतियां"** विषय पर **27-28 मार्च, 2014** को आयोजित की गई। संगोष्ठी का शुभारम्भ उद्घाटन सत्र में तत्कालीन संकाय प्रमुख **प्रो. भास्कर मिश्र** के स्वागत भाषण से हुआ। इस सत्र के सारस्वत अतिथि **प्रो. शरदिन्दु जी** (पूर्व अध्यक्ष, NCTE, नई दिल्ली) ने अपने वक्तव्य में शिक्षा के विकास से सम्बन्धित पूर्व में गठित सभी राष्ट्रीय आयोगों एवं प्रतिपादित नीतियों विशेषकर कोटारी आयोग (1964-66) की चर्चा त्रिभाषा सूत्र (three language formula) के सन्दर्भ में की। इसके साथ-साथ उन्होंने क्रियात्मक अनुसन्धान की प्रभावीयुक्ति को व्यवहार में लाने पर बल दिया तथा संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण में उन्होंने संस्कृत संस्थाओं द्वारा विद्यार्थियों का अभिमुखीकरण कराने तथा उनके ज्ञान एवं कौशल के स्तरों को परिवर्द्धित करने की महती आवश्यकता को मुख्य मुद्दे के रूप में चिन्हित किया।

मुख्य अतिथि के रूप में **प्रो. के. पी. पाण्डेय** (पूर्व कुलपति, काशी विद्यापीठ, वाराणसी) ने अपने उद्बोधन में शिक्षा विभाग का कार्य केवल अध्यापक तैयार करना नहीं अपितु उस अध्यापक में गुणवत्ता के आयाम के प्रति संवेदना विकसित करना भी बताया। उन्होंने संस्कृत भाषा के सन्दर्भ

में किसी भी जीवित भाषा को जीवन्त बनाये रखने हेतु उसके सम्प्रेषण बिन्दुओं को महत्त्वपूर्ण ढंग से रेखाकिंत करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसके साथ-साथ उन्होंने विभिन्न उपनिषदों में वर्णित शान्ति पाठों के संकलित स्वरूपों को राष्ट्र भाषा एवं जनभाषा में अनुवाद करने का विचार दिया जिससे एक आम आदमी शान्ति पाठों के भाव बोध द्वारा अपने आभामण्डल को और अधिक प्रकाशित कर सकेगा। संस्कृत भाषा के सशक्तीकरण हेतु उन्होंने 4-D प्रतिमान जिसमें प्रथम D-Dream (स्वप्न) द्वितीय D-Design (अभिकल्प) तृतीय D-Develop (रचना) तथा चतुर्थD-Deliver (व्यवहार रूप देना) की चर्चा की। उद्घाटन सत्र का समापन **प्रो. नागेन्द्र झा** के धन्यवाद ज्ञापन द्वारा किया गया। इस सत्र का संचालन **डा. रचना वर्मा मोहन** द्वारा किया गया।

यह संगोष्ठी कुल 6 तकनीकी सत्र एवं दो समानान्तर तकनीकी सत्रों में सम्पन्न हुई। इन सभी तकनीकी सत्रों में आमन्त्रित विद्वानों ने अध्यक्ष एवं मुख्य वक्ता, विभागीय अध्यापकों ने वक्ता एवं विद्यावारिधि, विशिष्टाचार्य एवं शिक्षाचार्य के विद्यार्थियों ने पत्र प्रस्तोता के रूप में प्रतिभाग किया। इन सभी सत्रों का संचालन कार्य शिक्षा विभाग के सभी अध्यापकों द्वारा प्रतिभाग आधारित शैली पर किया गया।

इन सभी तकनीकी सत्रों में कुल 65 पत्र प्रस्तुत किये गये जिसमें प्रथम तकनीकी सत्र में 3, द्वितीय तकनीकी सत्र में 9, द्वितीय समानान्तर तकनीकी सत्र में 15, तृतीय तकनीकी सत्र में 3, तृतीय तकनीकी समानान्तर सत्र में 12, चतुर्थ तकनीकी सत्र में 4, पंचम तकनीकी सत्र में 5, तथा षष्ठ तकनीकी सत्र में 10 पत्र प्रस्तुतियां की गई।

प्रथम तकनीकी सत्र में मुख्य अतिथि के रूप में **प्रो. के. पी. पाण्डेय** (पूर्व कुलपति, काशी विद्यापीठ, वाराणसी) ने अपने वक्तव्य में देवगुरू बृहस्पति और देवराज

इन्द्र उपाख्यान के अन्तर्गत व्याकरण के क्षेत्र की व्यापकता पर प्रकाश डाला। उन्होंने भाषाशास्त्र विद्वानों में ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि की न्यूनता के बारे में उल्लेख किया। साथ ही साथ उन्होंने पश्चिमी भाषा शास्त्र ज्ञाता,विशेषरूप से चौम्सकी एवं परम्परागत भाषा शास्त्र ज्ञाता-विशेष रूप से पााणिनि के व्याकरणों की अवधारणाओ का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया।

इस सत्र में शिक्षा विभाग से **डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज** ने संस्कृत शिक्षा में शोध के अनुक्षेत्रः चुनौतियां एवं समाधान की अपेक्षाएं विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किये। तद्पश्चात् **सविता राय** ने अपना पत्र प्रस्तुत किया तथा प्रो. शरदिन्दु जी के अध्यक्षीय भाषण द्वारा प्रथम तकनीकी सत्र का समापन किया गया। इस सत्र का संचालन **डा. रजनी जोशी चौधरी** द्वारा किया गया।

तकनीकी सत्र -2, में विभाग से **प्रो. आर.पी. पाठक** ने संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण के सन्दर्भ में अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। इसी क्रम में **डा. विमलेश शर्मा** ने संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण में व्यावहारिक अनुप्रयोग पर प्रकाश डाला। सत्र का संचालन **डा. मीनाक्षी मिश्र** द्वारा किया गया।

तकनीकी सत्र -3, के मुख्या वक्ता, **प्रो. गोपी नाथ शर्मा** ने विभिन्न आयोगों को उद्धत करते हुए मूल्य के संवर्धन में संस्कृत शिक्षा, संस्कृत साहित्य के योगदान तथा संस्कृत शिक्षा के विकास में आयागों की संस्तुतियों पर प्रकाश डाला। इसके साथ-साथ नई तकनीकियां, प्रविधियां यथा Modules/Capsules ई अधिगम में तथा ई-शिक्षा का संस्कृत शिक्षण एवं उसके प्रचार प्रसार में समाविष्ट करने का सुझाव दिया। तत्पश्चात विभाग से **डा. भारत भूषण** ने संस्कृत

शिक्षा के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किये।

तकनीकी सत्र-4, के मुख्य वक्ता, **प्रो. लोकमान्य मिश्र** ने संस्कृत शिक्षा के द्वारा भारतीयता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए संस्कृत की आवश्यकता तथा इसके आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रमों के अभिकल्पन पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात विभाग से **डा. रचना वर्मा मोहन** ने संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक अनुसंन्धान के पांच आयामों- अन्तविर्द्यापरक अनुसंधान, दार्शनिक विधि, ऐतिहासिक विधि, विषय वस्तु विश्लेषण तथा क्रियात्मक अनुसन्धान द्वारा संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण पर बल दिया। इसी क्रम में **श्री मनोज कुमार मीणा** ने अध्यापक शिक्षा मे व्यावसायिकता के महत्त्व पर विचार प्रस्तुत किये। सत्र संचालन **डा. विमलेश शर्मा** द्वारा किया गया।

तकनीकी सत्र-5, के मुख्य वक्ता, विद्यापीठ के पूर्व कुलपति, **प्रो० श्रीधरवशिष्ठ** ने भारतीय दृष्टि अपनाते हुए अध्यापकों की तैयारी पर बल दिया जिससे वह सम्पूर्ण रूप में भारतीय बन सके। भारतीय शिक्षा के उद्देश्य पश्चिमी शिक्षा के उद्देश्य से भिन्न हैं। अतः हमें वैदिक युग से नहीं अपितु मैकाले युग से बाहर आने की आवश्यकता है। इसी क्रम में विभाग से **डा. रजनी जोशी चौधरी** ने संस्कृत शिक्षा की चुनौतियों तथा समाधान पर प्रकाश डाला। इस सत्र को **डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज** द्वारा संचालित किया गया।

तकनीकी सत्र-6, के मुख्य वक्ता शिक्षा संकाय के पूर्व संकाय प्रमुख **प्रो०आर०एल०यादव** ने जीवन में संस्कृत द्वारा प्रदर्शित षोडश संस्कारों के माध्यम से जीवन को सफल बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। तत्पश्चात विभाग से **डा. मीनाक्षी मिश्रा** ने संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

इस संगोष्ठी के **समापन सत्र** का आरम्भ **प्रो. आर. पी.पाठक** के स्वागतभाषण के साथ हुआ। तत्पश्चात द्विदिवसीय संगोष्ठी के क्रियाकलापों,निष्कर्ष एवं विचारणीय बिन्दुओं को **डा.अमिता पाण्डेय भारद्वाज** द्वारा सार रूप में प्रस्तुत किया गया। इसके बाद **प्रो.नागेन्द्र झा** की पुस्तक का विमोचन समापन सत्र के मुख्य अतिथि **प्रो. के. पी. पाण्डेय** (पूर्व कुलपति, काशी विद्यापीठ, वाराणसी) अध्यक्ष **प्रो. आर.के.पाण्डेय जी** (कुलपति श्री ला.ब.शा.सं.विद्यापीठ) सारस्वत अतिथि **प्रो.आर.एल.यादव** (संकायप्रमुख शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.सं.विद्यापीठ) तथा **प्रो. भास्कर मिश्र** संकायप्रमुख शिक्षाशास्त्र द्वारा किया गया। सारस्वत अतिथि **प्रो.आर.एल.यादव** ने अपने वक्तव्य में व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने में संस्कृत की महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया। मुख्य अतिथि **प्रो. के.पी. पाण्डेय** जी ने अपने उपबोधन में संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक शोधों को प्रोत्साहित करने पर बल दिया। इसके साथ-साथ उन्होंने संस्कृत शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों तथा संस्थाओं को चार सूत्रों यथा समझदारी, साझेदारी, जिम्मेदारी और ईमानदारी के अनुपालन करने पर विशेष बल दिया जिससे संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण के आयामों को और प्रबल किया जा सकेगा। अपने अध्यक्षीय भाषण में **प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय** जी (कुलपति श्री ला. ब.शा.रा.सं विद्यापीठ) ने इस बात पर बल दिया कि संस्कृत विद्या के सशक्तीकरण करने की आवश्यकता नहीं अपितु उससे जुड़े हुए शिक्षक एवं छात्रों के सशक्तीकरण की आवश्यकता है। इसके साथ-साथ उन्होंने संस्कृत विद्या के उद्देश्यों को पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था से भिन्न बताते हुए सरस्वती के दो मार्ग यथा प्रज्ञा और प्रतिभा को चिन्हित किया। जहां प्रज्ञावान व्यक्ति शास्त्र की रचना करता है वही प्रतिभावान व्यक्ति काव्यशास्त्र की रचना करता है। सत्र के

अन्त में संगोष्ठी की सफलता के लिए सभी सम्मानित अतिथियों एवं संगोष्ठी के प्रतिभागियों के सहयोग का **प्रो. नागेन्द्र झा जी** ने धन्यवाद ज्ञापन किया। इस सत्र का संचालन **डा. भारतभूषण** द्वारा किया गया।

इस द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के विभिन्न सत्रों में किये गये वैचारिक मंथन से संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण हेतु विचारणीय बिन्दु निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किये गये।

* संस्कृत शिक्षा में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तरों पर किये गये कार्यों का विकास एवं प्रसार।

* सांस्कृतिक मूल्य यथा भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता, अखण्ड मानकों का संवर्द्धन।

* संस्कृत शिक्षा से जुडे क्रिया कलापों में उपयुक्त प्रविधि का चयन एवं विनियोजन।

* संस्कृत शिक्षा के माध्यम से वृतिक अवसरों के नये संदर्भो में संयोजन तथा विद्यार्थियों को मूल्य आधारित वृतिक चयन की ओर उन्मुख करना।

* संस्कृत विद्या को आधुनिक ज्ञान विज्ञान की अन्य शाखाओं की तार्किकता एवं विधिक के अन्वेषण द्वारा अन्र्तविद्यापरक अनुशासन की पद्धति को प्रोत्साहन देना।

* संस्कृत संस्थाओं एवं संस्कृत शिक्षण अभिकर्मियों में सहयोग आधारित कार्य योजनाओं के संकल्पन एवं क्रियान्विति की प्रभावी रीतियों एवं नीतियों के विकास को संरक्षण देना।

* शोध के महान चिन्तकों एवं भारतीय मनीषियों की चिन्तन भूमि के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में निहितार्थ एवं समीक्षात्मक अध्ययनों को बढ़ावा देनातथा शोध के प्रचलित प्रतिमानों के

साथ गुणात्मक प्रतिमानों के माध्यम से यथार्थ से जुड़ी परिस्थितियों एवं व्यवस्थाओं का गहन चित्रण, अभिव्यक्तिकरण एवं सामायिकता के आधार पर प्रसंगोचित प्रदर्शित करना।

प्रस्तावित समाधान एवं सुझावः–

* शिक्षण शास्त्र में नवाचारी प्रवृतियों से संस्कृत शिक्षा एवं शिक्षण की आधार भूमि को संयोजित एवं परिवर्द्धित करना एवं नवीन प्रतिमानों एवं पैमानें को शिक्षण, परीक्षण एवं शिक्षण–व्यवस्था की प्रभाविता एवं गुणवत्ता का आधार प्रदान करना।

* क्रियात्मक अनुसन्धानों को संस्कृत शिक्षा से जुड़ी व्यावहारिक स्तर पर शैक्षणिक परिस्थितियों में गुणवत्ता के प्रति संवेदनशीलता विकसित करना।

* शिक्षण के नये प्रतिमानों पर आधारित संकल्पनाओं को चिन्हित करना एवं उन पर आधारित शोधों को गुणवत्ता के विविध आयामों से संयुक्त करना।

* संस्कृत शिक्षा से जुड़े प्रशासक,अध्यापक शिक्षक अध्यापक, छात्र एवं शोधार्थी की अभिवृत्तियो में व्यापकता एवं उदार दृष्टि निर्मित करने की योजनाओं पर बल देना।

* संस्कृत शिक्षा से जुड़े क्रिया कलापों के प्रभाव क्षेत्रों में विशदता एवं व्यापकता लाने की दृष्टि से संस्कृत भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के माध्यम से इन क्रियाकलापों विशेषकर शोध परिणामों का अभिलेखन एवं प्रसारित करने की नीति को अपेक्षित सजगता के साथ अपनाना।

* संस्कृत शिक्षा में नया मूल्यांकन विधियों एवं शिक्षण विधियों का व्यावहारिक स्तर पर प्रयोग।

इस द्विदिवसीय संगोष्ठी के ज्ञान यज्ञ से निकले सार रूपी ज्ञान बिन्दु निश्चित ही हमें नई दिशा प्रदान करेंगे जिससे हम अपने विचारों को नया स्वरूप और आकार प्रदान कर सकेगे जोकि संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण में हम में अपेक्षित सामर्थ्य विकसित कर सकेगा।

प्रो. रमेश प्रसाद पाठक

विषय सूची

हिन्दी

संस्कृतशिक्षा एवं शिक्षणशास्त्रे नवाचारिता

प्रो. नागेन्द्र झा
पूर्वसंकायप्रमुखः एवं विभागाध्यक्षश्च

साम्प्रतं विज्ञानप्राविधिकक्षेत्रयोः पाश्चात्यदेशानां योगदानम् अधिकं विद्यते। किन्त्वत्र केवलं वैज्ञानिकाध्ययनं पश्चिमादागतमिति चिन्तनं व्यर्थमेव प्रतिभाति। अस्मिन् क्षेत्रे प्राचीनकालादेव वैज्ञानिकाविष्कारे तथा अनुसन्धाने च अत्रत्याः प्रतिभाशालिनां विदुणां ऋषिणां च योगदानं महत्वपूर्णमेवास्ति वर्तमान समयेऽपि अस्मिन् क्षेत्रे भारतस्य महत्वपूर्णोपलब्धयः दरीदृश्यन्ते।

प्राचीनकालादेव भारतीय प्रतिभायुषां सूक्ष्मचिन्तनैः एवं विभिन्न पदीक्षाणानन्तरं एतादृक् विज्ञानसम्मतानां नियमानां स्थापना जाता, यैः सर्वकालिक सार्वदेशिकैस्सह अन्वेषणस्यान्तिमसोपानपर्यन्तं गतवन्तः। वस्तुतः वेदे-उपनिषदि च वैज्ञानिकानुसंधानस्य श्रेष्ठरूपं सुरक्षितमस्ति। सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषणं एवं च सत्यानुसन्धानस्य परमं लक्ष्यमस्ति। श्रुतौ सूक्ष्माति-सूक्ष्मतत्वस्य चिन्तनम् अन्वेषणं च जातमस्ति। पूर्णस्य यादृशमुत्कृष्ट गणितीय प्रतिपादनं जातम्, तादृशं चिन्तनं साम्प्रतं नैव भवितुं शक्यते यथा उदाह्रीयते

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्-पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

अर्थात् परमेष्ठिमण्डलं परिपूर्णमस्ति, तथा च तस्य सान्निध्ये सम्पूर्ण भवति। तस्य पूर्णतायां तादृशी व्यापकताऽस्ति पूर्णव्यये कृते सतिपूर्ण-एवावशिष्यते यः "अव्ययः परं ब्रह्मास्ति"

वेदाः प्राचीन मुनीनां ऋषिणां ज्ञान एवं शिक्षायाः मूलस्रोतांसि विद्यन्ते। वैदिक ऋषयः ज्ञानस्य एकैकक्षणं ज्ञानार्जने अगम्यान्धकारात्

प्रकाशं प्राप्तकामनयोत्कृष्ट चिन्तनं विहितम्। परिणामस्वरूपं ते मन्त्ररूपे एवं अनुभवाधारित ज्ञानस्य साक्षात्कार: कृतवन्त:। "वेदा: ब्रह्मनिश्वासादागता अत एव आर्षत्वं वेदानामिति" ब्रह्मनिश्वसितंवेदा:।

तत एव ज्ञानस्य संस्कृतविद्यानां शास्त्रणां चाविष्कारा: जाता:। संस्कृतशिक्षापि तत्रैका शाखात्वेन वर्णिता। संस्कृतशिक्षा संस्कृताधारिता: सन्ति अनयैव संस्कृति - परम्परां च सुरक्षा परिधौ समागता। एतेन प्रतीयते यद् मन्त्रब्राह्मणात्मकवेदेषु प्राचीनदर्शनम् आध्यात्मिक सभ्यता च संस्कृति विकासमयमानवकल्याणाय चापेक्षित विद्यानां बीज-समाहितं वर्तते। एतेषां मन्त्रणां संकलनं ऋक् यजु: साम, अथर्व नाम्ना ज्ञानस्यागाररूपे प्रख्यातम् एतेषां क्रमिको विकास: आरण्यके एवं उपनिषदि रूपेजातमिति।

वैदिकसाहित्ये शिक्षणस्य एका प्राचीन परम्परा प्रशस्ता जाताऽस्ति। तस्मिन् समये मुद्रणकलायाऽभावादेव पठन पाठनस्याधार: श्रुति परम्परा अवर्तत। छात्रा गुरूकुले निवसन्त: परिश्रमात् विद्यार्जने तत्परा: भवन्तिस्म। कर्मनिष्ठिगुरूणां सानिध्ये पाठयविषयाणां आत्मसात्करणं भवति स्म। केवलं व्याख्यानेन विद्याया: पूर्ति: न भवति स्म अपितु छात्राणां मेधाशक्ति जागरणाय शैक्षिक संस्काराणां परिपालनं भवति स्म। तस्मिन् समये ज्ञानस्य उदेश्यमासीत् 'सा विद्या या विमुक्तये'।

उपनिषद् एवं सूत्र काले वेदाङ्गेतर (व्याकरणम् छन्द: शिक्षा कल्प निरूक्तं ज्योतिषम्) अनेकै: विद्वततल्लजै: शिक्षाग्रन्थानां रचना कृता यथा-पाणिनीय शिक्षा, नारदीय-शिक्षा, केशवीय शिक्षेत्यादय:। अनेनैव संस्कृत शिक्षा एवं शिक्षण परम्परायां छात्राणां सहयोग: प्रदीयतेति। भारतीयेतिहासे संस्कृतस्य संस्कृतभाषा शिक्षणस्य उद्धाराय महान् प्रयत्न: जात:। किन्तु अद्यावधि तेषां परिणति: नैव दृश्यतेति। साम्प्रतं या स्थिति संस्कृतशिक्षाया: शिक्षणस्यास्ति, तदपमानयुक्तमेव प्रतिभाति। कारणं माध्यमिकशिक्षायां प्राय: संस्कृतं मृयमाणमिव प्रतीयते। उच्चशिक्षाया: कृते अनेकानेक विश्वविद्यालया: गठितास्सन्ति किन्तु आधारोऽधिकरणम् इति सिद्धान्तस्य परिपालनं न जायते। यदि माध्यमिककक्षासु छात्रा संस्कृतं पठन्ति अनन्तरमेव संस्कृत-विश्वविद्यालयेषु छात्रा ध्यानेन संस्कृति सुरक्षायैव पठिष्यन्ति।

वर्तमाने संस्कृतशिक्षायां नवाचारस्यावश्यकता दरीदृश्यते। पूर्वतः दृश्य-श्रव्योपकरणानां प्रयोगः अध्यापकः कृतवन्तो दृश्यन्ते। किन्त्वत्र लाभाः नैव भवन्ति। अतः नवाचारस्य कस्याश्चन सरणिः परिपाल्या येन छात्रः अधिकाधिकं लाभान्विताः भवेयुः। अन्यापि संस्कृतशिक्षायां यथा कम्प्यूटरधारितं ज्ञानम्। नवाचारदृष्टया रूचिदृष्ट्या च महत्वपूर्ण प्रतिभाति। अन्येपि अभ्यास प्रपत्रम्, समस्या समाधानानि दलशिक्षणम्, प्रायोजना-कार्यम्, समूह-कार्यम्, अन्तर्जालमाध्यमेन, ई- अधिगमरीत्या, परियोजनया, पावरप्वाईन्ट प्रकाशनेन लेखन दक्षता क्रीडा माध्यमेन वादविवाद अन्त्याक्षरी निदानात्मक-परीक्षणम् उपचारात्मकपरीक्षणमाध्यमेन नवाचारितायाः प्रयोगः सम्यक्तया कर्तु कारयितुं शक्यतेति नास्ति संशयः।

संस्कृतस्य पाठ्यक्रमाभिकल्पनम्

प्रो. लोकमान्यमिश्रः

आचार्योऽध्यक्षश्च, शिक्षाशास्त्रविभागः,

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, लखनऊ-परिसरः, लखनऊ।

वाग्देव्याः महिमा स्वर्गलोकाभूलोकाभ्यामपि महान् वर्तते। देवा इमां वाग्देवीमसृजन्। दण्डिनोक्तं यद्यदि वागस्तित्वं नाऽभविष्यत्तर्हीदमखिलं विश्वं तमसि लीनमभविष्यत्। वस्तुतस्तु वागियं मानवीयदेहे ज्योतिस्तत्त्वमिव राजते। वागेवेयं मानवसभ्यतायाः संस्कृतेश्च विकासाय महत्त्वपूर्णं योगदानं ददाति। वाणीयं लोके प्रतीकरूपशब्दव्यवस्थायां 'भाषे'ति पदेन व्यवह्रियते। भाषायाः विविधरूपाणि भवन्ति, तद्यथा मातृभाषा, प्रादेशिकभाषा, राष्ट्रियभाषा, राजभाषा वैदेशिकभाषा चेति। एतदतिरिच्य प्रत्येकं राष्ट्रस्यैका तादृशी भाषाऽपि भवति, यस्यां तत्रत्या प्राचीनसंस्कृती रत्नायते। शिक्षायां सम्प्रति सांस्कृतिकभाषाया उपादेयता परिसीमितेति विद्वद्भिः मन्यते, परम् अस्या अध्ययनाध्यापने समये प्रादुर्भूतानां सांस्कृतिकसमस्यानां निराकरणाय, राष्ट्रगौरवाय, आत्मनः परिचयाय राष्ट्रियास्मितायै च नितरामावश्यकमिति अनुभूयते।

भारतीयसन्दर्भे संस्कृतमेवैतादृशी भाषा या हि प्राचीनतमा प्राचीनसंस्कृत्या चौतप्रोता। विश्वभाषा जननीरूपेयं संस्कृतभाषा तादृग्रिक्थं निधिर्वाऽस्ति यत्र ज्ञान-विज्ञान-दर्शन-साहित्य-व्यापारोद्योग-जीवनकौशल-ललितकलादिभिः सह कर्तव्याकर्तव्यनीतिविवेकोऽपि विलसति। संस्कृतनामेयं शाब्दी साधना ऋषीणां हृदि मुखरिता भूत्वा साक्षाज्छ्रुतिस्वरूपे धरायामस्यामवततार। ऋचार्चनया, सामगानझङ्कृत्या, यजुर्यजनेनाथर्व-शान्तिकर्मभिश्च भारतीया प्रज्ञा अद्यत्वेऽपि विश्वस्मिन् विश्वे स्वविराड्रूपे विलसति। वेदानां श्रुतिपरम्परा स्वस्य विराजः ज्ञानस्य प्रसारं कुर्वती वेदाङ्गोपनिषद्-पुराण-दर्शन-रामायण-महाभारत-नीतिकाव्यादीनाममूल्यं वाङ्मयं सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय च विश्वस्मै कल्पितवती। इत्थं

भारतीयसंस्कृतेः सम्वाहिका संस्कृतभाषा अस्तीति निश्चप्रचम्। मानवस्य कल्पनाक्षेत्रे समागतानां लौकिकालौकिकानां दृष्टाऽदृष्टानामगणितविषयाणाम् अतुलो ज्ञानराशिः संस्कृतवाङ्मय एव निहितो वर्तते।

इयं हि संस्कृतभाषा विश्वस्य शेषाभ्यस्सर्वाभ्योऽपि भाषाभ्यः प्रकारे विस्तरे च महती, सौन्दर्ये विचारपवित्रतायाञ्चान्यूना विद्यते। सत्यपि स्वविकासवर्त्मनि क्रमोपनते बाधासमुदये इतिहासारम्भसमयत एव संस्कृतभाषा विश्वस्यान्यासु भाषासु विशिष्टा प्रतिभाति। यद्यपि अस्मद्देशेऽजायन्त विविधानि सामाजिकपरिवर्तनानि, धार्मिकाण्युत्थानपतनानि वैदेशिकानामाक्रमणानि च, तथापि संस्कृतं सर्वदा समभावेन सर्वत्र प्रसारमधिगच्छति।

वाङ्मयमिदं सर्वाङ्गपूर्णं यतोह्यत्र मानवजीवनोद्देश्यभूताः धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽपि पुरुषार्थाः विवेचिताः। धर्मशास्त्रमेवात्र न प्रथितम्, प्रत्युत अर्थशास्त्रमप्यत्रैव प्रणीतम्, यच्च जीवनलक्ष्येषु न कुतोऽपि हीयते। अत्र प्रेयश्शास्त्रं श्रेयश्शास्त्रं चोभयं समभावेन समेधितम्। एवमत्र भोगमोक्षयोः उभयोः सत्ता विश्वविश्ववाङ्मयापेक्षया विशिष्टा विद्यते।

कस्याः अपि भाषायाः अध्ययनस्य मुख्यतो द्विविधं प्रयोजनं भवति। एकन्तु स्वयं भाषाध्ययनस्य अपरञ्च तन्निबद्धवाङ्मयाध्ययनमिति। भाषाध्ययनस्य प्रयोजनमपि पुनः मुख्यतो द्विविधं भवति - एकं तु व्यावहारिकं प्रयोजनम् अपरञ्च सैद्धान्तिकम्।

भाषाध्ययनस्य व्यावहारिकं प्रयोजनं तद्भाषाभाषिभिस्सह तस्यां भाषायां वार्तालापेन परस्परं विचाराणामादान-प्रदानमिति। भाषाध्ययनस्य सैद्धान्तिकप्रयोजनं तस्याः भाषायाः भाषाज्ञानभाषाविज्ञानयोः दृष्ट्याध्ययन-सम्पादनमिति तद्भाषानिबद्धवाङ्मयाध्ययनञ्च प्रयोजनं तद्वाङ्मयप्रतिपादित-विविधविषयाणां ज्ञानं तन्माध्यमेन च तन्मान्यतानुसारेण विविधानां धर्मार्थकाम-मोक्षादीनां पुरुषार्थानां साधनमस्तीति।

प्रयोजनेषूक्तेषु संस्कृताध्ययनेन कानि प्रयोजनानि सिध्यन्ति, विषयेऽस्मिन् इदं कथयितुं शक्यते यदिदानीं संस्कृतभाषाध्ययनस्य व्यावहारिकं प्रयोजनं पूर्ववन्न वर्तते, यतो हीदानीं विश्वे भारते च कोऽपि विस्तृतभूखण्डः

प्रान्तः प्रदेशो वा एतादृशो नास्ति, यद्वासिनां जनानां मातृभाषा व्यावहारिकी वा भाषा संस्कृतं स्यादिति।

इत्थं यद्यपि संस्कृतभाषाध्ययनस्य व्यावहारिकं प्रयोजनं न्यूनमस्ति, तथापि तदध्ययनं शास्त्रीयं सैद्धान्तिकं वेति प्रयोजनं विपुलं वर्तते। अतः तस्याः विश्वस्य अन्याभिः भाषाभिः सह भाषावैज्ञानिकरीत्या तुलनात्मकेन अध्ययनेन स्पष्टतया इदं ज्ञातुं शक्यते यदस्याः विश्वस्य अन्याभिः भाषाभिस्सह कः सम्बन्धो वर्तते? अथ च प्राचीनकाले वर्तमानानां संस्कृतभाषाभाषिणां पूर्वजानाम् परस्परभिन्नभाषाभाषिणः साम्प्रतिकाः वंशधराः वर्तन्ते, तेषां परस्परं के विविधाः धार्मिकादयः विविधाः सम्बन्धाः सन्ति? इति।

अनेनैव प्रकारेण संस्कृतभाषानिबद्धवाङ्मयाध्ययनसाध्यं प्रयोजनं विपुलमस्ति। सर्वप्रथमं चैतादृशं प्रयोजनं संस्कृतनिबद्धस्य विपुलस्य वाङ्मयस्य संरक्षणमस्ति। कस्यापि वाङ्मयस्य संरक्षणमध्ययनाध्यापनाभ्यामेव भवति। तद्विना वाङ्मयं लुप्तं भवितुमर्हति, यथा हि संस्कृतस्यैव हि भूयो वाङ्मयं विलुप्तं जातम्। यद्यध्ययनाध्यापनाभावादवशिष्टं प्राचीनं संस्कृतवाङ्मयं लुप्तं स्यात् तदा राष्ट्रगौरवं राष्ट्रैश्वर्यञ्च पूर्णतो नष्टं भवेदिति अनिष्टापत्तिः।

'भारतेन ज्ञानविज्ञानक्षेत्रे महदाविष्कृतं महच्च किमपि अन्येभ्यो राष्ट्रेभ्यो दत्तम्' इत्यादीनि तथ्यानि पुष्टीकर्तुं संस्कृतमेवैकं शरणम्। यथा हि नवदेहल्यामायोजितायामेकोनविंशतितमायां राष्ट्रमण्डलक्रीडाप्रतियोगितायां समारम्भसमारोहे अन्ताराष्ट्रियमञ्चे भारतं परिचाययितुं प्रत्यभिज्ञापयितुञ्च ज्ञानराशयश्चत्वारो वेदाः, योगः, समाधिः, कुण्डलिनी-जागरणं, गुरुशिष्यपरम्परा, बोधिवृक्षः, नालन्दा-विश्वविद्यालय इत्यादीनि संस्कृतभाषायां निबद्धतत्त्वान्येव प्रदर्शितानि। एतेनैव तत्र भारतस्य परिचयोपस्थापितः।

संस्कृतशिक्षणं हि भाषाशिक्षणपर्यन्तं परिमितं नास्ति। संस्कृतशिक्षणेन भारतीयसंस्कृतेः मूलतत्त्वानां परिचयज्ञानेन सहैव भारतीयानां प्रान्तीयभाषाणां पोषणमपि भवति। संस्कृतस्य पारम्परिकरीत्या हि शिक्षणपरम्परानादिकालात् सततं प्रवाहमाना वर्तते। क्रीष्टोः 1844 तमे वर्षे आंग्लशासनयुगे स्थापितस्य कलकत्ता-संस्कृत-कॉलेज इत्यस्य प्रधानाचार्यपदि विराजितेन पण्डितप्रवरेण ईश्वरचन्द्रविद्यासागरेण संस्कृतस्य पठनम् आधुनिकरीत्या प्रचालितम्। ततः

प्रभृति अस्याः शिक्षणपरम्परा द्वेधा विभक्ता- पारम्परिका आधुनिकी चेति।

पारम्परिकपरम्परायां पाठ्यक्रमस्य स्तर अपेक्षाकृतरूपेण उन्नतो अपेक्ष्यते, यतो हि अत्र पठितवतां छात्राणामुपाधयः संस्कृतक्षेत्रे ससम्मानं दृश्यन्ते। तत्र दिनचर्यायामपि संस्कृतस्य एव प्रयोगो दरीदृश्यते। केवलं केषाञ्चन श्लोकानां केषाञ्चन वा सूत्राणामेव शिक्षणमत्र न भवति, प्रत्युत पारम्परिकपण्डितानां निर्मितिरेव शिक्षणस्यास्य मुख्यमुद्देश्यं वर्तते। अमरकोशः, व्याकरणग्रन्थाः, टीकाग्रन्थाः, लक्षणग्रन्थाः इत्यादीनां शिक्षणं कक्षास्तरानुगुणं पारम्परिकस्तरे क्रियते। पारम्परिकपरम्परायां प्रौद्योगिकविषयाणामपि समावेशः पाठ्यक्रमे कर्तव्यः। प्रायशः अवलोक्यते यत् संस्कृतस्य पारम्परिकधारायाः छात्राः कम्प्यूटरप्रभृतियन्त्रेभ्य आंग्लभाषायाश्च बिभ्यन्ति। तत्र केवलं परिचयाभाव एव कारणमस्तीति सिद्धमेव। अत्र हि पारम्परिकविधीनां यथा हि व्यासविधिः, सूत्रविधिः, टीकाविधिः, इत्यादीनां प्रयोगेणैव शिक्षणं प्रचलति। अस्मिन् संस्कृतं केवलं विषयमात्रं नास्ति, प्रत्युत शिक्षणमाध्यमरूपे अपि प्रयुज्यते। तत्र संस्कृतशिशुगीतानां प्रयोगोऽपि प्राथमिकस्तरे कर्तुं शक्यते। कण्ठस्थीकरणे यद्यपि पारम्परिकस्तरे पक्षपातो भवति, एतद्धि कण्ठस्थीकरणमर्थज्ञानपूर्वकमेव भवेत्। यथा हि उक्तं निरुक्ते -

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।

अनग्नाविव शुष्केधौ न तज्ज्वलति कर्हिचित्।। इति।

आधुनिकस्तरे तु संस्कृतं विषयमात्रमेव तिष्ठति। अत्र संस्कृताय तथा महत्त्वं दातुं न शक्यते, यथा पारम्परिकधारायां दीयते। छात्राः अर्थग्रहणार्थं सिद्धाः स्युः इत्येतदेव संस्कृतशिक्षणस्य सर्वविधायोजनस्य लक्ष्यमनुभवतीति। अनेन हि कालान्तरेण शब्दकोशादीनां सहायतया संस्कृतस्य हितोपदेश-पञ्चतन्त्र-श्रीमद्भगवद्गीतेत्यादीनां पारायणेन अर्थज्ञानं स्वोपक्रमेण कर्तुं छात्राः शक्ताः भवितुमर्हन्ति। अत्र हि अभिव्यक्त्यात्मकस्योद्देश्यस्य प्राप्त्यै परिश्रमो निष्प्रयोजनमेव भाति। व्याकरणस्य अपि तावदेव ज्ञानं कार्यते यावद्धि पाठ्यसामग्र्याः शिक्षणेन सम्बद्धमस्ति। अस्मिन् सन्दर्भे पर्सिवियलरेनमहोदयस्य कथनं वर्तते यत्- 'व्याकरणस्य प्रचुरज्ञानं धृत्वाऽपि भाषाज्ञानविहीनस्य अपेक्षया व्याकरणज्ञानविहीनस्सन् आङ्ग्लभाषायाः प्रचुरज्ञाता श्रेयस्करो भवति' इति।

अर्थात् व्याकरणस्य ज्ञानाद्विहीनो भूत्वाऽपि भाषायाः व्यवहारे प्रवीणः श्रेयस्करः, परन्तु व्याकरणस्य प्रकाण्डपण्डितो भूत्वाऽपि भाषाव्यवहारे असमर्थो नास्ति वरमिति। व्याकरणं हि भाषामनुगच्छति, न तु भाषा व्याकरणमिति। यथा हि रेनमहोदयः प्रतिपादितवान् यत् – व्याकरणमनिवार्यं सजीवभाषा च तस्य व्याख्या, इत्येतदवगमनं तादृशमेव भविष्यति, यादृशं भोजनस्य स्थानापन्नरूपेण पाचकगुलिकानामाहरणमिति।

तन्मते आङ्ग्लबालकः षष्ठवर्षावस्थां यावद्धाराप्रवाहरूपेण आङ्ग्लभाषां भाषते, किन्तु सः व्याकरणस्य नाम्नापि परिचितो न भवति। एतदेव तथ्यं कस्याः अपि भाषायाः अधिगमविषये चरितार्थं भवति। यदि वयं संस्कृतस्य परिप्रेक्ष्ये आलोचयामश्चेदत्राऽपि बहवो जनाः सन्ति यैः व्याकरणसूत्राणि कण्ठस्थीकृतानि, परं धाराप्रवाहरूपेण ते संस्कृतं वक्तुमसमर्थास्सन्ति। यतो हि मौखिकमात्मप्रकाशनं हि भाषायाः प्रयोगे अभ्यासे च विलसतीति। अतः आधुनिकस्तरे संस्कृतशिक्षणसामग्री एतादृशी एव स्यात्, यया छात्राणां संस्कृतस्य सरलतया परिचयः प्रतिपादनञ्च स्यादिति। भाषाविज्ञानानुसारेण सर्वाः अपि भारतीयभाषाः संस्कृतस्य पुण्यक्रोडाल्लब्धजन्मा इति। ततश्च मातृभाषासममेव संस्कृतं प्रयोक्तव्यमित्याशयः।

शिक्षकशिक्षायां संस्कृतस्य कृते द्विविधं स्वरूपं दृश्यते। एकन्तु सामान्यशिक्षणमहाविद्यालयेषु कलाविषयरूपेण संस्कृतमपरतश्च पारम्परिकशिक्षाशास्त्रीयमहाविद्यालयेषु भाषाशिक्षणरूपे संस्कृतम्। उभयविधमहाविद्यालयेषु भेद एषैव यच्छिक्षाशास्त्रीयमहाविद्यालयेषु संस्कृतमेव शिक्षणमाध्यमरूपे भवति अपरत्र च मातृभाषा। सम्प्रति तु पारम्परिकशिक्षणमहाविद्यालयेषु अपि संस्कृतं संस्कृतभाषया पाठ्यमानं नैव दरीदृश्यते।

वस्तुतस्तु सर्वेषु एतेषु स्तरेषु अधिगमदृष्ट्या शिक्षणदृष्ट्या च विषयाः द्वयोः वर्गयोः विभक्तुं शक्यन्ते।

क ज्ञानप्रधानविषयाः

क क्रियाप्रधानविषयाश्च

तत्र ज्ञानप्रधानविषयेषु विज्ञानं, समाजशास्त्रम्, इतिहासः, व्याकरणम्, ज्यौतिषमित्यादयः समायान्ति। एतेषु विषयेषु अपरिवर्तनीयसूचनानां सङ्कलनं विशेषतया क्रियते। क्रियात्मकविषयेषु नाटकम्, संगीतम्, रचनाशिक्षणम्, भाषाशिक्षणमित्यादयः परिगण्यन्ते। क्रियात्मकविषयेषु क्रमशः प्रयोगः, आवृत्तिः, अभ्यासः इत्येतेषां सन्निवेशो भवति। उभयविधयोः विषययोः द्वौ पक्षौ भवितुमर्हतः, तथा हि - १. सैद्धान्तिकः २. प्रायोगिकश्चेति। सैद्धान्तिकपक्षे पूर्वनिर्धारितनियमानां परिचयनं भवति। तेषां तु व्यावहारिकप्रयोगः प्रायोगिकपक्षे विधीयते। स्पष्टतः ज्ञानप्रधानविषयाणामुपयोगः क्रियाप्रधानविषयाणां कृतेऽपि उपयुक्तो भवत्येव। अनेन स्पष्टं भवति यत् भाषाशिक्षणं हि क्रियाप्रधानविषयेषु अन्तर्भवति। यतश्च व्याकरणादीनां ज्ञानप्रधानविषयाणां प्रयोगेण भाषाशिक्षणेऽपि सौकर्यं भवति।

पाठ्यस्य लेखनं, सङ्कलनं संयोजनं वा पाठ्यक्रमनिर्माणस्य प्रसिद्धसिद्धान्ताधारेण भवितव्यमिति। सहैव भाषाध्यापनस्य विविधोद्देश्यानां यथा हि राष्ट्रिय-सामाजिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक-व्यावहारिक-ज्ञानात्मक-प्रशासनिक-राजनैतिक-नैतिक-व्यावसायिकेत्यादीनां पूर्तिः अपि स्यात्। तत्र हि छात्राणां रुचिः, सक्रियता, पाठनेज्छा, मानसिकस्तरः, शिक्षणविधिः, शिक्षणोपकरणानीत्यादीनामपि कश्चन विशिष्टप्रभावो भवत्येवेति। एतदर्थं पाठनियोजनं विदधति शिक्षकाः। अतः संस्कृतपाठ्यक्रमनिर्धातृभिः संस्कृतशिक्षकेण च एतेषु तथ्येष्वपि अवधानं देयमिति। भाषाधिगमाय तद्भाषोपनिबद्धं वातावरणं सर्वथा अनिवार्यम्।

महिलानां हि समाजनिर्माणे महद्योगदानं भवति। अतः तासां कृते एतादृशी संस्कृतपाठ्यचर्या निर्मातव्या, यया समाजे सर्वास्वपि भूमिकासु ताः नैतिकरूपेण तत्सम्बद्धान् सर्वान् जनान् सन्नागरिकरूपेण विपरिणमितान् कर्तुं शक्नुयुः। गार्हस्थ्यजीवने एतादृश्य एव नार्यो स्वगृहे स्थायिरूपेण क्रियाशीलरूपेण च संस्कारान् सन्निवेष्टुं प्रभवन्ति। बाल्यावस्थायां बालकस्य जिज्ञासा प्रबला भवति। प्रत्येकमपि क्षेत्रे जिज्ञासायाः प्रत्युत्तरं माता एव प्रददाति। यदि माता समीचीनविधिना शिक्षयति, तर्हि बालको नूनमेव सन्नागरिकरूपेण समाजोपयोगी भविष्यति।

स्नातकस्तरे प्रत्येकमपि विषयमुपकर्तुं तद्विषयपाठ्यक्रमस्य संस्कृतेन सह अन्त:सम्बन्धानामाधारे संस्कृतस्य कश्चन लघूपकारकपाठ्यक्रमो निर्मातुं शक्यते। यद्धि उपाधिपाठ्यक्रमरूपेण (डिप्लोमा) भवितुमर्हति। अनेन हि छात्राः स्वविषयमधीयाना एव संस्कृतस्य सर्वोपयोगितायाः विषये अध्येतुं प्रभविष्यन्ति। यतश्चाधुनिकपरिप्रेक्ष्ये संस्कृतं धार्मिकरूपेणैव जनैः अनुमीयते। किन्तु, वास्तविकता तु एषा वर्तते यत् संस्कृते धर्ममतिरिज्य सामाजिकविज्ञानविषयाः विज्ञानविषयाश्चाधिक्येन विलसन्ति। शिक्षायाः कापि शाखा संस्कृतात् पूर्णतः अस्पृष्टा नास्ति। अत एव, अत्र "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्" इत्याभणकं सुप्रसिद्धं वर्तते।

एवमेव प्रशासनदृष्ट्यापि संस्कृतस्य विशिष्टः पाठ्यक्रमो भवितव्यः। अद्यत्वे प्रशासनिकक्षेत्रे महतः परिष्कारस्य अपेक्षा सर्वैरनुभूयते। अर्थशुचितायाः विषये बहवः अधिकारिणः संदिग्धाः भासन्ते। तेषां निर्णयक्षमतायां प्रश्नचिह्नमाक्षिप्यते। तेषां निर्णयेषु प्रबन्धनकर्मणि च अवसादस्य, दुश्चिन्तायाः विषादस्य वा दुष्प्रभावोऽवलोक्यते। अतः गीतादिशास्त्राणामाधारे प्रबन्धनोन्नत्यै प्रशासकानां कृते उपयोगी कश्चन पाठ्यक्रमो भवितुं शक्यते।

चिकित्साक्षेत्रे अपि किमपि नैदानिकमौपचारिकञ्च पाठ्यक्रमं सृष्टुं शक्नुवन्ति संस्कृतविशेषज्ञाः। अनेन हि महार्घतायाः अस्मिन् युगे अल्पधनव्ययेनैव सर्वेषां सामान्यजनानां कृते चिकित्सा व्यवस्था सुलभा स्यात्। वनस्पतिविज्ञानस्य अपि लघुपाठ्यक्रम आनुषंगिकरूपेण विषयम् उपकर्तुं प्रभवति। आधुनिकचिकित्सापद्धतौ आयुर्वेदसम्बद्धः कश्चन लघुसंस्कृतपाठ्यक्रमो यदि संयुक्तः स्यात्तर्हि अस्मिन् क्षेत्रे अपि संस्कृतस्य सार्थकोपयोगो भवितुमर्हति। योगशास्त्रस्य आंशिकोपयोगः अपि सहकारक एव सिद्धो भविष्यति जनानां दिनचर्यायां पथ्यापथ्यनिर्धारणे रोगनिवारणे च।

व्यवसायक्षेत्रे अपि अर्थशास्त्रमादाय व्यावसायिकदक्षतायै संस्कृतस्य सहकारकः पाठ्यक्रमः निर्मातुं शक्यते। एवमेव राजनीतिः अपि यस्मिन् दूषितवातावरणे दृश्यते, तस्मात्तामपाकर्तुं संस्कृतनीतिवचनानि एव सक्षमानि भवितुमर्हन्ति। कूटनीतिक्षेत्रे या विफलता वैश्विकस्तरे अवलोक्यते, तामपि व्यूहसंरचनां प्रदातुं संस्कृतशास्त्राणि महान्तं योगदानं दातुं प्रभवन्ति।

न्यायव्यवस्थायां दण्डव्यवस्थायाञ्च सुव्यवस्थामानेतुं संस्कृतशास्त्राणां लघुपाठ्यक्रमः प्राचीनां व्यवस्थां प्रबोधयितुं ततश्च कल्याणकारकतत्त्वमायातुं सहकारी भवितुमर्हति।

तथैव अभिनयकलायाम्, पाककलायाम्, शिल्पकलायाम्, अभियान्त्रिककर्मणि कृषिकर्मणि, पर्यटने, भाषाविज्ञाने, विज्ञाने अथवा यस्मिन् कस्मिन्नपि क्षेत्रे भवितु, तत्स्तरोन्नयनार्थं नवीनायामांश्च प्रख्यापयितुं संस्कृतवाङ्मयमिदं विपुलविश्वोपकारकज्ञानसम्पदः सा अक्षय्यमञ्जूषा वर्तते, यतः यत्किञ्चिदपि विकासरूपात्मकं विश्वं वाञ्छति, तत्तदादायेतः कल्याणवद्भवितुमर्हतीति शम्।

सन्दर्भग्रन्थसूची

१. मिश्रः, आजादः (प्रधानसम्पादकः); संस्कृतभाषाशिक्षणम्, मध्यप्रदेशसंस्कृतबोर्ड, मध्यप्रदेशः, २००४.

२. पाण्डेयः, इन्दिराचरणः; संस्कृत शिक्षण समीक्षण, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, प्रकाशनविभागः, १९९२.

३. माथुर, एस. एस. शिक्षणकला, शिक्षण तकनीक एवं नवीन पद्धतियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

४. सफाया, रघुनाथ; संस्कृत शिक्षण, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, १९९०.

५. पाण्डेय, रामशकल, संस्कृत शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

६. संस्कृत आयोग का प्रतिवेदन (अलखनिरञ्जन पाण्डेय कृत हिन्दी अनुवाद), सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७९.

७. दण्डी, काव्यादर्शः।

८. भर्तृहरिः, वाक्यपदीयम्।

९. Bokil, Vinayak Pandurang; A New Approach to Sanskrit, Chitrashala Prakashan, Poona, 1956.

१०. Apte, Vaman Shivaram; The Student's guide to Sanskrit Composition, The Standard Publishing Co., 1929.

११. Percivial Wren; 'The Indian Teacher's Guide to the Theory and Practice of Mental, Moral and Physical Education' Bombay, (1910).

कर्नाटकराज्ये संस्कृतशिक्षाविकासाय धार्मिकसंस्थानां योगदानम्

डॉ. नारायण वैद्य

कर्नाटकप्रान्तः भारतदेशस्य एकं राज्यं विद्यते। तत्र संस्कृतभाषाभाषिणां मत्तूरु नामकः ग्रामः विलसति। वस्तुतः विचार्यमाणे संस्कृतं न कस्यापि समुदायस्य भाषा अस्ति। केवलं ग्रान्थिकभाषात्वेन पठ्यते। प्राचीनकाले कर्नाटके केचन कवयः द्विभाषा पण्डिताः आसन्। ते कन्नडे संस्कृते च काव्यं रचयन्ति स्म। यतो हि संस्कृतभाषायाः नैके शब्दाः कन्नडभाषायामपि वर्तन्ते। अतः कन्नडभाषायाः आधारः संस्कृतमिति वक्तुं शक्यते। अद्यापि डॉ.रा. गणेशसदृशाः शतावधानिनः बहुभाषापण्डिताः सन्ति कर्नाटकराज्ये।

एवं कन्नडसंस्कृतयोः सम्बन्धस्य सत्वात् साम्प्रतकालेऽपि कन्नडपण्डिमिति स्नातकस्तरे अवश्यं संस्कृतभाषाग्रन्थः पठ्यते। एवमेव उच्चमाध्यमिकस्तरे च प्रथमभाषात्वेन उत तृतीयभाषात्वेन वा पाठ्यक्रमे ऐच्छिकरूपेण संस्कृतभाषायाः स्थानं विद्यते।

इथं संस्कृतभाषाध्ययनायकर्नाटकराज्ये अवसरः द्विधा वर्तते पारम्परिकरूपेण आधुनिकरूपेण च। तत्र पारम्परिकरीत्या संस्कृताध्ययनाय पाठशालाः सन्ति, आधुनिकरूपेणाध्ययनाय विश्वविद्यालयेषु संस्कृतविभागः वर्तते। इदमिदानीं राज्यसर्वकारेण संस्कृतविश्वविद्यालयः उद्घाटितः विद्यते इति प्रमोदः। पुनश्च पारम्परिकपाठशालासु प्रथमा, काव्यं, साहित्यं, विद्वन्मध्यमा, विद्वदुत्तमा इत्येवं लौकिकसंस्कृताध्यनाय व्यवस्था अस्ति। वेदाध्ययनाय प्रथमा, प्रवेशः, मूलम्, पदपाठः, क्रमपाठः, घनपाठः इत्येवं कक्षाः प्रचलन्ति। आधुनिकविश्वविद्यालयेषु B.A., M.A. इत्येवं अध्ययनक्रमः वर्तते। तत्र वेदाध्ययनाय अवकाशः नास्ति। एतदर्थं धार्मिकसंस्थासु अवकाशः आविष्कृतः विद्यते। अतः वक्तुं शक्यते संस्कृतशिक्षाविकासाय धार्मिकसंस्थानां योगदानं महत्वपूर्णमस्तीति।

संस्कृतशिक्षाविकासाय प्रवृत्ताः धार्मिकसंस्थाः

शारदापीठं शृङ्गेरी

"सनातनं नित्यनूतनं" इति प्राज्ञोक्तिः श्रूयते। एतस्मादेव स्यत् श्री शारदापीठं सनातनधर्मस्य अभ्युदयाय प्रतिक्षणं प्रयतमानः वर्तते। १९९२ तमे वर्षे जगद्गुरु श्री भारती तीर्थ स्वामिनः शास्त्रपोषकसभाम् शास्त्राध्ययनय आविश्चक्रिरे। अनेन पञ्चवर्षात्मकः पाठ्यक्रमः आविष्कृतो वर्तते। तत्र षाण्मासिकपरीक्षा आयोज्यते। प्रथमश्रेण्यां उत्तीर्णेभ्यः प्रतिमासं विद्यार्थिचेतनमपि दीयते। अन्तिमपरीक्षा महागणपति वाक्यर्थसभायां सम्पत्स्यते। तत्रोत्तीर्णेभ्यः "विद्वत्प्रवरमिति" नाम्ना सम्मानमपि लभ्यते।

१९९० तमे वर्षे आन्ध्रप्रदेशस्य गुण्टूरु मण्डले वेदेवेदान्तगुरुकुलस्य स्थापनमकार्षुः। गुरूकुलेऽस्मिन् विशिष्य वेदाध्ययनं प्रवर्तते। तत्र शताधिकछात्राः वेदाध्ययनं शास्त्राध्ययनं च अकुर्वन्। इयं पाठशाला भरद्वाजवेदालय इति प्रसिद्धो वर्तते।

२००१ तमे वर्षे स्वामिपादाः श्री शङ्कर अद्वैत शोधकेन्द्रं शृङ्गगिरौ नरसिंहवने प्रतिष्ठापयामासुः। तत्र मातृकाणां संरक्षणं शोधकार्यं च प्रचलति।

एवमेव ५६ तमे वर्धन्त्युत्सवसमये स्वामिनः गीताज्ञानयज्ञं प्रारभन्त। ये च सम्पूर्णभगवद्गीतां आत्मसात्कृत्वा प्रस्तुवन्ति तेभ्यः २१००० धनं दत्वा सम्मानं क्रियते। एतावता ३५० त अधिकाः सम्मानिताः सन्ति। एवं सनातनसंस्कृतभाषा विकासाय कार्यं शारदापीठतः प्रचलद्वर्तते।

सोन्दा स्वर्णवल्ली पीठम्, शिरसि

इदं पीठं कर्नाटकराज्यस्य उत्तरकन्नडमण्डले राजते। पीठेऽस्मिन् सम्प्रति श्री गङ्गाधरेन्द्र सरस्वती स्वामिनः शोभन्ते। एते संस्कृतविकासाय दत्तावधानाः सन्ति। अस्मिन् एव मठे श्री राजराजेश्वरी संस्कृतमहाविद्यालयः वर्तते। अत्रापि वेदानां शास्त्रानां च अध्ययनाध्यापनं प्रचलति।

एवं च प्रतिवर्षं छात्राणां पाटववर्धनाय वाक्प्रतियोगिता, वेदकण्ठपाठः, अन्त्याक्षरी, शालाकादि स्पर्धा आयोज्यते। एवमेव शङ्करजयन्त्युत्वसवसमये वेदान्तशास्त्रस्य मौखिकपरीक्षा अपि आयोज्यते। पुनश्च मे मासे वाक्यार्थ

सभा प्रचलति। तत्र देशस्य नानाप्रान्तेभ्यः विद्वांसः वाक्यार्थं कुर्वन्ति। इत्थं स्वर्णवल्ली पीठतः वैदिकलौकिकसंस्कृतभाषा रक्षणं प्रचलदस्ति।

योगानन्देश्वरसरस्वती मठः K.R. नगरम्

अयं मठः मैसूर नगरस्य समीपे चकास्ति। अत्र श्री योगानन्देश्वर सरस्वती स्वामिनः राजन्ते। अत्र कृष्णयुजुर्वेदाध्ययनाय अवकाशः विद्यते। अपि च अत्रैव वेदान्तभारती इति शोधसंस्था अस्ति। अत्र विद्यावारिधि (Ph.D) उपाधि निमित्तं शोधकार्यं कर्तुम् अवकाशः विद्यते। पुनश्च वाक्यार्थसभा, वेदसभा च प्रतिवर्षं आयोज्यते।

श्री रविशङ्कर गुरुजी आश्रमः

एषः आश्रमः बेङ्गळूरु नगरे वर्तते। अस्य आश्रमस्य संस्थापकः रविशङ्कर गुरुजी अस्ति। अत्र आधुनिकरीत्या संस्कृताध्ययनाय अवकाशः लभ्यते। विशिष्य प्रौढशालायामध्ययनेन सह वेदसंस्कृतयोरध्ययनाय अत्र लब्धास्पदः वर्तते। अत्र सहस्राधिकाः छात्राः अध्ययनरताः सन्ति। अतः रविशङ्कर गुरुजी वर्येभ्यः प्राचीनकालदृष्ट्या कुलपतिव्यपदेशः नातिशयोक्तिः स्यात्। उच्यते किल–

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादि पोषणात्।

अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः॥ (संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवराम आप्टे)

एवं च एतदतिरिच्यापि अन्याः संस्थाः संस्कृतस्य विकासाय दत्तचित्ताः सन्ति। ताः मुख्याः संस्थाः निम्नाङ्किताः सन्ति।

१. रामचन्द्रापुर मठः, होसनगरम्

२. उडुपीस्थ अष्टमठाः

३. आदिचुंचनगिरि मठः

४. सिद्धगङ्गा मठः

५. श्री गणपतिसच्चिदानन्द आश्रमः

संस्कृतशिक्षाविकासाय धार्मिकसंस्थाभिः अनुष्ठीयमानकार्यक्रमाः

१. संस्कृतशिक्षाकेन्द्राणां संचालनम्

२. शोधसंस्थायाः संचालनम्

३. भगवद्गीताभियानम्

४. वेदपारायणस्यायोजनम्

५. वेदसम्मेलनस्यायोजनम्

६. रामायणपारायणम्

७. शास्त्रगोष्ठी

८. मातृकाणां संग्रहणम्

उपसंहारः

इत्थं च कर्नाटकराज्ये पाठशालायाः रक्षणाय महर्षि सान्दीपनी वेदविद्या प्रतिष्ठानम् एवं कांचीकामकोटी पीठं प्रोत्साहयदस्तीति नितरां प्रमोदः। एवं कर्नाटकराज्ये धार्मिकसंस्थाः वैदिकलौकिकसंस्कृतयोः शिक्षाविकासाय रक्षणाय च दत्तावधानाः सन्ति। अनेन निश्चप्रचं संस्कृतस्य संरक्षणं कर्नाटके भवतीति अलं विस्तरेण।

जयतु संस्कृतम्। जयतु मनुकुलम्।

संस्कृतसम्वर्द्धने मिथिलायाः योगदानम्

डॉ. सुरेन्द्र महतो
अतिथिप्राध्यापक शिक्षाशास्त्रम्, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठम्, नवदेहली-1100016

भाति सर्वेषु वेदेषु रतिः सर्वेषु जन्तुषु।
तरणं सर्व-तीर्थानां तेन भारतमुच्यते।।[1]

सभ्यतासंस्कृतिदृष्टया विश्वेऽस्मिन भारतस्य स्थानमन्यतमः। भारतस्य भारतीयता-संस्कृतिसभ्यतायाः संरक्षिका-संपोषिका-संवर्धिका या भाषा सा संस्कृतभाषा। तस्या भाषायाः विशद्वाङ्मये एत्र विश्वस्य प्राचीनतमो ज्ञानराशिः संकलितः संरक्षितश्च। वेदपरम्पराअद्यापि गुरुशिष्य (कण्ठाकण्ठ) परम्परया एव प्रवाहमानास्सन्ति। भारतस्य सुदूरक्षेत्रेषु-ग्रामीण-परिवेशेषु, जनेषु-लोकभाषाषु, लोक-व्यवहार-संस्कार-परम्पराषु संस्कृतभाषायाः सुगन्धं प्राप्यते। तेषु मिथिलानाम् क्षेत्रविशेषस्य विशिष्टं स्थानं संस्कृतसम्वर्द्धने भजते।

भाषासु श्रेष्ठाः प्रेष्ठाः मधुरा गिर्वान भारती। अर्थात् भारोपीयभाषा-परिवारस्य प्रतिनिधि भाषारूपेण ज्ञायते। भाषेषा महत्त्वं प्रायशः भारतीयवैदेशिकचिन्तकाः विद्वांसाः स्वप्रज्ञया वर्णयति। यथा-

अमृतं मधुरं सम्यक् संस्कृतं हि ततोऽधिकम्।
देवभाष्यमिदं यस्माद् देवभाषेति कथ्यति।।[2]

एवञ्ज-

यावद् भारतवर्षं स्याद् यावद् विन्ध्यहिमाचलौ।
यावद्गंगा च गोदा चं तावदेव ही संस्कृतम्।।[3]

---

1 संस्कृतव्याकरणम्-पं. रामचन्द्र झा-चौखम्भाविद्याभवन-पञ्चम्-1956
2 तत्रैव
3 तत्रैव

अर्थात्–

वेदभाषा देवभाषा वा आर्यभाषायाः जननीपुरा।
वैज्ञानिकिश्लिष्टात्मिका एषा वागुत्सृष्टा स्वयं भुवा।।

अतः विद्वद्वरेण्याः स्वीकुर्वन्ति यत् भारतस्य गौरवं संस्कृतम् एव। येन विश्वपथप्रदर्शकत्वेन स्थानम् अलभत्। अधुनाऽपि संस्कृतस्य महत्त्वं आमुक्तस्वरेण प्रसंशति नासा (NASA) इति संस्थायाः शोधकत्ररिः। अत्राऽपि विद्वद्भिः संस्थाभिः सेव्यमाना भाषेषा।

संस्कृतसम्वर्द्धने संरक्षणे मिथिलायाः विशिष्टं योगदान दृश्यते। मिथिलायाः भौगोलिकं वर्णनम् इत्थम् प्राप्यते–

योजनानि चतुर्विंशद् व्यायामः परिकीर्तितः।[4]
गङ्गा प्रवाहमारभ्य यावत् हेमवतं वनम्।।
मिथिला नाम नगरी यत्रास्ते लोकविश्रुताः।। (वृ.वि.पु.)

स्थानमिदं वर्तमान बिहारप्रान्तस्य पूर्वोत्तरदिशि विद्यते। विषयेऽस्मिन् वर्णनम् शतपथब्राह्मणि, विष्णुपुराणे, अनर्घराघवे, कविकुलगुरोः कालिदासस्य रघुवशं महाकाव्ये, श्रीहर्षस्य नैषधचरिते जयदेवमिश्रस्य प्रसन्नराघवेऽपि नैव अपितु आदिकाव्य रामायणमहाभारतयो अपि मिलति। आदिकविवाल्मिकेः रामायणस्य बालकाण्डे मिथिलायाः चर्चा अनेन क्रमेण अस्ति–

रामोऽपि परमां पूजां गौतमस्य महात्मनः।
सकाशाद् विधिवत् प्राप्य जगाम मिथिलां ततः।।[5]

मिथिलायाः भौगोलिक वर्णनं कविवरचन्दाझा इत्थम अकुर्वन–

गंगा वहथि जनिक दक्षिणदिशि पूर्व कौशिकी धारा।
पश्चिम बहथि गण्डकी उत्तर हिमवत् वन विस्तारा।
कमलातिलयुगा अमृता धेमुरा वाङ्मती कृतसारा।
मध्य बहथि लक्ष्मणासे मिथिला विद्यागारा।।[6]

---

4 तत्रैव
5 मैथिलीसंस्कारगीत–बिहार राष्ट्रभाषापरिषद् पटना- प्र.सं. 1986
6 संस्कृतव्याकरणम्–पं. रामचन्द्र झा, पृ.सं. 237

अर्थात् भारतस्य लघुरूपम इव। अर्थात् भारतस्य उत्तरदिशि एव भूखण्ड: तथैव मिथिलाया: उत्तरदिशि पावनं मर्यादापुरुषोत्तमरामेणऽपि नमितम्।

'विद्या' इति पदस्य प्रयोगं तु उदयनाचार्येण इत्थं विहितम्–

वयमिह पदविद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा।
यदिपथि विपथेवा वर्तयाम: सपन्था:॥
उदयति दिशि यस्यां भानुमान सैवपूर्वा।
नहि तरणिरुदिते दिक्पराधीनं वृत्ति:॥[7]

अर्थात् मिथिलायां विविधधर्मावलम्बीनां प्रभाव: न दृश्यते। परिणामं वर्तते दृढ़प्रतिज्ञसंस्कृत-वेद-न्याय-मीमांसकानां भगीरथयत्नस्य।

वैदिकयुगे आर्यसभ्यताया: मुख्यकेन्दरूपेण विदेह (मिथिला) एव प्रसिद्ध:। यजुर्वेदस्य रचनाऽपि परम्पराया मिथिलायामेव अभवत् इति मान्यता वर्तते। न्यायदर्शनस्य आद्याचार्यस्य स्थानं मिथिलायां वर्तते गौतम (अहिल्या) स्थानम्। राजाजनकस्यमेव ब्रह्मज्ञानी आसीत्। तस्य सभापाण्डित्सु श्रेष्ठ: याज्ञवल्क्य: अध्यात्मविद्यायां नैव अपितु कर्मकाण्डेऽपि पारंगता:। ऋषियाज्ञवल्क्यविरचित याज्ञवल्क्य स्मृतौ चतुदर्शविद्यानां गणना चत्वारोवेदा: अङ्गानि षड् मीमांसा न्याय पूराणधर्मशास्त्रञ्च अर्थात् सम्पूर्णवाङ्मयस्य समावेश कृत:। गार्गीयाज्ञवल्क्यपरम्पराशास्त्रार्थं चर्चाऽपि प्राप्यते। जनकस्य सुयशवर्णनं बृहदारण्यकोपनिषदि-जनक जनकइतिवै जना: धावन्ति(2/1/1) देवीभागवते–

वंशेऽस्मिन् येऽपि राजावनस्ते सर्वे जनकास्तथा।
विख्याता: ज्ञानिन: सर्वे विदेहा: परिकीर्त्तिता:॥

सांख्यशास्त्रस्यप्रणेतामहर्षि: कपिलोऽपि मैथिल:। येन स्थापित: शिवलिङ्ग: कपिलेश्वस्थाननाम्नाप्रसिद्ध:। न्यायमीमांसाया: अद्वितीयं रत्नं मण्डमिश्रविषये के न जानन्ति पूतोऽयमपि मैथिल:। यस्य प्रचलित प्रसङ्ग वर्तते-मण्डनमिश्रस्य महिमाकार्ण्य आचार्यशङ्कर: मिथिलां प्रतिसमागता:। अक्षगत्य मण्डनमिश्रस्य

7 मैथिलीसंस्कारगीत

गृहान्वेषणक्रमे जलवाहिकाम अपृच्छतः? कुत्र मण्डनमिश्र धामम्? जलवाहिका श्लोकवद्धाम् उत्तरति–

स्वतःप्रमाणं परतः प्रमाणं क्रीराङ्कना यत्र गिरागिरन्ति।
द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्धाः जानीहि तन्मण्डनपण्डितौघाः।।

अनेन सिद्धयति यत् मिथिलायां जनभाषा रुपेणऽपि संस्कृतं व्यवह्नियते स्म। मण्डनमिश्रस्य अर्द्धाङ्गिनि भारती साक्षात् भारती इव भाति स्म। इतोऽपि षड्दर्शनवल्लभः आचार्य वाचस्पतिमतिश्र तस्य भामति सर्वस्व संस्कृतसेवायां समर्पितः।

पण्डितगंगेशोपाध्याः पण्डित पक्षधरमिश्रः प्राचीनः प्रसिद्ध दार्शनिकाः रघुनन्दनः, उदयनाचार्यः, गोवर्धनाचार्य–आयाचि–शंकरमिश्रप्रभृतयः विद्वांसाः सर्वं संस्कृताय अर्पितः। शंकरमिश्रस्य अद्वितीय प्रतिभा कमनाकर्षति यथा–

बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती।
अपूर्णे पञ्चमे वर्षे वर्णयामि जगत्रयम्।।

दार्शनिकमुरारीमिश्रः वर्धमानोपाध्यायः, पार्थसारथिमिश्रः महेश ठाक्कुरः कविकोकिलविद्यापतिः।

अधुनातनमपि सैव परम्परायाः निर्वाह दृश्यते। यथा–मीमांसकाः महामहोपाध्यायः चित्रधरमिश्रः, दर्शनशास्त्रस्य विद्वांसः पण्डित बच्चाझा, वेदज्ञविद्यावाचस्पति मधुसूदन झा, व्याकरणकेसरी महामहोपाध्यायः परमेश्वर झा, महामहोपाध्यायः जयदेवमिश्रः, महावैयाकरण विश्वनाथझा, महामहोपाध्याय डा. सर गंगानाथ झा, ज्योतिष ववुआजीमिश्र, त्रिलोकनाथ मिश्रः, डॉ. आदित्यनाथ झा, म.म. उमेशमिश्रः, पण्डितकुलानन्दमिश्रप्रभृतः तां परम्परामनुसरन्ति स्म।

यजुर्वेदः, याज्ञवल्क्य–स्मृतिः, वेदान्तवार्तिकः, विधिविवेकः ब्रह्मसिद्धिः, मण्डनत्रिंशति, भामतिप्रस्थानम् ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा, न्यायकणिका सांख्यतत्त्वकौमुदी, न्यायवार्तिकतात्पर्यम्, योगदर्शनम्, न्यायकुसुमाञ्जलिः, किरणावली, लक्षणावली, न्यायपरिशिष्टम्, आत्मतत्त्वविवेकः, आर्यासप्तसती,

प्रसन्नराघव, अनर्घ राघव, काव्यप्रदीपः, रसमञ्जरी, रसिकसर्वस्वम्, संगीतसर्वस्वम्, वर्णरत्नाकरः, कीर्तिलता कीर्त्तिपताकादयाः ग्रन्थाः विविधि विषयाणाम् आकरग्रन्थानां परिगण्यते।

ग्रामे-ग्रामे, गेहे-गेहे, संस्कृतविद्याकेन्द्रानि दृश्यन्ते। सतत्रयप्राथमिक-पाठशाला, शतमेकं संस्कृतमहाविद्यालयाः स्वतंत्रभारतस्य प्रथम संस्कृतशोध संस्थानं, प्रथम संस्कृतविश्वविद्यालयः क्रमशः मिथिलासंस्कृतशोधसंस्थानम्, कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृतविश्वविद्यालयः तस्य पुस्तकालयै पञ्चसहस्र पाण्डुलिपयः सर्वे मिथिलायाः संस्कृतमनुरागं पोषयतीति।

संस्कृतशिक्षायाः प्रसारोपायाः

प्रशान्त कुमार नन्द
शोधछात्र, श्री.ला.ब.शा.रां.सं. विद्यापीठ

"All birds find shelter during a rain but eagle avoids rain by flying above the clouds. Problems are common, but attitude makes the difference."

-Dr. A.P.J. Abdul Kalam

उपक्रमः

यस्मिन् काले साधारणनारी भारतवर्षे संस्कृतभाषया भावप्रकाशनेन पारंगतोऽऽसीत्, तदा संस्कृतस्य महत्त्वस्य विषये किम् वा कथयिष्यामः। समग्रभारवर्षे आकुमारीहिमाचले संस्कृतस्य महत्त्वं परिदृश्यते। विवाह-व्रताद्युत्सवं, जातकर्म, मृत्यु कर्मादिकं सकलाजीवनयात्रा संस्कृतभाषयाऽस्मिन् देशेऽनुष्ठीयते। वेदपुराणादिकाः धर्मग्रन्थाः न केवलं भारतवर्षे आद्रियन्ते परं समग्रपृथिव्यां सर्वदेशेषु संस्कृतग्रन्थानां समादरः वर्त्तते। कस्य सचेतसः विदितं नास्ति यत् संस्कृत सुसाहित्यस्य भवनं, आस्पदं साधुतायाः, आकरो ज्ञानस्य च। यद् यथा उक्तं सत्येन-

अस्माके सकलं जगद्धितकरं साहित्य सौहितकम्।
तत्त्वं सांस्कृतिकं निसर्गमधुरं सत्यं शिवं सुन्दरम्॥
साङ्गोपाङ्ग समस्तवाङ्मयकला शिल्पादि सम्भूषितम्।
श्रौतस्मार्त्तमये सुवर्णकलशेऽस्मिन् राजते संस्कृतम्॥

संस्कृतसाहित्ये भारतस्य संस्कृतिः, सभ्यता, सदाचारः ज्ञानभण्डारश्च सकलं विराजन्ते गर्भाधानादारभ्य षोडशसंस्काराः संस्कृतेन एव परिपाल्यते। अतः भारतीयानां जीवनैः सह संस्कृतं जडितम्। संस्कृत विहाय भारतविषये चिन्तनं न सम्भवम्। इत्थं तु संस्कृतस्य महत्त्वम्।

परन्तु आधुनिककाले संस्कृतस्य स्थितिः नैराश्यजनकः। संस्कृत पठितुं छात्राः न इच्छन्ति। अस्य बहुनि कारणानि विद्यन्ते। यथा-

(i) क्लिष्टयुक्तं व्याकरणम्।

(ii) आत्मनियुक्तेः अवसरस्य अभावः।

(iii) सर्वकारस्य वैमातृकमनोभावः इत्यादयः।

अस्मिन् शोधपत्रे संस्कृतशिक्षायाः प्रसारार्थं केचन् उपायाः वर्णिताः। यथा–

१. संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणम्

संस्कृतव्याकरणं क्लिष्टं भवति। अनेन छात्राः अवबोधने क्लिष्टम् अनुभवन्ति। ते विशेषरूपेण रुचिम् अपि न प्रदर्शयन्ति। व्याकरणस्य तत्त्वानां सरलीकरणपुरसरम् उपस्थापनं कर्त्तव्यम्। न केवलं सरलीकरणम् अपि च संगणकमाध्यमेनं संस्कृतपाठनम् अपि कर्त्तव्यम्। अनेन छात्राः संस्कृतव्याकरणे रुचिं प्रदर्शयन्ति।

२. संस्कृतभाषायाः व्यवहारः

कस्यापि भाषाशिक्षणे चतुर्विधकौशलानि अपेक्षितानि, ते यथा– श्रवणम्, भाषणम्, वाचनम्, लेखनमचेति। न केवलं भाषाशिक्षणे अपि च भाषासंवर्धने प्रसारे च एतेषां चतुर्णां कौशलानां महत्त्वं दरीदृश्यते। अतः संस्कृतस्य प्रसारे प्रचारे च एतेषां सर्वेषां चतुर्विधकौशलानां प्रयोगं करणीयम्। छात्रशिक्षयोः मध्ये संभाषणं संस्कृतभाषामाध्यमेन अवश्यमेव भवेत्।

३. नवविषयाध्ययनम्

संस्कृतच्छात्राः अध्यापकाश्च संस्कृतभाषया सह नूतन विषयाः अपि जानीयुः। यथा–संगणकम्, इतिहासम्, आंग्लम्, गणितं, विज्ञानादी। अनेन अस्माकं ज्ञानं न केवलं संस्कृतमध्ये अपि तु संस्कृतेतरविषये अपि भविष्यति। अनेन अस्माकम् अपि साम्प्रतिक समाजस्य विकासे, समस्या-समाधाने विशिष्टं योगदानं भविष्यति। इत्यनेन संस्कृतस्य प्रसारः ऊभौ प्रत्यक्षपरोक्षरूपेण च भविष्यति।

४. अनुसन्धानकार्यम्

साम्प्रतिकसमाजे नैकविधाः समस्याः परिदृश्यते। एतेषां समस्यानां समाधानं अस्माकं प्राचीनशास्त्रे विद्यते। यदि वयम् आधुनिक समाजस्य

समस्याम् उपरि शोधकार्यं कृत्वा नूतनानि समाधानानि दद्मः तर्हिः, अवश्यम् एव संस्कृतस्य प्रसारः भविष्यति।

५. नवग्रन्थरचना

आधुनिकसमाजस्य नवविषयोपरि संस्कृतेन लेखः लेखनीयम् महतजनानां, नूतनाविष्काराणां, साम्प्रतिकपरिवर्त्तनादी उपरि अपि विशेष ध्यानं दातव्यम्। अनेन संस्कृतस्य प्रचार प्रसारश्च नूतनमेव भविष्यति।

६. प्राचीनग्रन्थानाम् अनुवादं संरक्षणं च

संस्कृतशास्त्रं व्यापकं वर्तते। प्राचीनकालस्य बहुविधाः संस्कृतग्रन्थाः समुपलभ्यन्ते। ते ग्रन्थाः संस्कृतशास्त्रस्य आधारभूताः यथा वेदः, रामायणम्, महाभारतम्, पुराणम्, हितोपदेशः, पञ्चमन्त्रम्, मनुस्मृत्यादी। न केवल प्रादेशिकभाषायाम् अपि तु वैदेशिकभाषायाम् अपि एतेषां सर्वेषां ग्रन्थानाम् अनुवादः भवेयुः। अपि च प्राचीनग्रन्थानां संरक्षणमेव अस्माकं परमं कर्त्तव्यम्। एतदर्थम् आधुनिकं ज्ञानं (संगणकम्) अवश्यम् एव अस्माकं भवेत्।

७. वैज्ञानिकशैलीं समाश्रयणम्

आधुनिकसमाजस्य समस्यासमाधाने विज्ञानस्य योगदानं सर्वजन-विदितं न केवलं समस्यासमाधाने अपि तु स्वल्पसमये, स्वल्पधनराशिव्ययेन प्रभावपूर्णरीत्या समस्यासमाधानम् अस्य अपरं वैशिष्ट्यं भवति। संस्कृतशिक्षायाः प्रसारे विकासे च संगणकस्य विशिष्टं योगदानं वर्तते। न केवलं व्याकरणशिक्षणे अपि तु पद्यगद्यकथानाटकादी शिक्षणेऽपि संगणकस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्त्तते। अभिक्रमित-अधिगमनेन (Programmed learning) अपि पाठस्य अवबोधनं प्रभावपूर्णं वर्त्तते। संस्कृतभाषायाः व्यवहारपक्षस्य कृते संगणकः लाभप्रद अस्ति। अनेन माध्यमेन वयं सुष्ठुरूपेण कथोपकथनं कर्त्तुम् अपि पारयामः। एवं प्रकारेण संस्कृतस्य बहुविधानां कार्यक्रमानां कृते संगणकस्य योगदानं वर्त्तते। अतः संस्कृतछात्राः अध्यापकाः च संगणकस्य प्रयोगः सम्यकरूपेण जानीयुः।

८. संस्कृतस्य कृते उभौ संस्कृतछात्राणाम् अध्यापकानां च उपयुक्त श्रद्धाया अभावः

समाजे प्रायशः एवं दृश्यते यत बहवः संस्कृतछात्राः संस्कृतमाध्यमेन संस्कृतविषये स्वपरिचयं प्रदातुं संकोचम् अनुभवन्ति। संस्कृतमाध्यमेन वार्त्तालापं कर्त्तुं न इच्छन्ति। किं बहुना केचन् संस्कृताध्यापकानाम् अपि एतादृशी मानसिकता। ते कक्षायां संस्कृतपाठस्य कृते संस्कृतभाषायाः प्रयोगं न कुर्वन्ति। ते संस्कृतविषये कथयन्ति परन्तु संस्कृते न। समस्यायाः समाधानम् अस्माकं पार्श्वे एव अस्ति। मम आत्मविश्वास अस्ति यत्–'यदि वयं सर्वे आत्मविश्लेषणकर्त्तुं स्वयम् अवसरं दास्यामः तर्हि नूनमेव संस्कृतशिक्षायाः समाधानं प्रभावपूर्णरित्या भविष्यति।'

९. जनानां संस्कृतं प्रति भावना

समाजे जनाः संस्कृतछात्राणाम् अध्यापकानाम् च उपरि श्रद्धा, विश्वासं च कुर्वन्ति। यतो हि ते जानन्ति संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्। अतः अस्माकं व्यवहारः, विचारः संस्कारयुक्तः भवेत्। अनेन अवश्यमेव संस्कृतशिक्षायाः प्रसारः भविष्यति।

१०. संस्कृतेतर संस्थानां संस्कृतं प्रति प्रयासः

समाजे विज्ञानिनः, अभियान्त्रिकादी जनाः संस्कृतशिक्षायाः महत्त्वम् अपि सम्यक्तया जानन्ति। NASA. ISRO, IIT इत्यादी प्रमुखसंस्थाः इदानीन्तनकाले संस्कृतम् उपरि ध्यानं प्रदर्शितं कुर्वन्ति। अन्तरिक्षस्य कृते वार्त्ताप्रेषणे संस्कृतभाषा अतीव उपकारी वर्त्तते इति NASA स्थित वैज्ञानिकानाम् अभिप्रायः। ते एवं रूपेण तेषां विचारं प्रकटं कुर्वन्ति यत–'संस्कृतभाषाम् आधारीकृत्य स्वल्पशब्दे अधिकं सूचनाम् अन्तरिक्षं प्रति प्रेषयितुं शक्यते।'

IIT (Mumbai) अपि संस्कृतव्याकरणस्य कृते बहुविधाः कार्यक्रमाः करोति। अतः अस्माकं चिन्तनं विज्ञानपुरसरं भवेत्। अनेन अवश्यमेव संस्कृतशिक्षायाः प्रसारः भविष्यति।

११. सर्वकारसहयोगः

विशेषरूपेण, सर्वादौ च सर्वकारस्य सहयोगः संस्कृतशिक्षायाः प्रसारस्य कृते अतीव आवश्यकी। सर्वकारस्य सहयोगेन संस्कृतवाङ्मयस्य प्रसारः विकासश्च कृते नैकविधाः अवसराः सृजनं भविष्यति।

उपसंहारः

संस्कृतच्छात्राणां कृते उपयुक्त छात्रवृत्तिः, छात्रावासः, उपाधेः मान्यता, आत्मनियुक्तेः अवसर इत्यादी विषये सर्वकारः समीचीनं ध्यानं दातव्यम्! तथा च संस्कृतक्षेत्रे अत्याधुनिक सूचना, प्रयुक्तिविद्यायाः, प्रयोगस्य कृते अध्यापकानां कृते, भितिभूमेः (Infrastructure) विकासार्थम् उपयुक्तम् आर्थिकानुदानं प्रदात्तव्यम्। संस्कृतविषये कार्यशाला, संगोष्ठी, सम्मेलन इत्यादीनां कृतेऽपि समीचीनम् अवसरः प्रयच्छेत्। आकाशवाणी दूरदर्शने च संस्कृतप्रसारणस्य समयः अपि अधिकं भवेत्। विद्यालयीयस्तरे संस्कृतविषये विशेषध्यानं प्रदातव्यम्।

एतेषां सर्वेषां समस्यानां परिष्करणेन अवश्यमेव संस्कृतशिक्षायाः प्रसारः भविष्यति इत्यत्र नास्ति सन्देहस्य अवकाशः।

अन्तिमे प्रबन्धगुरुः Shiv Khera मतानुसारेण–"If we are not the part of the solution, then we are the problem."

यावत् भातरतवर्षं स्यात्, यावत् विन्ध्यहिमाचलौ।
यावत् गंगा च गोदा च तावदेव हि संस्कृतम्।।

जयतु संस्कृतम्, जयतु भारतम्।

संदर्भग्रन्थसूची :

१. महापात्र, गोपीनाथ– संस्कृत प्रबन्ध रत्नाकर, पुस्तक प्रकाशक ओ विक्रेता, कटक।
२. कीथ, ए.बी.– संस्कृत साहित्य का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
३. आचार्य कपिलदेव द्विवेदी– संस्कृतनिबन्धशतकम्, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
४. कर, भुवनेश्वर– संस्कृत साहित्यर इतिहास, ओडिशा राज्य पाठ्य पुस्तक प्रणयन ओ प्रकाशन संस्था, भुवनेश्वर (१९९९)।

पत्रिकाएँ–१. संभाषणसन्देशः–सन्देश प्रतिष्ठान, गिरि नगरम्, बेङ्गलुरु।
२. संस्कृतमञ्जरी–दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली।

संस्कृतसाहित्ये वर्णिता शिक्षाप्रक्रिया

जीवनकुमारः

शोधच्छात्रः

संस्कृतसाहित्यं नाम भारतदेशस्य सांस्कृतिकपरम्पराया मूलम्। तदवगमश्च संस्कृतभाषायावस्तद्व्यवहर्तुं मनुष्यसमाजस्य च सुतरामवगतिमपेक्षते। संस्कृतं नाम वस्तुतः संस्कारकेन्द्रितस्य भारतीयजीवनस्योपलक्षणमिति निश्चप्रचं वक्तुं शक्यते।

शिक्ष् विद्योपादाने इत्यास्माधातोः **'गुरोश्च हलः'**[1] इत्यनेन पाणिनिसूत्रेण 'अ' प्रत्यये कृते सति टाप् च कृते शिक्षा शब्दः सिध्यति। अस्यार्थोऽयं भवति यत्, विद्याग्रहणमिति। शिक्षायाः विद्यापदेनापि व्यवहारः भवति संस्कृतवाङ्मयेऽपि अवलोक्यते। वैदिकलौकिकसाहित्ययोः शिक्षायाः महत्त्वस्य, विभेदस्य, उद्देश्यानाञ्च विशदं वर्णनं विद्यते। षड्वेदाङ्गेषु शिक्षाङ्गस्य वैशिष्ट्यमिति कथने नितान्तमेव युक्तियुक्तं प्रतीयते। यतोहि 'शिक्षा वेदस्य घ्राणं मन्यते।' **"स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा"**[2] उच्चारणाय स्थानप्रयत्नोदात्तादीनां ज्ञानमावश्यकमिति।

शिक्षा समाजस्य एका प्रक्रिया वर्तते। शिक्षाशास्त्रिणां सामाजिकानां च विचारोऽस्ति यत् शिक्षया मानवः सामाजिकसंरचनानुरूपो भवति। वस्तुतः समाजे मानवैः शिक्षयैव स्वस्थानं जीवनञ्च निर्धार्यते। 'शिक्षा' अयं शब्दः वैदिककालादेवमानवनवाचि विलसति। इयं शिक्षा प्रक्रिया मानवजीवने अजस्रं प्रचलति। परिवर्तनशीलेऽस्मिन् समाजे शिक्षाप्रक्रियायामपि निरन्तरं परिवर्तनं जायते। यथा समाजे भवति तथैव शिक्षाव्यवस्थाऽपि। यदारभ्य मानवस्य ज्ञानक्षेत्रस्य उद्भवकालादेव अद्यावधि यावत् 'विद्या' इति शब्दः विद्याग्रहणदाने सुप्रसिद्धः एव। यथोक्तं मनुना—

---

१. (अ.२/३/१०३)

२. (ऋग्वेदः, भाष्यभूमिकायाम् पृ.४८)

एदतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवः॥

शिक्षादर्पणमिव कार्यं सम्पादयति, यथा दर्पणमवलोक्य मानवः स्वकीयं वास्तविकं स्वरूपं वेत्ति तथैव शिक्षया मनुष्यः स्वस्तित्त्वबोधं कर्तुं प्रभवति। शिक्षयैवात्मज्ञानं जायते नास्त्यत्र काचित् विप्रतिपत्तिः। या शिक्षा ऋषिभिः मुनिभिश्च आदिकालाद् स्वीक्रियते, या शिक्षा मनुनाऽपि उद्‌गीरितम्, या शिक्षा उपनिषद्‌शिक्षायाः प्रमाणिकतां भजते सा शिक्षा वर्तते सत्यस्याचरणं यस्याः सत्यविद्यायाः अनुपालनं साक्षात् भगवता रामेणापि मनसा, वाचा, कर्मणा च विहितम्।

संस्कृतसाहित्येऽपि शिक्षायै विद्या, ज्ञानं, प्रतिभा इत्यादयः कवयः काव्येषु महाकाव्येषु च भूरिशः स्पष्टरूपेण प्रतिपादयन्ति। यथा–

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्।

विद्ययाऽस्मिन् जगति सर्वाण्यपि कार्याणि साधयितुं शक्यन्ते। यथा हि उक्तम्–

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।

जगत्यस्मिन् ज्ञानमेव पवित्रतमं खलु, सत्यमेव निगदितं गीतायाम्–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते[३]।

मनुस्मृतौ भगवता मनुनाऽपि वेदानां सर्वज्ञानमयत्वमङ्गीकृतम्। यथा हि–

यः कश्चिद् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥[४]

एतादृशाः अनेके श्लोकाः नैका पङ्क्तयश्च संस्कृवाङ्मये प्राप्यन्ते, येषु विद्याया (शिक्षायाः) महत्त्वं स्पष्टं भवति। माण्डूक्योपनिषदि द्वे विद्ये वर्णिते परा अपरा चेति। गीतायामपि अध्यात्मविद्यायाः विषये प्रतिपादितमस्ति–

---

३. (श्रीमद. भ.गीता ४/३८)
४. (मनुस्मृतिः २/७)

अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।।

ईशावास्योपनिषदि विद्यायाः प्रकारद्वयमेव वर्णितम्–

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।[५]

संस्कृतसाहित्यस्य सर्वप्रथममहाकाव्यस्य आदिकाव्यरामायणस्यापि तदुद्धरणं द्रष्टव्यमस्ति यत्र विद्या विविधा प्रोक्ता कविना वाल्मीकिना–

एतद् विद्याद्वये लब्धे न भवेत् सदृशस्तव।
बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरः।।[६]

प्राचीनकाले तु विविधविषयाः आसन्। महाभारते भगवता व्यासेन प्रतिपादितं यत्– चतुर्वेदाः, वेदानां षडङ्गानि, धनुर्वेदः, आख्यानम्, इतिहासः, सांख्ययोगः, कर्मकाण्डं, दर्शनम्, उपनिषदः, आयुर्वेदश्चेतयादयः विषयाः प्रमुखरूपेण पठनीया इति। अध्ययनाध्यापनाय प्रमुखविषयेषु आन्वीक्षिकी त्रयीवार्तादण्डनीतीनां च उल्लेखः प्राप्यते अर्थशास्त्रे–

आन्वीक्षिकी त्रयीवार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या[७]

महर्षियाज्ञवल्क्येनापि चतुर्दशविद्यावर्णितास्सन्ति–

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशाः।।[८]

संस्कृतसाहित्ये रघुवंशमहाकाव्ये महाकविना कालिदासेनाऽपि रघुवर्णनप्रसङ्गे कौत्समुखेन चतुर्दशविद्यानां चर्चा कृता–

निर्बन्धसञ्जातरुषाऽर्थकार्श्यमचिन्तयित्वा गुरुणाऽहमुक्ताः।
वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्रो दश चाहरेति।।[९]

कादम्बर्यां चन्द्रापीडस्य शिक्षाप्रसङ्गे महाकविबाणभट्टेनापि वेद–व्याकरण–मीमांसा–ज्योतिष–गणित–भूगोल–रसायन–भौतिक–दर्शनेतिहास–

---

५. ईशावास्योपनिषद्, ११

६. रामायणम् (१२/१७)

७. (अर्थशास्त्रम्– १/१)

८. याज्ञवल्क्यस्मृतिः १/३)

९. (रघु. ५/२१)

साहित्यसंस्कृत्या-दीनां विषयाणामुल्लेखो विहितोऽस्ति। (शिक्षाप्रसङ्गे, पूर्वभाग:)। नैषधीयचरितमहाकाव्यस्य प्रथमसर्गे राजा नलस्याद्भुतगुणवर्णन-प्रसङ्गे श्रीहर्षेण चतुर्दशविद्यानां चर्चा विहिता। तद्या-

अधीतिबोधाचरणप्रचाणैर्दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुर्दशत्वं कृतवान्कुतः स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दश स्वयम्॥[१०]

महाकविकालिदासानुसारं यस्य विषयज्ञानं सम्प्रेषणकौशलञ्च उत्तमो भवति स एव शिक्षकः समाजे प्रतिष्ठामाप्नोति। सामान्यतः कस्यचित् शिक्षकस्य विषयज्ञानं तु साधु भवति परन्तु विषयज्ञानं गभीरं न भवति, तस्मादपि स शिक्षको विद्वान् कुशलो वा न मन्यते। अत उभयमपि यस्य साधु स एव सर्वोत्तमः कुशलश्च शिक्षको भवति। यथोक्तं कविना-

शिलष्टाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साध स शिक्षकाणां धुरिप्रतिष्ठापायितव्य एव॥[११]

पुनश्च कविः शिक्षकाणां विषये जागरूकतया उल्लिखति। तस्य मतानुसारं शिक्षकः केवलं जीविकायै एवाध्यापनवृत्तिं न स्वीकुर्यात्, अपितु तस्य दायित्वं सामाजिकमार्गदर्शनमपि भवति। अतः केवलं स्वजीविकायै शिक्षको न पाठयेत्, महाकविकालिदासमते तादृशः शिक्षक वणिकेव। तद्यथा-

लब्धास्पदोस्मीति विवादभीरोऽस्तितीक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥[१२]

वस्तुतः पुराकालादेव सामाजिकपरिवर्तने शिक्षकाणां महद्योगदानं वर्तते। वैदुष्यपरीक्षणविषये महाकविना कालिदासेन प्रतिपादितं यत् यदा बुधः कस्यचित् प्रशंसां नैव कुर्वन्ति तावत् कश्चिदात्मानं पण्डितं मन्यमानो व्यर्थमेवालपति। यतोहि प्रायः स्वगुणेषूत्तमानां धीमतां मनीषिणां द्वारा कृतः संस्कारः समादर एव तस्य प्रमाणं भवति। यथा-

---

१०. (नैषध. १/४)
११. (माल्विकाग्नि. १/१६)
१२. (माल्विकाग्नि. १/१७)

तत्सम्भावितमात्मानं बहु मन्यामहे वयम्।
प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः।।[१३]

योगशिक्षाया अर्थात् वर्तमानसमये शारीरिकशिक्षारूपेण यद् वयं पठामः पाठयामश्च तद्वर्णमपि संस्कृतसाहित्ये अवलोक्यते। यथा हि–

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी।
सती सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे।।[१४]

प्रस्तुतपद्येन ज्ञायते यद् कालिदासकाले तत्पूर्वं वा योगस्य प्रचारः प्रसारः सम्यगासीदिति अनेन योगबलेनैव कश्चित् प्राणत्यागं कर्तुं समर्थो भवति स्म। संस्कृतसाहित्ये न केवलं योगस्यैव अपितु यदि अस्माभिः सूक्ष्मरूपेण विचार्यते तर्हि विविधप्रसङ्गेषु नैतिकी शिक्षाऽपि उत्तमरीत्या वर्णिता दरीदृश्यते। यथा हि शाकुन्तलनाटके–

शुश्रूषस्य गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
पत्युर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।[१५]

अनेन पद्येन स्पष्टीयते यत् महाकविः नारीशिक्षाविषयेऽपि भृशं चिन्तयति स्म। आधुनिकसंस्कृतसाहित्येऽपि विविधविषयाणामुल्लेखः कृतः कविभिः। 'भारतमाताब्रूते' इति नामकमहाकाव्ये डॉ. हरिनारायणदीक्षितो–ववित–

विद्याधनं नैव हरन्ति तस्कराः न चोपयोगेन कदापि हीयते।
सम्पाद्विभागे न विभाज्यते जनैः तदस्ति विद्या हि विलक्षणं धनम्।।[१६]

प्राचीनकाले शिक्षाव्यवस्थाया द्विमुखीप्रक्रियां प्रतिपादयन् एडम्स्' (Adams) महोदय गुरुं शिष्यं च प्रमुखत्त्वेनाङ्गीकरोति। तदनन्तरं रूसो (Ruso) प्रभृतिभिर्विद्वद्भिरपि तत्स्वीकृतम्। परन्तु कालान्तरे पाश्चात्य–

---

१३. (कुमारसं. ६/२०)
१४. (कुमारसं. ६/२१)
१५. (अभिज्ञानशा. ४/१८)
१६. (भारतमाताब्रूते. २०/७)

शिक्षाशस्त्रिणा जॉन डी.वी महोदयेन शिक्षाप्रक्रियाया: त्रीण्यङ्गानि प्रतिपादितानि, छात्र: शिक्षक: पाठ्यक्रमश्चेति। अतएव शिक्षा त्रिमुखी प्रक्रिया इत्युच्यते। वस्तुत: शिक्षाप्रक्रियायां शिक्षकस्य स्थानम् अतीवविशिष्टं भवति। यतोहि शिक्षकस्य प्रतिभाकौशलयोरभावे शिक्षणाधिगमयोर्वाञ्छितसाफल्यं नैव प्राप्यते। प्राचीनग्रन्थेषु गुरोर्महत्त्वं वर्णितमिति विजानन्त्येव मनीषिण:। तथैव अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्येष्वपि शिक्षाव्यवस्थाविषयकं वर्णनं प्राचुर्येण समुपलभ्यते। तत्र अनेकेषु काव्येषु महाकविभि: शिक्षाविषयकवैशिष्ट्यं स्व-स्वग्रन्थेषूल्लिखितं वर्तते।

सुविदितमेव यत् संस्कृतवाङ्मये शिक्षाव्यवस्थायां छात्रोऽपि मुख्य: घटको भवति शिक्षाव्यवस्थाया:। प्राचीनकाले छात्राणां कृते अनेके नियमा: आसन्, छात्रा: अपि तान् नियमान् पालयित्वा विद्यार्जनानन्तरं सम्मानमपि प्राप्नुवन्ति स्म परन्तु साम्प्रतं सा गौरवमयी परम्परा समाप्तप्राया। शिक्षाया: तृतीय मुख्य: घटक अधिगमो वर्तते, यावद्पर्यन्तं अधिगमो न भवति तावत् पर्यन्तं शिक्षणं तु निरर्थकमेव। अधिगमविषयेऽपि केचन् तथ्यानि उपलभ्यन्ते। मनुस्मृतौ उत्कृष्टश्लोकेनानेन ज्ञायते यत् वाञ्छिताधिगम: कथं भवतीति। यथा–

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेत् वीक्ष्यमाणे गुरोर्मुखम्।।[१७]

अर्थात् यदा छात्र: शरीरमनोबुद्धीन्द्रियाणि योजयित्वा, एकाग्रमनसा बद्धकर: गुरोर्मुखं पश्यन् तिष्ठति तदा जायते उत्तमाधिगम:। अधिगमे अनुशासनस्य महत्त्वम् अतिशयेन वर्तते। यदि छात्रै: अनुशासनेन विद्यार्जनं क्रियते तर्हि निश्चयेन वाञ्छिताधिगमो भवति।

इत्थं शिक्षाप्रक्रियायां शिक्षकस्य स्थानं सर्वोपरीति प्रतिपादितं संस्कृतसाहित्ये। **'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु:'** इति कथयित्वा तस्य महत्त्वम् इतोऽपि वर्धितम्।

।।शमिति।।

---

१७. (मनुस्मृति: २/१४२)

वैदिकवाङ्मये शैक्षिकप्रबन्धनम्

कपिलदेवः (शिक्षाचार्यः)

रतन बारिकः (शिक्षाचार्यः)

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

नवदेहली-110016

मानवजीवनं समन्तात् समुन्नेतुं परमात्मना वेदेषु याः याः प्रवृत्तयः सम्यक् समुन्मेषिताः ताः ताः संस्कृतसाहित्ये यथायथं मनीषिभिः समाख्याताः। मानवजीवनस्य सुदीर्घमध्वानं सुप्रकाशयितुं बहवो हि प्रबन्धप्रकाराः प्रकाशस्तम्भायन्ते तथापि पुरुषपुष्टिकरणाय रसायनभूताः सन्ति। तेषु अन्यतमाः प्रबन्धप्रकारा एवं विधाः सन्ति यैः मानवानामभ्युदयो विश्वे राष्ट्रे च भवति। यथा - शिक्षाप्रबन्धनम्, अनुष्ठानप्रबन्धनम्, कृषिपशुपालनप्रबन्ध नम्, शिल्पोद्योगप्रबन्धनम्, व्यापारप्रबन्धनम्, चिकित्साप्रबन्धनञ्च।

मानवोन्नतेर्मूले शिक्षा एव अस्ति। अत एव शिक्षाम्+उद्दिश्य भूयान् विचारः संस्कृतसाहित्ये समवलोक्यते। शिक्षणयोग्यानि स्थानानि कानि-कानि भवन्ति? तत्र के-के विषयाः समाध्यापनीयाः? अध्यापकाः कतिधा कीदृशाः स्युः? कीदृशः छात्राणां प्रवेशनियमः, अधिकारिणां कार्यक्षेत्रस्य किं स्वरूपम्? कुलपतिस्वरूपं किं किं च तत्कार्यम्? इत्यादिषु विषयेषु परिपूर्णाः सन्ति संस्कृते विचारोन्मेषाः? वर्तमानकाले ये नवनवा विषयाः पाठ्यक्रमे सन्निवेश्यन्ते ते विषया उपनिषत्सु प्रसङ्गानुसारं यथाक्रमं निर्दिष्टाः। सम्प्रति विश्वविद्यालयेषु सङ्कायप्रबन्धो दरीदृश्यते तथैव प्राचीनकालेऽपि सङ्काय सन्निवेषः पुष्टिमुपयातः।

अज्ञानान्धतमः प्रभेदप्रवणा लोकोपकृत्येकदृक्
पाखण्डादिनिवारणैकमतिदा मोदावहा मानिनाम्।

सद्वृत्तेन विविर्धिताखिलगुणा या शस्यते ज्ञानिषु
या देहात्ममनोविकासरुचिरा शिक्षाऽस्तु सा श्रेयसे।।[1]

शिक्षायाः स्वरूपम्

शिक्षा कीदृशी स्यात्? इति प्रश्नः प्राक्कालादेव विचारः चर्चाविषयः। शिक्षायाः प्राचीनतमं रूपम् अथर्ववेदे प्राप्यते। तत्र शिक्षाया उद्देश्यं गुरु-शिष्य-सम्बन्धादिकं च विस्तारशो निरुप्यते। तत्र ज्ञान-सम्पन्नत्वस्य चिन्तनशक्तेश्च महत्त्वं प्रतिपाद्यते। ज्ञानेन सह संयमस्य धारणाशक्तेश्च महत्त्वं निर्दिश्यते। वेदानुकूलम् आचरणम् अनिवार्यत्वेनादिश्यते। **पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।**[2]

अथर्ववेदे छात्रस्य ब्रह्मचर्यपालनम् अनिवार्यत्वेनादिश्यते। आचार्यस्य दुर्धर्षत्वं संयमित्वं शीलत्वं च प्रशस्यते। तत्र 'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुम् उपगच्छदिति' पद्धतिराश्रीयते।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।[3]

श्रमस्तपश्च छात्रस्य शस्त्रद्वयम्।
तपः श्रमास्यां सर्वं लोकं स पुष्णाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया
श्रमेण लोकांस्तपसा पुष्णाति।[4]

गुरुशिष्यसम्बन्धः

स्फुटमेतद् निर्दिश्यतेऽथर्ववेदे यद् आचार्यो अध्येतृषु मातृवत् पितृवच्च स्निह्यति व्यवहरति च। **आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।**[5]

---

1. आचार्यः कपिलः
2. अथर्ववेदः 1.1.2
3. अथर्ववेदः 11.5.17
4. अथर्ववेदः 11.5.4
5. अथर्ववेदः 11.5.3

शिक्षाया उद्देश्यम्

यदि समस्तरूपेण शिक्षाया उद्देश्यं विविच्यते तर्हि वक्तुं पार्यते यत् तादृशी शिक्षा श्रेयस्कारी या मानवानां जीवकोपार्जने साहाय्यम् आचरेत्, तेषां बौद्धिकं विकासम् आपादयेत्।

मानवं सुसंस्कृतं सभ्यं च विधाय तत्र सांस्कृतिकम् उत्कर्षं सम्पादयेत् जीवनस्य च सर्वाङ्गीणं विकासम् आपाद्य पूर्णत्वं संसाधयेत्। चरित्रनिर्माणेन नैतिकताया विकासनं स्वार्थपरता-निरोधेन जीवनं सामाजिकं कुर्याद् यथा व्यष्टेः, समष्टेः, व्यक्तिसामञ्जस्य पूर्णः समन्वयः स्यात्, स्वावलम्बनभावना विकसेत्, सर्वासु समविषमासु परिस्थितिषु कार्यसम्पादनक्षमतासञ्जायेत्। बालकानां तथाविधं सर्वाङ्गीणम् उन्नयनं स्याद् यथा स्वस्थे शरीरे स्वस्थमनः कर्मठे देहे व्यवहारिकी बुद्धिः मोक्षावाप्तिसाधकं ज्ञानं च विलसेत्।

स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।[6]

वैशेषिकदर्शने 'यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः' इति अनेन धर्मलक्षणेन सदैव शिक्षाया उद्देश्यम् अभ्युदयस्य निःश्रेयसः चावाप्तिर्निर्दिश्यते। 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इत्यादिभिः सुभाषितैः शङ्कराचार्यवचनेन च अध्यात्मज्ञानावाप्तिः मोक्षाधिगमश्च शिक्षायाः लक्ष्यं निर्धार्यते।

सत्याचार-विचारशिक्षणपरा सर्वाङ्गिकीमुन्नतिं
छात्राणां विदयद् विवेक-विनयाचार-प्रचारैकधीः।
चारित्र्योन्नतिसाधिका गुणगणैः सारल्यसंसाधिका
लोकेषु प्रचरेत् सुशिष्यजनिदा शिक्षा सदा कामधुक्॥[7]

शिक्षाविषये पाश्चात्यविदुषां मतम्

सुकरातमहोदयस्य अभिमतं यद् व्यक्तिगतभेद-वारणेन सार्वभौमसत्यज्ञानं शिक्षाया उद्देश्यम्। स शिक्षां व्यष्टेः समष्टेश्च समुन्नतिसाधनं मनुते। प्लेटोमहोदयः शिक्षायाः उद्देश्यरूपेण सच्चरित्रता-विनय-

---

6. तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11.1
7. आचार्यकपिलः

संस्कृति-सभ्यता-गुणग्राहिता-कलाप्रियत्वादिगुणानां समन्वयं करोति। अरस्तूमहोदयः प्रस्तौति यत् सा शिक्षा साधीयसी याऽध्यात्मिदर्शनेन सममेव लोक-व्यवहार-दर्शनस्यापि सामञ्जस्यं साधयेत्। शिक्षा उदात्तभावोद्दीपनेन सहैव आत्मनश्च परिष्काराय स्यात्। शिक्षामेव जीवनस्य लक्ष्यं मन्यमानाः शिक्षाक्षेत्रे सादरं स्मर्यन्ते।

शिक्षाया यथार्थवादिस्वरूपम्

यथार्थवादसमर्थकेषु मल्कास्टरमहोदयः शिक्षाया उद्देश्यं बालकस्य सर्वाङ्गीणविकासं मन्यते। शिक्षा च मातृभाषामाध्यमेन स्यात्। शिक्षाशास्त्री फ्रांसिसबेकनमहोदयः केवलं पुस्तकीयशिक्षाया निकृष्टत्वं प्रदर्श्य शिक्षायाः पूर्णव्यवहारिकीकरणं समथर्यते। जर्मनशिक्षाशास्त्री गटेकमहोदयः समर्थयते यद् मातृभाषामाध्यमेनैव विज्ञानविषयाणां कलाविषयाणां चाध्यापनं कार्यम्। रटनक्रिया परिहार्या। वस्तुज्ञानम् अनुभवमूलकं परीक्षणमूलकं च स्यात्।

कमीनियसमहोदयः शिक्षाया उद्देश्यं प्रतिपादयति यद् ज्ञान-विज्ञानद्वारा मानव-हृदये ईश्वरसान्निध्यम् अवाप्य आनन्दानुभूतिः स्यात्। नैतिकधार्मिकभावनानां समुद्बोधनं स्यात् स मातृभाषाध्ययनम् आवश्यकं मनुते। स बालानां ताडनादिकमपि गर्हयति। स समर्थयते यत् शिक्षायाः स्वरूपं सार्वजनिकं स्यात्। वर्ग-विभेद-परिहार-पूर्वकं शिक्षासुविधायां साम्यं स्यात्। येन बालाः स्वयमेव विद्यालयं जिगमिषवो भवेयुः। सहैव तत्रत्यं वातावरणं तादृशं मधुरं स्निग्धम् आकर्षकं च स्याद्।

भारतीयशिक्षाविदां मतम्

शिक्षाविदो महर्षिदयानन्दस्याभिमतं यत् शिक्षार्थं गुरुकुलीया पद्धतिरेव श्रेष्ठा। रवीन्द्रनाथटैगोरमहोदयो रूसोमहोदयस्य मतम् अनुसृत्य प्राकृतिकवातावरणे प्रकृतिसहयोगमूलकम् उन्मुक्तशिक्षाग्रहणं श्रेयस्करं मन्यते। पण्डितमदनमोहन-मालवीयः शिक्षाया उद्देश्यम् सच्चरित्रताम्, सत्य-ब्रह्मचर्य-स्वाध्याय-देशभक्ति-ईश्वरविश्वासादि सद्गुणग्रहणम् शारीरिकं पुष्टिम्, आत्मत्याग-भावनायाश्च प्रतिष्ठाम् अङ्गीचकार। एवं समासतः शिक्षाया उद्देश्यं विद्यते मानवस्य शारीरिकी, मानसिकी, बौद्धिकी, नैतिकी च समुन्नतिस्तथा संपादनीया यथा तस्य व्यक्तित्वं पूर्णत्वं प्राप्य स्वोन्नत्या सममेव समाजहितं विश्वहितं च कर्तुं प्रभवेत्। शिक्षोद्देश्यं स्यात् - **सर्वे भवन्तु सुखिनः**।

संस्कृतशिक्षाया उन्नयने संस्कृतसंस्थानां भूमिका

अंजलि शर्मा
शिक्षाचार्य छात्रा (एम. एड.)
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
नवदेहली-110016

संस्कृतभाषा वैज्ञानिकी भाषा वर्तते। संस्कृतस्य व्याकरणं मनोवैज्ञानिकं विश्वप्रसिद्धञ्च वर्तते। संस्कृतव्याकरणं सङ्गणकयन्त्रस्य कृते बहूपयोगी अनुकूला च वर्तते। संस्कृतमस्माकं पूर्वजानां धरोहरं वर्तते। इयं संस्कृतभाषा संसारस्य प्राचीनतमा भाषा अस्ति। संस्कृतस्य ग्रन्थरत्नाः अस्माकं सर्वाधिक-प्राचीनवैभवं दर्शयन्ते। संस्कृतशिक्षा विकासार्थं विभिन्नसर्वकारी-गैरसर्वकारीसंस्थानां माध्यमेन प्राच्यसंस्कृतविद्यायाः संरक्षणं संवर्धनं सम्प्रसारणञ्चेति भवन्ति। तेषां विवेचनमावश्यकमेवञ्च भूमिका निम्नवत् अस्ति-

(क) सर्वकारस्य भूमिका - भारतसर्वकारः संस्कृतशिक्षायाः सम्यगभ्युदयाय 1956तमे ख्रीष्टाब्दे संस्कृतायोगाः संगठितः। भारतमानव-संसाधनविभागस्य प्रयासेन डॉ. सुनीतिकुमारचटर्जीमहोदयस्य अध्यक्षतायाम् एकादश (11) सदस्यीया संस्कृतायोगस्य संस्तुतिप्रभावेण भारतसर्वकारेण 1970 तमे ख्रीष्टाब्दे अक्टूबरमासस्य पञ्चदश(15)तारिकायां राष्ट्रिय-संस्कृतसंस्थानं संस्थापितम्। एवं संस्कृतायोगस्य संस्तुतिप्रभावेण सम्पूर्णदेशे यथाशक्तिः यथावसरं संस्कृतप्रचारे प्रसारे स्वीययोगदानं प्रयच्छत्येव। तेषां प्रयासैः संस्कृतशिक्षायाः सर्वाङ्गीणविकासाय देशस्य विभिन्नभागस्य संस्कृतविश्वविद्यालयाः, विद्यापीठानि, संस्थानमित्यादीनां संस्थानां संस्थापितम्।

(1) राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् - राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानं मानित-विश्वविद्यालयः नवदेहली। स्थापना 1970, ध्येयवाक्यम् - 'योऽनूचानः स नो महान्'।

अस्य संस्थानस्याधीने दशपरिसराः सन्ति, ते च–

1. श्रीसदाशिवपरिसरः, पुरी, ओडिसा
2. राजीवगाँधीपरिसरः, शृङ्गेरी, कर्णाटकम्
3. जयपुरपरिसरः, जयपुरम्, राजस्थानम्
4. गुरुवायूरुपरिसरः, गुरुवायूरु, केरलम्
5. रणबीरपरिसरः, जम्मू
6. भोपालपरिसरः, भोपालः, मध्यप्रदेशः
7. लखनऊपरिसरः, लखनऊ, उत्तरप्रदेशः
8. के. जे. सोमय्यापरिसरः, मुम्बई, महाराष्ट्रम्
9. गर्लीपरिसरः, गर्ली, हिमाचलप्रदेशः
10. गङ्गानाथझापरिसरः, इलाहाबादः, उत्तरप्रदेशः

(2) राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः। ध्येयवाक्यम् – 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'।

(3) श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली। ध्येयवाक्यम् – 'विद्यया विन्दतेऽमृतम्'।

(4) सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी। ध्येयवाक्यम् – 'श्रुतं मे गोपाय'।

(5) जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयः, जयपुरम्। ध्येयवाक्यम् – 'ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च'।

(6) कामेश्वरसिंहदरभंगासंस्कृतविश्वविद्यालयः, दरभंगा, बिहारः। ध्येयवाक्यम् – 'स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणम्, बृहस्पते सवितर्बोधयैनम्'।

(7) श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, पुरी, उड़ीसा।

(8) कविकुलगुरुकालिदाससंस्कृतविश्वविद्यालयः, रामटेक, महाराष्ट्रम्।

(9) जगद्गुरुआदिशङ्कराचार्यसंस्कृतविश्वविद्यालयः, कालडी, केरलम्।

(10) श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, गुजरात।

(11) उत्तराञ्चलसंस्कृतविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्।

(12) केन्द्रीयविद्यालयसंगठनम्।

(13) केन्द्रीयमाध्यमिकशिक्षाबोर्ड।

एतेषु सर्वकारीयसंस्थानेषु संस्कृतशिक्षायाः कृते योगदानम्

1. प्रथमातः आचार्यपर्यन्तं विद्यावारिधेः शिक्षाशास्त्रस्य च पाठ्यक्रमानाधृत्य प्राचीनपद्धत्या संस्कृतशिक्षणं परीक्षासञ्चालनं तदुपाधिवितरणञ्च।

2. देशस्य विभिन्नेषु राज्येषु संस्थानस्याङ्गीभूतानां विभिन्नाः केन्द्रीय-संस्कृतविद्यापीठानामेवञ्च-विंशत्यधिकानामादर्शसंस्कृतमहाविद्यालयानां सञ्चालनं प्रचलति।

3. अङ्गीभूतैः विद्यापीठैः दुर्लभपाण्डुलिपीनां मौलिकनामनूदितानाञ्च ग्रन्थानां प्रकाशनं, तत्प्रकाशनायानुदानं प्रकाशितग्रन्थानां क्रयणं देशस्य लब्धप्रतिष्ठपुस्तकालयेषु तेषां निःशुल्कवितरणञ्च।

4. पत्राचारमाध्यमेन देशे विदेशेषु च हिन्दीमाध्यमेन अंग्रेजीमाध्यमेन च संस्कृतभाषाशिक्षणाय द्विवर्षीयस्य पाठ्यक्रमस्य सञ्चालनम्।

5. संस्कृते स्वकीयस्य विभिन्नपाठ्यक्रमस्य सञ्चालनाय अन्यसंस्कृत-संस्थाभ्यः सम्बद्धताप्रदानम्।

6. स्वकीयविद्यापीठेषु देशस्य अन्यासु संस्थासु च सुयोग्येभ्यः संस्कृतच्छात्रेभ्यः छात्रवृत्तिप्रदानम्।

7. विभिन्नानां शास्त्राणां संरक्षणाय सेवानिवृत्तिनां प्रौढसंस्कृतविदुषां देशस्य विविधासु संस्कृतसंस्थासु वर्षद्वयाय शास्त्रचूडामणियोजनायां नियोजनम्।

8. संस्कृतपुनश्चर्यापाठ्यक्रमादिप्रवर्तनार्थं संस्कृतपत्र-पत्रिका-प्रकाशनार्थञ्च आर्थिकानुदानम्।

9. विश्वसंस्कृतसम्मेलनसदृशानां बृहत्संस्कृतसमारोहानामायोजनम्।

शैक्षणिकक्रियाकलापाः योगदानम्

विभिन्नेषु शिक्षणसंस्थासु नियतकार्यजातातिरिक्ता आसन् काश्चन शैक्षणिककार्ययोजनाः पाठ्यसहगामिक्रियाश्च, यथा-

विशिष्टव्याख्यानयोजनाः, साप्ताहिकसंगोष्ठीयोजना, शास्त्रचूडामणि-योजना इत्यादयः तेषामायोजने संस्कृतस्य विकासस्य कृते नवीनादृष्टिः प्राप्यते।

सांस्कृतिककार्यक्रमयोजना, वादविवादः, सद्यः भाषणप्रतियोगिता इत्यादयः न केवल बालकानां कृते आवश्यकमस्ति अपितु तेषामायोजने परस्परसम्बन्धाः भवन्ति तथा संस्कृतविकासे सहायकं भवति।

अन्त्याक्षरी, भाषात्मकक्रीडा, निबन्धलेखनं, विचारगोष्ठी अनेन प्रयोगेन बालकस्य भावात्मक-क्रियात्मक-संज्ञानात्मकञ्च विकासं तु भवति सहैव अनेन संस्कृतोन्नयने अपि सहायकं भवति।

कथालेखनम्, समस्यापूर्तिः, गानम्, प्रदर्शनी विद्यालयपत्रिका, प्रहेलिकाः इत्यादयः अपि महत्त्वपूर्णाः भवन्ति।

संस्कृत-अकादमी, लेखनं यन्त्रिकोपकरणञ्च भूमिका

संस्कृत-अकादमी संस्कृतभाषाविकासार्थं कार्यं करोति। यस्यान्तर्गते पुस्तकप्रकाशनं, पाण्डुलिपिसङ्कलनमित्यादयः माध्यमेन संस्कृतस्योन्नयनं भवति। अद्य यन्त्राणि मानवजीवनस्य सर्वान् पक्षान् प्रभावयन्ति, शिक्षाजगति शिक्षकोऽपि स्वशिक्षणस्य प्रभावीकरणाय यान्त्रिकदृश्यसाधनानां प्रयोगं करोति। यथा - आकाशवाणी, भाषाप्रयोगशाला, दूरदर्शनम्, सङ्गणकम्, इन्टरनेटसेवा, वर्डवाइडवेव इत्यादयः।

निष्कर्ष:

वर्तमानयुग वैज्ञानिकीयुगो वर्तते। समाजे विभिन्ना: नवाचारा: प्रतिदिनं भवन्ति एतस्मात् कारणात् अस्माकं कृते आवश्यकं वर्तते यत् वयं स्वकीयभाषाया: कृते उन्नयनस्य नवीनविचारा: प्रयोगा: एवञ्च पद्धतीनां प्रयोगं कुर्म:। यत्र संस्कृतविकासे अस्माकं संस्कृतसंस्थानां महती भूमिका वर्तते तत्र अस्मभ्यं नवीनतां प्रति अग्रसरा: भवेयु:। अद्य अस्माकं संस्थासु विभिन्नकार्यक्रमा: प्रचलन्ति संस्कृतभाषाया उन्नयनाय। वयमपि अद्य समाजेन सह चलायमाना: सन्ति। वर्तमानकाले न केवलं दुर्लभग्रन्थानामन्वेषणं प्रचलति अपितु इदानीं संस्कृतस्य भूमिका वैज्ञानिकभाषारूपे अस्ति। अस्मिन् ये वैज्ञानिकतत्त्वा: सन्ति तेषामुपरि कार्या: दिनं प्रतिदिनं प्रचलन्ति। अद्य वेदानामुपनिषदानां साहित्यानामित्यादय: महती भूमिका वर्तते यतोहि वयं तान् न केवलं ऐतिहासिकरूपेण पश्याम: अपितु वैज्ञानिकरूपेण अपि तेषामाधुनिककरणं प्रचलति। वर्तमानकाले बहव: कार्या: संस्कृतस्य उन्नयनाय सन्ति परन्तु अधिकाधिकपरिवर्तनस्य एवञ्च विकासस्य आवश्यकता भवत्येव।

संस्कृतशिक्षणे प्राथमिक-माध्यमिक-उच्चस्तरीयपाठ्यक्रमाणामभिकल्पनम्

विजयिता
शिक्षाचार्याछात्रा
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
नवदेहली-1100116

पुरा संस्कृतभाषा व्यवहारिकभाषा साहित्यिकभाषा चासीत्। सर्वासां भारतीयभाषाणां कृते संस्कृतभाषा जननीति, भारतीयभाषासु संस्कृतस्य प्रभावोऽस्ति। त्रिवेणीसङ्गमे सरस्वतीनदी अन्तर्लीना यथास्ति तथैव संस्कृतभाषा सर्वासु भारतीयभाषासु अन्तर्लीना इति सर्वे स्वीकुर्वन्ति। विश्वस्य समस्तभाषाणामुद्‌गमः संस्कृतः, ग्रीकतः, लैटिनतः मन्यते। संस्कृतमनेकभाषाणां जन्मदात्री वर्तते। भाषाविकासक्रमे संस्कृत प्राचीना आर्यभाषा अस्ति। इयमेव संस्कृतभाषा आधुनिक-आर्यभाषारूपेण विकसितमभवत्।

संस्कृतं भारतीयसंस्कृतेः आत्मा। संस्कृतभाषामाध्यमेन भारतीयसंस्कृति सुप्रतिष्ठिता अस्ति, बालकस्य जननादारभ्य क्रियमाणाः जातकर्म-नामकरण-अन्नप्राशनादिषोडशसंस्काराः अनया एव भाषाया विधीयते पूजापाठः, यज्ञयागादिक्रियाश्च अस्या भाषायामेव प्रचलति। संस्करणं परिष्करणं च एतत् आत्मनो संस्कृतिः इत्यभिधीयते। अस्माकं देशस्य विशिष्टपुरुषाणां विचाराः, वेशभूषाः, कार्याणि, आचाराः यथा तिलकधारणम्, शिखासंस्थापनम् अस्माकं संस्कृतौ अन्तर्भवति।

अद्यतनेषु दिनेषु संस्कृतभाषायाः व्यवहारे विना समाजे कार्यं सिद्ध्यति। संस्कृताऽऽयोगस्य प्रतिवेदनेऽपि उल्लिखितं वर्तते यत् भारतीयसभ्यता वैदिककालादारभ्य चतुस्सहस्रवर्षाणि यावत् संस्कृतभाषयैव

स्वाभिव्यक्ति प्रदर्शितवती। भारते भाषाणां सर्वे भाषाः संस्कृतरूपीवृक्षस्य लताः सन्तीति कथने नास्ति लेशोऽपि सन्देहः।

संस्कृतभाषाविषये संस्कृतायोगेन याः संस्तुतयः कृताः ताः महत्त्वपूर्णाः। सम्प्रति सम्पूर्णदेशे प्राच्य-प्राथमिक-माध्यमिकोच्चस्तरेषु संस्कृतमहाविद्यालयेषु विश्वविद्यालयेषु संस्कृतसंस्थानादिषु च अनिवार्यतया प्रधानभाषारूपेण संस्कृतशास्त्रशिक्षणं भवति।

'वाण्येकासमलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते'

इत्याविवचोभिर्ज्ञायते यत् शिक्षायाः महत्त्वमद्वितीयमिति। वर्तमानशिक्षाप्रणाल्या संस्कृतशिक्षणे प्राथमिक-माध्यमिकोच्चस्तरेषु पाठ्यक्रमस्य अभिकल्पनः कीदृशमिति विषयं विचारणीयः।

पाठ्यक्रमस्यार्थः

पाठ्यक्रमः एकः मार्गः यो छात्रेषु स्वोद्देश्यानां प्राप्त्यर्थमावश्यकमस्ति। पाठ्यक्रमस्य अर्थः - लेटिनभाषायाः 'कुरेरो' (Currere) शब्दात् अभवत्। यस्यार्थः अस्ति 'लक्ष्य' प्रति गमनस्य धावनमार्गम् Race Course इति। विद्यालय नियन्त्रणे स्थितस्य शिक्षार्थिः समस्तानुभवाः पाठ्यक्रमान्तर्गताः भवन्ति। विभिन्नाध्ययन-सङ्घटित-क्रिया-पाठ्यक्रम-पाठ्यक्रमेतरक्रिया- विद्यालयीय-सामाजिकजीवन-विद्यालयीयवातावरणादीनि सर्वाणि पाठ्यक्रमे स्व-स्वस्थानं लभन्ते। छात्राणां सर्वाङ्गीणविकासाय सम्पूर्णजीवनमेव पाठ्यक्रमो भवति। पाठ्यक्रमो संस्कृतभाषायाः स्थानं कीदृश भवेत्? इदं चित्रणमावश्यकमस्ति यत् संस्कृतं न केवलमेका भाषा एव वर्तते अपितु संस्कृतं तु भारतीयपरम्परा-सभ्यतयोश्च प्रतीकमस्ति। अतः देशस्य सर्वेषु विद्यालयेषु महाविद्यालयेषु च संस्कृतशिक्षायाः समुचिता व्यवस्था स्यात्।

पाठ्यक्रमस्य प्रकाराः

संस्कृतशिक्षणस्य दृष्ट्या भारतवर्षे प्रायशः द्वयो पाठ्यक्रमयो व्यवस्था अस्ति।

1. शास्त्रीयविद्यालय-महाविद्यालयेषु च प्रथमा (प्रवेशिका) मध्यमा (उपाध्याय:) शास्त्री (स्नातक:) प्रविधि: पाठ्यक्रम: य: साहित्ये व्याकरणे दर्शने आयुर्वेदे ज्योतिषे धर्मशास्त्रे आचार्य इति उपाधिं प्रददाति तान् पाठ्यक्रमे अवश्य: सम्मिलित: भवेत्। विशिष्टदक्षता प्राप्त्यर्थं प्रवीणता प्राप्त्यर्थञ्च अनुसन्धानकार्येषु विशेषावधानस्य आवश्यकता अस्ति।

2. आधुनिकविद्यालयमहाविद्यालयेषु च षष्ठकक्षात: संस्कृतस्याध्ययनं मातृभाषायां क्षेत्रीयभाषायाञ्च भवति।

पाठ्यक्रमनिर्माणस्य प्रमुखसिद्धान्ता:

1. बालकेन्द्रितसिद्धान्त:
2. रचनात्मकशक्ते: सिद्धान्त:
3. उपयोगिताया: सिद्धान्त:
4. परिवर्तशीलताया: सिद्धान्त:
5. विविधताया: सिद्धान्त:
6. सहसम्बन्धस्य सिद्धान्त:
7. क्रीडाविधे: सिद्धान्त:
8. वैयक्तिकानुरूपताया: सिद्धान्त:
9. सामाजिकानुरूपताया: सिद्धान्त:
10. अनुभवानां पूर्णताया: सिद्धान्त:

पाठ्यक्रमस्याभिकल्पने ध्यातव्यबिन्दव:

1. पाठ्यक्रम: पूर्वकक्षास्तरत: आगामिस्तरस्य भवेत्।
2. छात्राणां स्तरस्य रुचेर्वा पूर्वरूपेण स्थानं स्यात्।

3. पाठ्यक्रमः स्वतः पूर्णः भवेत् यथा उच्चारणं, वाचनं, शब्दावली, रचनाकार्यम्, अनुवादः, भाषात्वं शब्दरूपं धातुरूपमित्यादीनां स्पष्टोल्लेखः भवेत्।

4. पाठ्यक्रमे कथा, कविता, संवाद, गद्य, रचना, एकाङ्की भवेयुः।

5. पाठ्यक्रमे सामाजिक-नैतिक-सांस्कृतिक-आध्यात्मिकवातावरणेन सह सम्बन्धः यथार्थवादे च आधारित भवेत्।

6. माध्यमिकोच्चमाध्यमिकस्तरयोः मातृभाषायाः संस्कृतस्य च समन्वितः पाठ्यक्रमेऽपि निर्धारयितुं शक्यते।

7. राष्ट्रियशिक्षानीतीनां निर्धारणसमये संस्कृतं प्रति विशिष्टरूपेण ध्यानं देयम्।

विभिन्नस्तरेषु पाठ्यक्रमस्याभिकल्पनम्

प्राथमिकस्तरेषु पाठ्यक्रमस्याभिकल्पनम्

आधुनिकप्राथमिकस्तरेषु संस्कृतस्य शिक्षणं मातृभाषायां क्षेत्रीयभाषायाञ्च भवति। अस्मिन् स्तरे संस्कृतमवश्यमेव पाठयितव्यमिति संस्कृतज्ञाः स्वीकुर्वन्ति। संस्कृताऽऽयोगः (1956-57) एतदुपरि बलं प्रदत्तं यत् प्राथमिकविद्यालयस्य पाठ्यक्रमेषु संस्कृतशिक्षणमनिवार्यरूपेण कर्तव्यम्। पाठ्यसहगामिक्रियासु संस्कृतशिक्षायाः प्रभावः अवश्यमेव स्थापनीयः येन छात्राणां नैतिकमूल्यानां विकासः स्यात्। यथा-

1. प्रातःकालीनप्रार्थनायां संस्कृतश्लोकानां मन्त्राणाञ्च उच्चारणं कर्तव्यम्।

2. संस्कृतभाषायां लघुकथाः श्रवणीया।

3. शुद्धोच्चारणस्य हेतोः लयसहितश्लोकानां गानं व्यक्तिगतं सामूहिकञ्च कारयितव्यम्।

4. शब्दभण्डारवृद्धिकरणम्।

5. मातृभाषायां पुस्कस्थतत्त्वानि उपदेष्टव्यानि।

6. सरलसुबोधश्लोकानां कण्ठस्थीकर्तव्य:।
7. पाठस्था: कतिपयशब्दरूपाणि च स्मारयितव्यानि।
8. अभ्यासमाध्यमेन व्याकरणनियमान् पाठयितव्य:।

माध्यमिकस्तरेषु पाठ्यक्रमस्याभिकल्पनम्

अधुना प्राय: दशमकक्षापर्यन्तमेव संस्कृतं सर्वेषु विद्यालयेषु अनिवार्य: वर्तते। माध्यमिकशिक्षाया: स्तरस्योन्नयनाय निर्मितेन आयोगेन द्विभाषासूत्रं प्रस्तुतम्। अस्य सूत्रस्य द्वयो: आयोगेन द्विभाषासूत्रं प्रस्तुतम्। अस्य सूत्रस्य द्वयो: विकल्पयो: शास्त्रीयभाषा: अपि स्थानमासीत्। वैकल्पिकरूपेण क्षेत्रीयभाषाया स्थाने संस्कृतस्य स्थानं राज्यसर्वकारणामनुशंसात: पाठ्यते। केन्द्रीयमाध्यमिकशिक्षापरिषद् एवं परामर्शदातृ समत्य (1988) सम्बद्धेषु विद्यालयेषु संस्कृतभाषा षष्ठकक्ष्यात: अष्टमकक्ष्यापर्यन्तं तृतीयभाषात्वेन नवमदशमकक्ष्ययोश्च सा द्वितीयभाषात्वेन पाठ्यते स्म। तृतीयभाषात्वेन का: भाषा: पाठनीया इति विचारप्रसङ्गे संविधानस्य अष्टमानुसूची आश्रिता। संविधानस्य अष्टमानुसूच्यां स्वीकृतासु भाषासु केवलं संस्कृतं त्रिभाषासूत्रसूचीत:, तेन कारणेन संस्कृतं वैकल्पिकविषयत्वेन पाठ्यते। राममूर्ति आयोगेनापि (1990) शास्त्रीयभाषाया: अध्ययनाध्ययनोपरि महत्त्वं प्रदत्तम्। संस्कृतस्य विधिवत् शिक्षणस्य संरक्षणस्य संवर्धनस्य च विकासाय प्रयासानामावश्यकता अस्ति।

उच्चमाध्यमिकस्तरेषु पाठ्यक्रमस्याभिकल्पनम्

अस्य स्तरस्य पाठ्यक्रमे संस्कृतभाषाया: वैकल्पिकरूपेण स्थानं वर्तते। उच्चमाध्यमिकस्तरे 'वैकल्पिकविषयचयनप्रक्रिया' कारणात् संस्कृतमिदं वैकल्पिकविषयरूपेण पाठ्यते। राममूर्ति आयोगेन (1990) तमे वर्षे शास्त्रीयभाषाया अध्ययनाध्यापनोपरि महत्त्वं प्रदत्तम्। तेऽपि स्वीकुर्वन्ति यत् भारतीयसंस्कृते: संरक्षणाय संवर्धनाय च पाठ्यक्रमेषु संस्कृतस्य स्थानमवश्यमेव प्रदातव्यम्। विश्वविद्यालयाऽऽयोग: (राधाकृष्णनायोग: 1948-1949) अन्तरस्नातकपाठ्यक्रमे संस्कृतस्य स्थानमवश्यमेव भविष्यति यतोहि संस्कृतभाषा साहित्यञ्च अस्माकं सांस्कृतिकोत्तराधिकरोऽस्ति यस्मिन् साहित्ये अनुसन्धानस्य विस्तृतं क्षेत्रमस्ति। यथा-

1. उच्चमाध्यमिकस्तरे संस्कृतमनिवार्यरूपेण वैकल्पिकरूपेण च निर्धारयितुं शक्यते।
2. साहित्यं प्रति संवेदनशीला अभिरुचिकरणम्।
3. छात्राणां मनसि संस्कृतं प्रति भावाभिव्यक्तिः भवितुं शक्यते।
4. अन्वेषणकार्येषु दक्षतोत्पादनम्।
5. चतुर्विधकौशलेषु दक्षतोत्पादनम्।

निष्कर्षः

निष्कर्षरूपेण वयं विचारयामः यत् वर्तमानशिक्षाप्रणाल्यां पाठ्यक्रमे कीदृशमिति विषयं विचारणीयः इति प्राथमिकस्तरेषु संस्कृतस्य शिक्षणं मातृभाषायां क्षेत्रीयभाषायाञ्च भवनीयम्।

संस्कृताऽऽयोगः (1956-57) एतदुपरि बलं प्रदत्तं यत् विद्यालयेषु संस्कृतशिक्षणमनिवार्यरूपेण कर्तव्यम्। माध्यमिकस्तरेषु अपि संस्कृतशिक्षणे संस्कृतं सर्वेषु विद्यालयेषु अनिवार्यः वर्तते। तथा केन्द्रीयमाध्यमिकशिक्षापरिषदाः एवं परामर्शदातृसमित्या (1988) सम्बद्धेषु विद्यालयेषु संस्कृतभाषा षष्ठकक्ष्यातः अष्टमकक्ष्यापर्यन्तं तृतीयभाषात्वेन नवमदशमकक्ष्ययोश्च सा द्वितीयभाषात्वेन पाठ्यते स्म उच्चमाध्यमिकस्तरेऽपि वैकल्पिक-विषयचयनप्रक्रिया कारणात् संस्कृतमिदं वैकल्पिकविषयरूपेण पाठ्यते। राममूर्ति आयोगेन (1990) तमे वर्षे शास्त्रीयभाषायाः अध्ययनाध्ययनोपरि महत्त्वं प्रदत्तम्। तेऽपि स्वीकुर्वन्ति यत् भारतीयसंस्कृतेः संरक्षणाय संवर्धनाय च पाठ्यक्रमेषु संस्कृतस्य स्थानमवश्यमेव प्रदातव्यम्।

संस्कृतशिक्षायाः सन्दर्भे प्राथमिक-माध्यमिकोच्चतरपाठ्यक्रमाणामभिकल्पनम्

आशीषनारायणभट्टः, टेकचन्दभारद्वाजः

शिक्षाचार्यः छात्र

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली

राष्ट्रनिर्माणाय छात्राणां भूमिका महत्त्वपूर्णा विद्यते येषां विकासाय देशस्य शिक्षाव्यवस्था सर्वोत्तमा भवितव्या। देशोऽस्माकं छात्राणामुत्तमाध्ययनाय सर्वदैव प्रयत्नशीलो वर्तते। सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिकादिभेदं परित्यज्य समेषां छात्राणां कृते शिक्षाक्षेत्र सफलताप्राप्त्यै प्रयासः विधीयते।

प्रथमतया श्रीअरविन्दमहोदयैः 1910 तमे वर्षे राष्ट्रिय-शिक्षा-व्यवस्थायास्स्वप्नः दृष्टः। मानवमस्तिष्कस्य प्रवृत्तिः शक्तिश्च, मानसिक-तार्किकप्रवृत्त्योः विकासः प्रचल्यमानप्रशिक्षणस्य प्राकृतिरित्येषु विषयेषु तेषां प्राथमिकताऽसीत्। महात्मागान्धी Basic Education कृते प्रयत्नशीलोऽवर्तत। वर्धायोजनान्तर्गते विकसितायां पाठ्यचर्यायां सम्पूर्णविकासस्य लक्ष्यं निहितमासीत् यत्र शरीर-मन-आत्मनां पूर्णविकासो भवितुं शक्नोति स्म। परं देशे इयं पाठ्यचर्या राष्ट्रियपाठ्यक्रमरूपेण न स्वीकृता। अस्मात् विज्ञायते यत् तदानीं पाठ्यचर्यापरिवर्तनं कष्टसाध्यमासीत्।

स्वातन्त्र्योत्तरभारते विद्यालयीशिक्षा विभिन्नचरणेषु परिवर्तिता। स्वतन्त्रतानन्तरं सहसैव भारतसर्वकारेण माध्यमिक-शिक्षा-आयोगस्य (1951-53) रचना कृता। आयोगेनानेन विद्यालयीशिक्षायाः गुणवर्धनाय संस्तुतयः प्रदत्ताः। 1964-1966 तमे वर्षे सर्वकारेण शिक्षा-आयोगस्य संरचना कृता। आयोगोऽयं विद्यालयीयशिक्षायाः विभिन्नान् स्तरानाधृत्य संस्तुतीरददात्। शिक्षा-आयोगोऽयमाधुनिकशिक्षाप्रणाल्याः आधारभूतो वर्तते। आयोगस्य काश्चन संस्तुतयः राष्ट्रिय-शिक्षा-नीतेः (11986) आधाराः वर्तन्ते। अस्यां शिक्षानीतौ 10+2 विद्यालयीयशिक्षायां स्वीकृतम्। अत्रापि

निहितमासीद्यत् सर्वेषु स्तरेषु विद्यालयीयशिक्षायां गुणात्मकं परिवर्तनं भवेदिति। एतदनन्तरं राष्ट्रिया शिक्षानीतिः 1986, कार्ययोजना 1992 मध्ये 10+2+3 शिक्षायाः संरचना जाता। अत्र स्वीकृतं यत् राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः निर्माणमपि भवेत्।

पाठ्यचर्या-रूपरेखा:

भारतसर्वकारस्य शिक्षामन्त्रालयेन 1973 तमे वर्षे 10+2 कृते पाठ्यचर्यानिर्माणाय एका समिति रचिता। राज्यसर्वकार-शिक्षक-शिक्षकप्रशिक्षक-प्रशासकादीनां पार्श्वे समितेः संस्तुतयः प्रेषिताः। तदनु राष्ट्रीय-शैक्षिक-अनुसन्धान-प्रशिक्षणपरिषदा 1975 तमे वर्षे The Curriculum For The Ten Years School – A Frame Work प्रकाशिता। पाठ्यचर्याया अनुशंसानुसारं परिषंद्पक्षतः पाठ्यक्रम-पाठ्यपुस्तकादीनाञ्च निर्माणं जातम्। 1975-76 शैक्षिकसत्रे नवमदशमकक्षयोः 1976-77 शैक्षिकसत्रे प्रथम-तृतीय-पञ्चमकक्षाणाञ्च कृते पाठ्यपुस्तकानि निर्मितानि। 1977 तमे वर्षे केन्द्रीय-माध्यमिक-शिक्षा-परिषदा (CBSE) पुस्तकानि स्वीकृतानि।

अनन्तरमस्याः पाठ्यचर्यायाः पुनर्मूल्याङ्कनं जातम्। 1983 तमे वर्षे राष्ट्रीय-शैक्षिक-अनुसन्धान-प्रशिक्षपरिषदा पाठ्यचर्यामाधारिकृत्य शोध कार्यं कृतम्। प्राथमिक-माध्यमिकस्तरयोः कृते राष्ट्रियपाठ्यचर्यानिर्माणाय योजना स्वीकृता। 1984 तमे वर्षे एतदर्थं समितिरेका विरचिता। 1985 तमे वर्षे राष्ट्रिसंगोष्ठ्यः कार्यशालाश्चायोजिताः यत्र विभिन्नेभ्यः राज्येभ्यः शिक्षकाः विद्वांसः विषयविशेषज्ञाः प्रशासकाश्च भागं गृहीतवन्तः। सर्वेषां संस्तुतीः संकलय राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः प्रारूपं निर्मितम्। राष्ट्रीयशिक्षानीतेः (1986) संस्तुतयश्चापि योजिताः। तदनन्तरं एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा 1988 तमे वर्षे प्रारम्भिक-माध्यमिकशिक्षायाः पाठ्यचर्यायाः रूपरेखा प्रकाशिता।

अस्माकं बालकाः किं पाठनीयाः कथञ्च पाठनीयां इति विषये जनताया अवधानस्यावाप्तये राष्ट्रीय-शैक्षिक-अनुसन्धान-प्रशिक्षणपरिषदा सामाजिकविमर्शस्य विलक्षणा कापि प्रक्रिया समारब्धा। क्रमेऽस्मिन् बहुभिः विचारवद्भिः सह सुचिरं विचार्य अपेक्षाणां कल्पनानां च मेलनं विधाय 2005 तमे वर्षे परिषदा राष्ट्रिय-पाठ्यचर्यायाः रूपरेखा प्रस्तुता।

राष्ट्रियपाठ्यचर्या-रूपरेखायाः (2005) मार्गदर्शकतत्त्वानि

* ज्ञानस्य विद्यालयाद् बहिर्जीवनेन संयोजनम्।
* ज्ञानस्य कण्ठस्थीकरणप्रणाल्याः दूरीकरणम्।
* पाठ्यचर्या शिशवे सर्वाङ्गीणविकासं वितरेत्। शिशुः केवलं पाठ्यपुस्तककेन्द्रितः न भवेत्।
* परीक्षाः अधिकं परिवर्तनशीलाः कक्षाजीवनेन सम्बद्धाश्च भवेयुः।
* भारतस्य प्रजातन्त्रे ध्यानशीलविचारैः सूचितामेकरूपतां पालयितुं यत्नः करणीयः।

संस्कृतपाठ्यक्रमः

राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखायाः (2005) अनुशंसानुसारं विभिन्नेषु विषयेषु पाठ्यक्रमाणां निर्माणं जातम्। संस्कृते षष्ठकक्षातः द्वादशकक्षापर्यन्तं पाठ्यक्रमः निर्मितः। उच्चप्राथमिक-माध्यमिक-उच्चतरमाध्यमिकरूपेण त्रिषु स्तरेषु संस्कृतपाठ्यक्रमः विभक्तः।

उच्चप्राथमिकस्तरः (कक्षा 6-8)

माध्यमिकस्तरः (कक्षा 9-10)

उच्चतरमाध्यमिकस्तरः (कक्षा 11-12)

उच्चप्राथमिकस्तरे उद्देश्यानि

* संस्कृतभाषायाः प्राथमिकज्ञानम्
* चतुर्णां भाषाकौशलानां विकासः
* ध्वनीनां शुद्धोच्चारणम्
* सरलवाक्यानामवबोधनम्
* सरलवाक्यानां लेखनम्
* संस्कृतसाहित्यं प्रति रुचेरभिवर्धनम्
* आधुनिकसंस्कृतसाहित्यपरिचयः

माध्यमिकस्तरे उद्देश्यानि

* संस्कृतभाषायाः ज्ञानम्
* संस्कृतवाक्यानि श्रुत्वा मौखिकरूपेणाभिव्यक्तेः सामर्थ्यविकासः
* संस्कृतसाहित्यं प्रति रुच्युत्पादनम्
* प्राचीन-नूतनसंस्कृतसाहित्ययोः परिचयः
* भाषाकौशलानां विकासः
* सरलवाक्यानां लेखनम्
* संस्कृतेन उत्तरलेखनम्
* लयानुसारं पद्यानां वाचनम्
* कथासारांशं पञ्चभिः वाक्यैः लेखनसमर्थः

उच्चतरमाध्यमिकस्तरे उद्देश्यानि (ऐच्छिकम्)

* संस्कृतस्य विविधविधानां परिचयः
* सामान्यज्ञानस्य समृद्धिकरणम्
* स्वविचारान् संस्कृतेन लेखनसमर्थः
* नैतिकमूल्यानां विकासः
* भाषाकौशलानां विकासः
* आधुनिकसंस्कृतसाहित्यपरिचयः
* पत्रलेखनाभ्यासः

उच्चतरमाध्यमिकस्तरः उद्देश्यानि (केन्द्रिकम्)

* संस्कृतभाषायाः व्यावहारिकज्ञानम्
* संस्कृतसाहित्यं प्रति रुच्युत्पादनम्
* संस्कृतेन वार्तालापसमर्थः
* भाषाकौशलानां विकासः

* संस्कृतसाहित्यस्य परिचयः
* संस्कृतेन वाक्यानां लेखनसमर्थः

त्रिभाषासूत्रं संस्कृतञ्च

भाषा राष्ट्रस्य विकासाय अस्तित्वरक्षणाय च आवश्यकता संस्कृतिपोषिका च भवति। अतः राष्ट्रिय-शिक्षानीतौ भाषायाः स्थानं महत्त्वपूर्णमिति। स्वतन्त्रभारतेऽपि भाषाविषये महान् विचारः कृतः। तदर्थं भाषासमस्यायाः समाधानाय समितयः आयोगाश्च संघटिताः। विभिन्नाभिः समितिभिः विभिन्नैः आयोगैश्च भाषामाधृत्यानेकभाषासूत्राणि संस्तुतानि। 1956-57 तमे वर्षे भारतसर्वकारेण संस्कृत-आयोगः नियुक्तः। आयोगस्यास्याध्यक्षः श्रीसुनीतिकुमारचट्टोपाध्यायमहोदयः एवञ्चान्ये सदस्याः श्रीकुमारः रे, श्रीहरिकृष्णदुबे, डॉ. राघवन्, डॉ. आयङ्गरप्रभृतयः विद्वांसः पाठ्यक्रमे संस्कृतपाठनमनिवार्यरूपेण भवितव्यमिति संस्तुतवन्तः। परन्तु संस्तुतिरीयं पूर्णतया सफलीभूता न जाता। 1961 तमे वर्षे विभिन्नराज्यानां मुख्यमन्त्री-सम्मेलने सर्वसम्मतिरूपेण त्रिभाषासूत्रं स्वीकृतम्। राष्ट्रीय-सामाजिक-सांस्कृतिक-अनिवार्यताः परिपूरयितुं संस्कृतविकासार्थं 1968 वर्षीयशिक्षानीतौ कापि विशिष्टयोजना स्यादिति परिकल्पिता। अत्र संस्कृतस्य महिमवर्णनं जातं किन्तु संस्कृतस्य स्थानमेव न कल्पितम्। 1968 शिक्षानीत्यनुसारं त्रिभाषासूत्रमित्थं वर्तते-

प्रथमभाषा - मातृभाषा/क्षेत्रियभाषा

द्वितीयभाषा - हिन्दीभाषिराज्येषु - अंग्रेजी/अन्यभारतीयभाषा

- हिन्दीतरभाषिराज्येषु - हिन्दी/अंग्रेजी

तृतीयभाषा - हिन्दीभाषिराज्येषु - अंग्रेजी/अन्यभारतीयभाषा या द्वितीय भाषारूपेण न पठ्यते।

- हिन्दीतरभाषिराज्येषु - अंग्रेजी/अन्यभारतीयभाषा या द्वितीय भाषारूपेण न पठ्यते।

अत्रैव निर्दिष्टमासीद्यत् प्राथमिकस्तरे अनुदेशनस्य माध्यमं मातृभाषा भवितव्या। अस्यापि पालनं राज्यैः करणीयं यत् हिन्दीभाषिराज्येषु हिन्दी-अंग्रेजीभाषाद्वयं विहाय आधुनिक-भारतीयभाषासु मुख्यतया

दक्षिणभारतीयभाषा भवितव्या। एवञ्च हिन्दीतरभाषिराज्येषु हिन्दी भवेत्।

अतोऽस्मात् ज्ञायते यत् हिन्दीभाषिराज्येषु हिन्दी-अंग्रेजी-भारतीयभाषाणां तथा हिन्दीतरभाषिराज्येषु क्षेत्रियभाषा-हिन्दी-अंग्रेजीभाषाणाञ्च प्रावधानं विद्यते। परमस्य नियमस्यातिक्रमणं जातम्। हिन्दीभाषिराज्येषु हिन्दी-अंग्रेजी/संस्कृतभाषाया: तथा हिन्दीतरभाषि-तमिलनाडुराज्ये द्विभाषीसूत्रप्रयोगत्वात् तमिल-अंग्रेजी भाषाद्वयं पाठ्यते। कतिपयराज्येषु त्रिभाषासूत्रस्य प्रयोग: क्रियते यथा ओडिशा-पश्चिमबंगाल: महाराष्ट्रादीनि।

शास्त्रीयभाषा:

सामाजिक-सांस्कृतिकसंस्था: शास्त्रीयभाषाणां कृते उदारा:, यासु भाषासु तमिल-लैटिन-अरबी-संस्कृतादय: प्रमुखा:। परमासु भाषासु संस्कृतं गम्भीरतया स्वीकरणीयमिति। जवाहरलालनेहरुमहादेयेनोक्तम् (1949) संस्कृतभाषा साहित्यञ्च भारतस्य निधिर्वर्तते तथा च स्वीक्रियते यत् भारतस्य बौद्धिकता तदानीं यावत् स्थास्यति यदा प्रभृति भारतीयानां जीवनं प्रभावितं करिष्यति।

भारतीयशिक्षाव्यवस्थायां जनतन्त्रीकरणत्वात् सर्वेषां कृते संस्कृतपठनस्यावसरो लब्ध: येषां कृते पूर्व व्यवस्था नासीत्। सामान्यत: संस्कृतं कर्मकाण्डभाषेति स्वीक्रियते। फलस्वरूपत: अस्य सौन्दर्यबोध: साहित्यं च अनापेक्षितं जातम्। अद्यतन शोधमाध्यमेन नूतनतथ्याविष्कृतानि। शिक्षाक्षेत्रे संस्कृतपठनपाठनयो: प्रभाव: भंविष्यति। आधुनिकभारतीयभाषारूपेण एतत् संभवति यत् केवलं शास्त्रीयसंस्कृतेन पाठ्यपुस्तकानि न भवन्तु अपितु सरलसम्भाषणरूपेण आधुनिकपठनसामग्रीयुक्त संस्कृतपाठ्यपुस्तकानां निर्माणं भवेत् यत् विद्यार्थिनां जीवने प्रासङ्गिकं स्यात्।

संस्कृतपाठ्यपुस्तकानि

राष्ट्रियपाठ्यचर्याया: रूपरेखाया: (2005) अनुशंसानुसारं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य कुलपतीनां प्रो. राधावल्लभत्रिपाठीमहोदयानां मुख्यपरामर्शत्वे राष्ट्रीय-शैक्षिकानुसन्धान-प्रशिक्षण-परिषदा षष्ठकक्षात: द्वादशकक्षापर्यन्तं संस्कृतपाठ्यपुस्तकानि प्रकाशितानि, तानीमानि भवन्ति-

पुस्तकस्य नाम	कक्षा	पाठाः
रुचिरा प्रथमो भागः	षष्ठकक्षा	15
रुचिरा द्वितीयो भागः	सप्तमकक्षा	15
रुचिरा तृतीयो भागः	अष्टमकक्षा	15
शेमुषी प्रथमो भागः	नवमकक्षा	12
शेमुषी द्वितीयो भागः	दशमकक्षा	12
शाश्वती प्रथमो भागः	एकादशकक्षा (ऐच्छिकम्)	12
भास्वती प्रथमो भागः	एकादशकक्षा (केन्द्रिकम्)	12
शाश्वती द्वितीयो भागः	द्वादशकक्षा (ऐच्छिकम्)	12
भाश्वती द्वितीयो भागः	द्वादशकक्षा (केन्द्रिकम्)	12

संस्कृतपाठ्यपुस्तकानां विशेषताः

* चित्रमाध्यमेन पाठोपस्थापनम्
* चित्रप्रावल्यं पाठेषूपलभ्यते
* प्राचीनसाहित्यस्य समावेशः
* आधुनिकसाहित्यस्य समावेशः
* अनूदितपाठानां समावेशः
* आधुनिकसंस्कृतगीतानि प्रदत्तानि
* प्राचीननाटकानि स्वीकृतानि
* आधुनिकनाटकानि दत्तानि
* रुचिवर्धकाभ्यासाः प्रदत्ताः
* भाषाकौशलानां विकासायावसरः
* शब्दार्थाः प्रदत्ताः
* प्रहेलिकाः हास्यपाठराश्चापि समावेशिताः
* लोककथायाः समावेशः

* प्रहसनस्यापि समावेशः
* स्तरानुकूलं पाठ्यपुस्तकेषु निर्धारिताः पाठाः स्वीकृताः

संस्कृतशिक्षणम्

संस्कृतशिक्षणं सौकर्यं रुचिकरं छात्रकेन्द्रितञ्च भवेदिति मनसि निधाय शिक्षकैः यथाशक्यं संस्कृतमाध्यमेन पाठनीयम्। आवश्यकतानुसारं प्रश्नोत्तर-अभिनयादिविधिभिरध्यापनीयं येन विद्यार्थिनः वार्तालापं कर्तुं समर्थाः भवेयुः। शिक्षणे केचन ध्यातव्याः बिन्दवः -

* स्तारानुगुणं भाषाकौशलानां विकासाय अवसरो प्रदेयः
* संस्कृतेन सम्भाषणाय छात्राः प्रेरणीयाः।
* पद्यपाठाः सस्तरं पाठनीयाः छात्राश्चानुवाचनीयाः।
* गद्यपाठानामादर्शवाचनं करणीयम्।
* यथासम्भवं संस्कृतेन निदेशनं करणीयम्।
* मौखिकप्रयोगार्थं बलप्रयोगः।
* संस्कृतसम्भाषणाय प्रोत्साहनम्।
* संस्कृतक्रीडाः आयोजनीयाः।
* छात्रैः भित्तिपत्रिकालेखनम्।
* विभिन्नप्रतियोगितानामायोजनम्।
* पाठनसमये दृश्य-श्रव्यसाधनानां प्रयोगः (कैसेट, टेपरिकार्डर, चार्ट, चित्राणि, कार्टू, Power Point Presentation] संगणके क्रीडाः इत्यादयः)

उपर्युक्तविवेचनात् विज्ञायते यत् विद्यालयीयशिक्षायां पाठ्यचर्यायाः महत्त्वं स्थानं विद्यते। पाठ्यचर्या-पाठ्यक्रम-पाठ्यपुस्तकनिर्माणं सततप्रक्रिया वर्तते। छात्राणां स्तारानुगुणमावश्यकतामनुभूय संस्कृत-पाठ्यक्रम-पाठ्यपुस्तकादीनां निर्माणमवश्यं करणीयमिति।

सन्दर्भग्रन्थाः

1. राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखा - 2000, एन.सी.ई.आर.टी., नवदेहलीद्वारा प्रकाशिता
2. राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखा - 2005, एन.सी.ई.आर.टी., नवदेहलीद्वारा प्रकाशिता
3. माध्यमिक-शिक्षा-आयोगः (1951-1953), भारतसर्वकारेण प्रकाशितः
4. शिक्षा-आयोगः (1964-1966), भारतसर्वकारेण प्रकाशितः
5. राष्ट्रीयशिक्षानीतिः (1986), भारतसर्वकारेण प्रकाशितः
6. संस्कृत-आयोगः (1956-57), भारतसर्वकारेण प्रकाशितः
7. संस्कृतपाठ्यक्रमः, एन.सी.ई.आर.टी., नवदेहलीद्वारा प्रकाशिता
8. संस्कृतपाठ्यपुस्तकानि (कक्षा 6तः 12पर्यन्तम्) एन.सी.ई.आर.टी., नवदेहलीद्वारा प्रकाशिता

संस्कृतशिक्षायाः प्रसारविकासः एवं उत्थापनम्

मदनमोहनतिवारी
शिक्षाचार्य छात्रः

संस्कृतशिक्षा सार्वकालिकी सार्वभौमिकी चास्ति। संस्कृतशिक्षा-कश्चिद्काल स्थानविशेषणबद्ध न भवति। सम्प्रति भारतस्य अस्तित्वं वैश्विकस्तरे सभ्यतासंस्कृतिसम्पन्न राष्ट्रस्यरूपेण गण्यते। अस्य राष्ट्रस्य मूलाधारं संस्कृतमेव मन्यन्ते। अस्याशिक्षाभावे समाजस्य आधारोऽपि चरन्तरं न तिष्ठति। पं. जवाहरलाल नेहरुमहाभागेरुक्तम् "संस्कृत शिक्षा एवं तस्य साहित्यं भारते विद्यमानाः महन्तः कोशाः सन्ति। यैः भारतस्य सर्वदा आत्मीयराष्ट्रियसंस्कृतिकाः उन्नतयः सम्भवन्ति। यावत् अस्यराष्ट्रस्य नागरिकानां जीवनस्तरो श्रेष्ठतमो न भविष्यति तावत् संस्कृतशिक्षायाः प्रभावो न्यूनमिति सर्वे मन्स्यन्ते यदि भारतस्य विश्वगुरोः पदमलङ्क कर्तुं इच्छति तर्हि संस्कृतभाषैव केवलमाधारोऽस्ति। भारतीय संस्कृतेः सम्यक्ज्ञानस्य संस्कृतशिक्षा एव एकमात्रं सोपानं वर्तते।

संस्कृतशिक्षा भाषा वा कश्चिदपि वर्ग विशेषस्य नास्ति। एषा शिक्षा तु सूर्यस्यप्रकाशैव वर्तते। यथा सूर्यस्य उन्मेषः सर्वेषां कृते ग्राह्यं भवति तथैव संस्कृतशिक्षा सर्वैरपि ग्रहितव्यम्। एषा शिक्षा कश्चिद्वर्गविशेषस्य भाषा न भूत्वा भारतीय सांस्कृतिकबोधस्य भाषास्ति यदि अधुना समाजे एतादृशा सम्प्रत्ययाः विद्यन्ते तर्हि तेषा चिन्तनं विपरीतमेव वक्तुं शक्यते। संस्कृतशिक्षाया अध्ययनेन न केवलं संस्कृत भाषायाः अध्ययनं भवति प्रत्युत अनया शिक्षया स्वस्य संस्कृतेरध्ययनं, भवति। स्वस्य ऐतिह्यस्य अध्ययनं, स्वस्य पूर्वजानां गरिमायाः अध्ययनं क्रियते। अतः संस्कृताध्ययनेन भारतीय आत्मनोऽध्ययनं भवति। संस्कृत शिक्षा कश्चिद् एकस्य प्रदेशस्य कृते न आवश्यकी अपितु अखिलभारतीयानां कृते आवश्यकी वर्तते। अस्याध्ययनेन प्रादेशिकतागतः विभिन्नता परिसमाप्य अखण्डभारतं प्रतिआत्मीयतायाः भाव उत्पद्यते। अतः येषां मनसि संस्कृतशिक्षायाः कृते

संकीर्णं वर्तन्ते तैः ते विचाराः परिवर्तनीयाः।

संस्कृत शिक्षायाः विकासः

पञ्चदश विश्वसंस्कृतसम्मेलनावारे भारतस्य वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहनसिंहमहाभागैरुक्तं यत् एषा भाषा शिक्षा वा अन्याषां भाषाणां अपेक्षा प्रभावी एतदर्थमस्ति यत् अनया भाषया भारतवर्षः प्राणवान वर्तते। सम्प्रति अस्याः प्रचारप्रसारः दिनानुदिनं वर्धते। तदर्थं संस्कृतशिक्षायाः विकासस्य कृते सवैरपि प्रयासः करणीयः। अधुना तु संस्कृतस्य प्रभावः विश्वसंस्कृतेरुपर्यस्ति। शिक्षा इयम् न केवलं आर्ष वाङ्मयरूपं अस्मत्पूर्वजानां अर्जिता सम्पतेः संग्रहितोर्यस्ति। सम्प्रतिविश्वबन्धुत्वसिद्धान्तैः अन्येषां राष्ट्रणां कृते जीवनमूल्यानां मार्गदर्शनं कुर्वन् अस्ति। अतः अस्माभिरेतद् कदापि न विस्मर्तव्यं यद् अस्या शिक्षा एव कारणाद् देशोऽयं विश्वगुरुपदवीम लङ्कुर्वाण आसीत्। विश्वसंस्कृतेविकासाय। अस्या शिक्षायाः महती आवश्यकता अनुभूयते। यतोहि सम्प्रतिनानाविधदोषैः पूर्णाः अशेषविश्वस्य दृष्टिर्भारतं प्रति वर्तते यत् संस्कृतनिहित संस्कृत्या शिक्षया च मानवीयमूल्यैश्च परिपूरितं संस्कृतं भ्रष्टाचारकदाचारपरस्परद्वेष भावनादिस्थितिभिः संरक्षेदिति।[२]

संस्कृतशिक्षायाः उत्थापनम्

आधुनिक समय विज्ञानस्य प्रभावः अधिकोऽस्ति। विज्ञानाद् अनुक्षणं यदावश्यक तद् सर्वं प्राप्तुं शक्नुमः। विज्ञानेन जीवनस्य प्रत्येकमपि अंशः प्रभावितः भवति। आधुनिक चाक्चैक्यं विज्ञानस्य आविष्कारेण दरी दृश्यते। अत्र संस्कृतस्य स्थानं स्थायीरूपेण भवेत्। अथ च अस्याः शिक्षायाः यद् प्रायोगिकरूपमस्ति तदरूपं सर्वेषां पुरतः आनयनाय उत्थापनपूर्णं कार्यमस्ति। कार्यमिदं कथञ्चिदपि अस्माभिर्सम्पादनीयं पर्यावरणमिदानीं प्रदूषणप्रायः जायमानमस्ति। विज्ञाने तु पर्यावरणप्रदूषणाय आविष्काराः क्रियन्ते परं पर्यावरणसंरक्षणाय भारतीय चिन्तकानां दृष्टिरवलोकयितुं शक्यते। संस्कृत शिक्षायां पर्यावरणसंरक्षणविषयकं चिन्तनम् पर्याप्तरूपेण उपलभ्यते। अथर्ववेदे निर्दिश्यते यत् पर्यावरणसंघटकतत्त्वेषु तत्त्वत्रयं प्रमुखं वर्तते। तानि सन्ति-आपः (जलम्) वाताः (वायु) ओषधयः च।

एतानि पर्यावरणं निर्मापयन्ति–

त्रिणि छन्दांसि कव्योवि येतिरे, पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।[३]

संस्कृतशिक्षायां वायु संरक्षणं द्यु-भू-संरक्षणं जल संरक्षणविषये बहुशः मार्गदर्शनकृतमस्ति आधुनिकसमस्याषु एषा किवकरालअपूर्वासमस्या चास्ति। अत्र संस्कृतशिक्षायां उल्लिखितानां मार्गदर्शनां प्रयोगं कृत्वा पर्यावरणस्यरक्षणार्थं अद्वितीयं कार्यं संस्कृतशिक्षया कर्तुं शक्यते। अथ च अनेन संस्कृतशिक्षा आधुनिक सन्दर्भे उपयोगिनी भवति।

. आधुनिके बृहद्नगरे संस्कृत शिक्षायाः उपयोगिता विषये महद् उत्थापनं दृश्यते। दिनामुदिनं नूतनाः आविष्काराः भवन्ति। येनः जीवनस्य उन्नतिः भवेत्। परं स्थायी उन्नतिः सर्वत्र न भवति। अस्यां परिस्थितौ मनुष्याणां गौणस्थानं वस्तुनां स्थानं सर्वोपरि गण्यते। अतएव संस्कृतस्य महत्ता इदानीमपि तथैव अस्ति यथा पूर्वमासीत्। संस्कृतशिक्षायां अर्थकरीत्वं वर्धेत् तदपि अस्माकं पुरतः उत्थापनमस्ति। या शिक्षा अध्येतृणां जीविकानिर्वाहं वृत्तिव्यवस्थां च न सा शिक्षा न श्रेयस्करी। अतः विश्वविद्यालयेषु तावदेव प्रवेशः भवेत् येन अध्ययनान्तरं शीघ्रमेव वृत्ति लभेत्। एव प्रकारेण विविधैः प्रयोगैः संस्कृतशिक्षायाः प्रभावम् वर्धयितुं शक्यते।

विना वेदं विना गीतां विना रामयणीकथाम्।
विना कविकालिदासं भारतं भारतं नहि नहि।।[४]

सन्दर्भ ग्रन्थाः

१. कपिमुनि
२. संस्कृत संवाद (पत्रिका)
३. अथर्ववेद १८.१.१७
४. वासुदेवनन्दन शास्त्री (संस्कृत क्यों पढ़ें) सार्वभौम सं.प्र.सं. वाराणसी
५. निबंधशतकम्- कपिलदेव द्विवेदी, ज्ञानपुर (भदोही)

संस्कृतशिक्षणसम्बर्द्धनाय प्रचारोपायाः

रामसेवकझा, संजीत कुमार झा

संस्कृतं विना भारतं नैव कल्पयितुं शक्यते। यावन्नु विद्यते संस्कृतं तावन्ननु भारतम्। संस्कृतं नैवास्माकं देशस्यापितु सकलविश्वस्यैव प्राचीनतमा भाषा; अस्याः भाषायाः संरक्षणे पोषणे चावलम्बितं भारतीयसंस्कृतेः स्वरूपस्य संरक्षणं पोषणञ्च। सुविदितमेव सर्वेषां, यदीयं गीर्वाणवाणी सुरभारती संस्कृतभाषा न केवलं भारतीयसंस्कृतेः, अपितु समस्तराष्ट्रस्य एकताया अपि आधारत्वेन विराजते। इमां भाषामधीयाना विश्वजना अत्रागत्य स्वं स्वं चरित्रं शिक्षन्ते स्म। यथोक्तं मनुना[1]–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

नवीनशिक्षानीतौ संस्कृतभाषायाः शिक्षणम् उपादेयता च प्रतिपादिते स्तः– भारतीयभाषाणां विकासार्थं तथा च राष्ट्रस्य सांस्कृतिकैकात्माथ संस्कृत भाषैव महत्त्वपूर्णा'' इति।[2] संस्कृतभाषा एव प्राचीनकालादारभ्य भारतराष्ट्रस्यास्य सांस्कृतिकैकात्मार्थं प्रभावपूर्ण'' इति। संस्कृतभारतस्य शास्त्रीयभाषा वर्तते। भाषेयं सङ्गणकयन्त्रस्य साफ्टवेयर् इत्यस्य च कृते सर्वोत्तमा भाषा मताः नासावैज्ञानिकैः।[3]

वर्तमानशिक्षायाः प्रमुखोद्देश्यं ''राष्ट्रिय-एकता'' इति पौनःपुन्येन उच्चैः समुद्घोषितमस्ति। राष्ट्रस्य पुरतः अद्यतनः ज्वलन् प्रश्नः नाम **''राष्ट्रस्य एकतात्मता''** एव। अस्य प्रश्नस्य सम्यग् उत्तरं केन्द्रशासनेन स्वयमेव प्रदत्तमस्ति, यत्– ''संस्कृतभाषायाः अखण्डप्रवाहः पञ्चवर्षसहस्र–

---

1. मनुस्मृतिः – 2.20
2. संस्कृतविषयक–विशिष्टपरिच्छेदः
3. फोर्ब्सपत्रिका जुलाई 1987 की एक रिपोर्ट में

वर्षेभ्य: प्रवाहमानो दृश्यते आधुनिकविदुषां मतानुसारम्। भारतेऽस्मिन् आर्यभाषाया: व्यापकत्त्वात् सर्वाधिकं सम्पन्नस्वरूपं वर्तते। संस्कृतभाषा पाणिनियकृतनियमितव्याकरणसूत्रै: परिष्कृता। पतञ्जलिकाले आर्यवर्तस्य शिष्टजनानां व्यावहारिकी भाषा संस्कृतं बभूव–

''गादर्शात्प्रत्यक्कालकवनादक्षिणेन हिमवंतमुत्तरेण वारियात्रमेतस्मिन्नार्यवर्ते आर्यनिवासे।''[4]

भारतीयसंस्कृते: संस्कृतभाषायाश्चाविनाभावसम्बन्ध:। काश्मीरत: कन्याकुमारीपर्यन्तं सकलसंस्काराणामाधार: संस्कृतमेव। भारतीयसंविधानस्य सर्वासां भाषाणामुपरि संस्कृतस्यैव प्रत्यक्षत: परोक्षतो वा प्रभावो दरीदृश्यते। देशेऽस्मिन्नधुना संस्कृतशिक्षणं परमावश्यकम्।

संस्कृतशिक्षणसन्दर्भे डॉ.हरिनारायणदीक्षितवर्य्यैर्लिखितं स्वविरचित–महाकाव्ये–

रक्षितुं न च शक्यन्ते विना संस्कृतशिक्षणम्।
सभ्यतासंस्कृतिर्लोके भारतस्य च शेवधि:।।[5]

तत: परं विनिवेदिता भारतवासिनो यत् सर्वैरेव संस्कृतशिक्षणाय सहयोगो विधेय:–

संस्कृतस्य च शिक्षायै तस्माद्भारतवासिभि:।
सहयोगो विधातव्यो वपुषा मनसा श्रिया।।[6]

संस्कृतशिक्षणोपायत्वेन आदौ निखिलेऽपि भारतवर्षे प्रथमसंस्कृत–आयोगसदस्यै: प्रदत्तं त्रिभाषासूत्रमाचरणीयम्–

(क) मातृभाषा (अथवा प्रादेशिकभाषा)

(ख) आंग्लभाषा

---

4. व्याकरणमहाभाष्यम् - 6-3-109
5. भारतमाताब्रूते - 9-84
6. भारतमाताब्रूते - 9-85

(ग) संस्कृतभाषा अथवा काऽप्यन्यासांस्कृतिकभाषा

त्रिभाषासूत्रै: सह संस्कृतभाषाया: पाठ्यक्रमोऽप्यायोगेनास्ति निध रित:। आयोगेन प्रस्तावितं यत् षष्ठकक्षात: प्रारभ्य सर्वेष्वपि विद्यालयेषु संस्कृतभाषाध्ययनं भारतशासनेन सम्पूर्णेऽपि राष्ट्रेऽनिवार्यरूपेण कार्यम्। छात्रेषु संस्कृताध्ययनं प्रति रुचिमुत्पादयितुं षष्ठकक्षात: पूर्वं संस्कृतभाषाया: सुभाषितानां नीतिकथानाञ्च अध्यापनस्य व्यवस्था पाठ्यक्रमे पञ्चमकक्षापर्यन्तं शासनेन कार्या।[7]

संस्कृतशिक्षणक्षेत्रे संस्कृतं ''भाषात्वेन'' एव द्रष्टव्यं, न तु विषयाकरेण।

भाषाया: चत्वारि कौशलानि भवन्ति-श्रवणं, भाषणं, पठनं, लेखनं चेति। तत्र श्रवणं पठनं चावगमनात्मकं भवति भाषणं लेखनं चाभिव्यक्त्यात्मकं भवति। चतुर्णामपि कौशलानां यदा प्राधान्यं भवति तदैव शिक्षणं परिपूर्णं भवति।

संस्कृतशिक्षणाय चत्वार उपाया: प्राधान्येन वर्तन्ते। ते च-

(1) पाठयिताशिक्षक: (2) पाठनपद्धति:

(3) पाठ्यक्रम: (4) परीक्षा

1. पाठयिता शिक्षक:- शिक्षणप्रक्रियायां शिक्षकस्य भवति विशिष्टं स्थानम्। यतोहि शिक्षकस्य कलाकौशलयोरभावे शिक्षणस्य वाञ्छितं साफल्यं नैव लभ्यते। आदौ संस्कृतशिक्षणाय शिक्षकस्य विषयज्ञानेन समं धाराप्रवाहत्वेन संस्कृतसम्भाषणं भवेत्। एतत्सन्दर्भे तु महाकविकालिदासोऽपि विलिखति यत् यस्य शिक्षकस्य विषयज्ञानं सम्प्रेषणञ्चोभयमपि समीचीनं स एव शिक्षकाणां धुरिप्रतिष्ठापयितव्य:। सामान्यतस्तु कस्यचित् शिक्षकस्य विषयज्ञानं दृढतरं न, सम्भाषणकौशलम् तथैव कस्यचित् सम्भाषणकौशलमुत्तमं तु विषयज्ञानं नोत्तमम्, अत: सर्वोत्तम: कुशलशिक्षक: असौ मन्यते यस्य उभयमपि साधुर्भवतियथोक्तम्-

शिलष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था,
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।

7. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी प्रथमायोगस्य प्रपत्रम् - 1955-56

यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥[8]

संस्कृतं संस्कृतमाध्यमेन एव पाठनीयं सर्वत्र। संस्कृतमाध्यमेन पाठः तदैव सफलो भवति, यदा शिक्षकः काश्चन गुणान् आत्मसात्करोति।

ते च गुणाः–

* भाषा अवगमनयोग्या प्रयोगयोग्या वा व्यवहरणीयम्।
* संस्कृतमाध्यमेन पाठनार्थम् अध्यापकेन विविध-पद्धतीनां ज्ञानं प्राप्तव्यं भवति।
* माध्यमिक-कक्षापर्यन्तं संस्कृतशिक्षणं प्रत्यक्षविधिनापि कारणीयम्।
* संस्कृतशिक्षकैः अधिकाधिकं संस्कृतमेव सम्भाषणीयं विद्यालयेषु।
* शिक्षकेण धाराप्रवाहितया संस्कृते सम्भाषणसामर्थ्यं सम्पादनीयम्।

2. पाठनपद्धति – प्राथमिकस्तरे प्रत्यक्षपद्धतिः लाभाय भवति। संस्कृतमाध्ययेन पाठनपद्धतिमवलम्ब्य एव पाठनस्य साफल्यं सिद्ध्यति। श्लोकपाठावसरे आकाङ्क्षापद्धतिः लाभकरी। छात्राः संस्कृतेन सम्भाषणं कुर्युः, वाक्यानि च रचयितुमात्मविश्वासं प्राप्नुयुः तथा करणार्थं तु ''सम्भाषणशिविराणि'' नितरां लाभकराणि इति तु सम्प्रति प्रयोगसिद्धः विषयः। अतः वर्षारम्भे वर्षान्ते च विद्यालये सम्भाषणशिविराणाम् आयोजनं विधाय प्रयत्नो विधातुं शक्यः संस्कृतवातावरणनिर्माणे।

3. पाठ्यक्रमः– सम्भाषणमाध्येन संस्कृतं पाठनीयं चेदनुकूलं पाठ्यपुस्तकमपि स्यादेव।

* सरला एव भाषा सर्वेषु स्तरेषु भवेत्।
* पाठ्यपुस्तकं सम्भाषणोपयोगि भवेत्।
* संस्कृतवाङ्मये केचन दुर्बोधा ग्रन्था अपि सन्ति, ते संस्कृतविद्वद्भिः सुललितसंस्कृते प्रतिपादनीयाः।
* भाषागतसारल्यमपि भवितव्यम्।
* व्याकरणगतसारल्यमपि भवितव्यं पाठ्यक्रमे। सूत्र-प्रक्रिया-

8. मालविकाग्निमित्रम् – 1-6

लकार-धातुप्रयोग-सन्धि-आदीनां प्रयोगः क्लिष्टतरो न भवेत्, अपितु येषामवश्यकता वर्तते संस्कृतशिक्षणे तावन्त एव सरलरीत्या पाठनीयाः।

4. परीक्षाः - परीक्षाक्रमः योऽस्ति अधुना, छात्रस्य ज्ञानं सामर्थ्यञ्च ज्ञातुं नास्तीति अलम्। पठनं चतुर्विधकौशलम् अवलम्ब्य भवति, इत्यतः परीक्षा अपि चतुर्विधकौशलान् आधारीकृत्य एव भवेत्। इतोऽपि मौखिकपरीक्षा अपि भवेयुः। एवं शिक्षकः, पाठ्यक्रमः, पद्धति, परीक्षा चेति चत्वारोऽपि अंशा यदा परस्परपूरकाः भवन्ति, तदैव शिक्षणं सार्थकं भवति।

संस्कृतसंवर्धनाय प्रचाराय चास्माभिरादौ चतुर्भिर्हेतुभिः परिपूर्णैर्भाव्यम्। तत्र खलु अध्ययनं, अर्थज्ञानं, आचरणं अध्यापनञ्च प्रतीयन्ते-यथोक्तम्

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः[9]

1970 ईसवीयतमेवर्षे भारतसर्वकारेण संस्कृतसंवर्द्धनाय राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानं संस्थापितम्। तथैव 1982 तमे वर्षे संस्कृतप्रचारप्रसाराय संस्कृतभारती नाम्ना एकं सामाजिकं संघटनं स्थापितम्। अन्यान्यपि बहुविधानि संस्थानानि संस्कृत-अकादम्यश्च वर्तन्ते देशेऽस्मिन् संस्कृतसंवर्धनाय प्रचाराय च।

संस्कृतसंवर्धनप्रचारप्रसारश्च बहुभिः प्रकारैः विधातुं शक्यते-

(1) संस्कृतभाषाव्यवहारः - संस्कृतज्ञाः अध्येतारश्च संस्कृतमाश्रित्यैव अधिकाधिकं व्यवहरेयुः। पत्रादिव्यवहारे वादविवादे भाषणे लेखने दूरभाषे च संस्कृतमेव प्रयुञ्जीरन्।

(2) व्याकरणस्य सरलीकरणम् - संस्कृतप्रचाराय संस्कृतव्याकरणं सरलीकरणीयम्। व्याकरणनियमाः प्रयोगशैल्या शिक्षणीयाः।

(3) शिविरायोजनम् - दशदिवसीय-त्रैमासिकसम्भाषणशिविरायोजनं भवितव्यं नूनमेव।

(4) शिक्षकप्रशिक्षणम् - बहूनां संस्कृतशिक्षकाणां संस्कृतभाषायां, नैपुण्यं न भवति, अतः तेषां कृते वर्षे एकवारं प्रशिक्षणकार्यक्रमो भवेत्। येन ते संस्कृतभाषणे दक्षतां लभेरन्।

---

9. **नैषधीयचरितम् - 1-4**

(5) **पत्राचारपाठ्यक्रमः** - ये खलु संस्कृतजिज्ञासवः सम्भाषणशिविराणि कर्तु शक्ताः, तेभ्यः पत्राचारमाध्यमेन संस्कृतं पाठयितुं शक्यते।

(6) **संस्कृतस्यानिवार्यशिक्षणम्** - हिन्दी-आंग्लभाषाभ्यां सहैव संस्कृतमपि सर्वेषु विद्यालेष्वनिवार्यं स्यात्। प्रार्थना सभा अपि संस्कृतभाषायां स्युः प्रार्थनासभासु।

संस्कृतसूक्तिरेका तस्या भावार्थः छात्रेभ्यः मञ्चात् शिक्षणीयः।

(7) **निमन्त्रणपत्रम्** - यथा किल सर्वेऽपि संस्काराः संस्कृतभाषया संपाद्यन्ते, तथैव विवाहादिसंस्काराणां निमन्त्रणपत्राणि अपि संस्कृतभाषायामेव प्रकाशनीयानि।

(8) **पठनपाठनपद्धतिपरिष्कारः** - संस्कृतस्यप्रचारार्थमा-वश्यकम् एतद्यत् पठनपाठनप्रणाली अधुना वैज्ञानिकी पद्धतिमनुसरेत्। आधुनिककालानुसारमपि भवेत्।

(9) **गुरुकुलस्थापनम्** - इदानीमाधुनिकांग्लविद्यालयाः स्थाप्यन्ते जनैः। ते खलु विद्यालयाः नैतिकचारित्रकदृष्ट्या शून्याः। तर्हि साम्प्रतं गुरुकुलसदृशा विद्यालयाः संस्थापनीयाः। यत्र संस्कृतेन सहान्ये विषया अपि भवेयुः।

(10) **संस्कृतपरिवारः** - उच्चपदं सम्प्राप्य नालमिति संस्कृतज्ञैः। तदनु स्वपुत्र- पुत्रीश्च संस्कृतं सम्पाठ्य संस्कृतपरिवारा निर्मेयाः।

(11) **सर्वकारसहयोगः** - सर्वकारस्य कर्तव्यमेतद् यत् स संस्कृतज्ञानम् आद्रियेत्, संस्कृतप्रचारे साहाय्यमाचरेत्, राजकीयकार्येषु संस्कृतमनिवार्यं कुर्यात्, संस्कृतं पोषयेच्च।

अन्या अपि बहुविधा उपाया भवितुं शक्यन्ते संस्कृतप्रचाराय मयात्रैतावदेव प्रस्तूत्य विरम्यते।

संस्कृतशिक्षाऽनुसन्धानञ्च

देशबन्धुभट्टः
शोध छात्रः

संस्कृतवाङ्मये शिक्षापदस्य व्यवहारो विद्यापदेनापि दृश्येत। शिक्षापदमिदं शिक्ष् विद्योपादाने इत्यस्माद् भौवादिकधातोः 'गुरोश्च हलः'[१] इति सूत्रेण अ-प्रत्यये सति 'अजाद्यतष्टाप्'[२] इति टाप 'शिक्षे'ति पदं निष्पन्नम्। यस्यार्थो विद्याग्रहणमेव प्रामुख्येन ध्वन्यते। संस्कृतशिक्षा नाम संस्कृतस्य शिक्षा, संस्कृतभाषायाः शिक्षा उत संस्कृता या शिक्षा सा संस्कृतशिक्षा। इयं संस्कृतशिक्षाऽस्माकं भारतीयानां संस्कृतेरविरलधारा वर्तते। उक्तं हि-

संस्कृते संस्कृतिर्ज्ञेया संस्कृते सकलाः कलाः।
संस्कृते सकलं ज्ञानं संस्कृते किन्न विद्यते॥

समग्रेऽस्मिन् संसारे मानवमहत्ता मन्यते शिक्षयैव। मानवोन्नतेर्मूलं शिक्षा एवास्ति। अत एव शिक्षामुद्दिश्य भूयान् विचारः संस्कृतवाङ्मये समवलोक्यते। शिक्षा कीदृशी भवेत्? प्रश्नोऽयं प्राक्कालादेवास्ति चर्चाया विषयः। 'सा विद्या या विमुक्तये।' 'अविद्यया मृत्युन्तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।'[३] 'विद्यया विन्दतेऽमृतम्'[४] संस्कृतशिक्षा तु साक्षात् कल्पनतेव संसारेऽस्मिन् विद्यते। विद्ययाऽस्मिन् जगति सर्वाणि कार्याणि साधयितुं शक्यन्ते। उक्तञ्च-

किं किन्न साधयति कल्पलतेव विद्या।

---

१. अष्टाध्यायी – ३/३/१०३
२. अष्टाध्यायी – ४/१/४
३. ईशावास्योपनिषद् – ११
४. केनोपनिषद् – २/४

समस्तस्य विश्वस्य ज्ञाननिधय आदिग्रन्थाश्च वेदा एव। नास्ति काचिद्विप्रतिपत्तिरत्र। वेदेभ्यो ज्ञानगङ्गा अजस्त्ररूपेण प्रवाहमाना वर्तते। सकलजगतः सृष्टिस्थितिलयकर्तुर्भगवतः परब्रह्मणो निःश्वासभूता हि वेदा ज्ञानराशयः। वेदानामपौरुषेयत्वं नित्यत्वञ्च महर्षिभिस्स्वीकृतमस्ति। यथोक्तं हि–

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।

भगवान् मनुरपि वेदानां सर्वज्ञानमयत्वमङ्गीकृतवान्–

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।[५]

वेदाङ्गेषु शिक्षाशास्त्रं वेदस्य घ्राणत्वेनाङ्गीक्रियते। 'शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।[६] शिक्षाशास्त्रस्य वेदाङ्गेषु मुख्यं स्थानं वर्तते। यतोहि वेदमन्त्राणमवितथोच्चारणमेव प्रथममावश्यकं वस्त्वस्ति। वेदमन्त्रेषू-दात्तादिस्वराणां प्राधान्यं सर्वविदितमेव।

वस्तुतो मानवः कतिपयसामान्यप्रवृत्तिभिः सहास्मिन् जगति प्रविशति। शिक्षयास्य पशव इव जन्मजातप्रवृत्तयः परिमार्ज्यन्ते। परिणामतो मानवः सामाजिको भवति। शिक्षया मनुष्यस्य शारीरिकमानसिकाध्यात्मिकविकासो भवति। इत्थं मानवस्य सर्वविधविकासे शिक्षायाः महत्वपूर्णं योगदानं सुस्पष्टमेव। नैतिकविकासश्चरित्रनिर्माणञ्च शिक्षाया मुख्यमुद्देश्यमस्ति। भगवता मनुना प्रोक्तम्–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।[७]

अनुसन्धानं पदमिदम् अनु सम् उपसर्गपूर्वकाद् 'धा' धातोः ल्युटि अनादेशेऽनुसन्धानमिति पदं निष्पन्नम्। यस्यार्थो गवेषणा, पृच्छा, गहनं निरीक्षणं परीक्षणञ्च भवति। अनुसन्धानं नाम लक्ष्यस्य अनुगमनम्।

---

५. मनुस्मृति – २/७
६. पाणिनीयशिक्षा– ४२
७. मनुस्मृति – २/२०

एवम्प्रकारेण आङ्ग्लभाषाया: RESEARCH, RE= Again, search= Explore, अर्थाद् बारम्बारं गवेषणम्। अनुसन्धानपदस्य पर्यायशब्दा: शोध:, गवेषणा, अन्वेषणम्, आविष्कार इत्यादय:। संस्कृतवाङ्मयेऽनुसन्धानार्थं मृग् चिन्त् इत्यादिधातूनां प्रयोगोऽपि क्रियते। पुरातनीयायामध्ययनप्रणाल्यां सूत्रग्रन्थेषु प्रच्छन्नरूपेण निबद्धानामर्थानां प्रकाशनाय सूक्ष्मविवेचनपूर्वक-मनुसन्धानं द्योतयन्तो भाष्यम्, वृत्तिर्विवृत्तिर्व्याख्या, टीका, टिप्पणी प्रभृतय: शब्दा: प्रयुक्ता दृश्यन्ते। यथा– महर्षिपतञ्जलेर्व्याकरणमहाभाष्यम्, नागोजी-भट्टस्य लघुशब्देन्दुशेखर:, परिभाषेन्दुशेखर:, भगवत्पादश्रीमच्छङ्कराचार्य-कृतोपनिषदां भाष्यानि, अपि च ब्रह्मसूत्रे कृतं शारीरिकभाष्यम्। आचार्य-कुमारिलभट्टै: १२००वर्षपूर्वमनुसन्धानस्य पञ्चसोपानानि निर्दिष्टानि–

विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्।
निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गशास्त्रधिकरणं स्मृतम्।।[७]

तथैव अमेरिकीदार्शनिको जॉन ड्यूवी महोदय: स्वीयपुस्तकै "How we Think" अनुसन्धानस्य पञ्चसोपानानि विज्ञापयति[८]–

१. समस्याया: परिज्ञानम्

२. परिकल्पनानिर्माणम्

३. तथ्यानां सङ्कलनं, व्यवस्थापनं विश्लेषणञ्च।

४. निष्कर्षप्राप्ति: (प्रापणं वा)।

५. परिकल्पनाया विशेषपरिस्थितौ परीक्षणम्।

आधुनिके युगेऽनुसन्धानस्यात्यन्तं महत्त्वं वर्तते। अनुसन्धानं कस्यचिदपि राष्ट्रस्य प्रगते: प्रतीकचिह्नं भवति। अनुसन्धानेन ज्ञानवृद्ध्या साकं मानवविकासोऽपि दृढीभवति। अनुसन्धानं वैज्ञानिकविधौ (scientific method) आधारितं भवति। वैज्ञानिकविधेस्तात्पर्यं कस्या अपि समस्याया वैज्ञानिकरीत्या समाधानम्। अनुसन्धानस्य वैशिष्ट्यं वर्तते यत्तत्र नवीन-ज्ञानस्याविष्कार: सामान्यनियमसिद्धान्तानां प्रतिपादनम्, वैज्ञानिकसुव्यवस्थित-सुनियोजितप्रक्रिया, विश्वसनीयता, वैधता, वस्तुनिष्ठता, तार्किकता चेत्यादयो भवन्ति। अपि च संस्कृतेऽनुसन्धानं विधातुं शोधार्थिनि जिज्ञासाप्रवृत्ति:

---

८. How we Think

(Powerful - Imagination) योग्यता (Knowledgebility) धैर्य (Perseverence) चादयो गुणा भवितव्यानि।

सर्वासां भाषाणां जननी संस्कृतभाषा वैदिककालादारभ्य सर्वान् मानवान् संस्कारयुक्तं कृत्वा तेषां मार्गदर्शनं करोति। या भाषा खलु गीर्वाणवाणी, गी:, श्रुति:, नाम्नाऽभिधीयते। सरसा, सुबोधा, विश्वमनोज्ञा सर्वेषु कालेषु जनैर्भाष्यते। संस्कृतशिक्षायामनुसन्धानस्य महत्वपूर्णानि क्षेत्राणि वर्तन्ते। वेद-वेदाङ्गानि व्याकरणच्छन्द:शिक्षाज्योतिषनिरुक्तकल्पा:। साहित्य-धर्मशास्त्र-पौरोहितवास्तुशास्त्रचिकित्साशास्त्रार्थशास्त्रराजनीतिविज्ञानपुराणे-तिहासदर्शनानि। उपनिषत्सु सत्यान्वेषणाय एवोपदेशा विहितास्सन्ति। यथा ईशावस्योपनिषदि-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[९]

अपारे संस्कृतवाङ्मये प्राधान्यं वर्तते जिज्ञासाया:। "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"[१०] नन्वल्पकालिकं विद्यते मानवजीवनम्। मानवस्य शक्तयो निर्धारिता भवन्ति। साम्प्रतं मानवस्य जिज्ञासाप्रवत्याख्नुसन्धयानप्रवत्याश्च विश्वस्मिन्नैका: सामान्या: प्रायोगिकाश्च विद्या: विकासङ्गता:। चत्वारो वेदा: प्रसिद्धा एव। तेषु च ऋग्वेदो 'यूनेस्को' संस्थाद्वारा विश्वस्य प्राचीनतमो ग्रन्थो घोषितो वर्तत इति सर्वे जानन्त्येव। संस्कृतशिक्षायामुत संस्कृतभाषायाम् ऋग्वेदकालादारभ्याद्यावधिपर्यन्तं नैरन्तर्येणानुसन्धानं जायमानं वर्तते। संस्कृतेऽनुसन्धानस्य नैका: सम्भावना: सन्ति। वास्तुशास्त्रमतीव व्यापकं वर्तते। अस्मिन्न केवलं मन्दिरभवनानां निर्माणविधयो ज्ञापिता: सन्ति अपितु अन्य-नैकानां कला-कौशलानामपि समावेशो वर्तते। चिकित्साक्षेत्रे आयुर्वेदाचार्यचरकस्य **'चरकसंहितायाम्'** एकलक्षौषधीनां वर्णनं वर्तते। एकलक्षौषधीनामनुसन्धानेन सम्यग्ज्ञानं कृत्वा समग्रेऽस्मिन् विश्वे जायमाननाविधरोगाणां शमनं भवितुं शक्यते। एवम्प्रकारेण जगतोऽस्य प्रथम: शल्यचिकित्सक आचार्यसुश्रुत:, तद्विरचितायां **'सुश्रुतसंहितायाम्'** अप्यनुसन्धानं विधेयम्। ज्योतिषशास्त्रेऽपि ग्रहनक्षत्राणां गतिज्ञानेन

---

९. ईशावास्योपनिषद् - १५

१०. ब्रह्मसूत्रम् ' १/१/१

नूतनभाविघटनानां पूर्वानुमानं कर्तुं शक्यते। कदा किं भवितुं शक्नोति? इत्यपि ज्ञातुं वयमर्हामोऽनुसन्धानेन। संस्कृतभाषाया एकं वैशिष्ट्यं तस्या व्याकरणं वर्तते, यत्राल्पाक्षरैर्बृहत्सन्देशप्रेषणं भवति। तदेव संसूचितम् (१९८७) सप्ताशीत्युत्तरैकविंशशततमेऽब्दे **"फॉर्ब्स"**[११] इति पत्रिकया यत् सङ्गणस्य (कम्प्यूटर) कृते संस्कृतभाषा एव सर्वोत्तमा। तथैव नासा (NASA) इति अमेरिकीसंस्थाया: **'मिशन् संस्कृतम्'** इत्यत्र संस्कृतविषयकानि कार्याणि विधीयन्ते। तत्रत्या वैज्ञानिका मन्वते यत् संस्कृतभाषा अतीव सरला वर्तते। तत्रत्यैर्वैज्ञानिकै: नर्सरीकक्षादारभ्य संस्कृतपाठनस्य समीचीना व्यवस्था कृतेति 'नासा' वेबसाइटमाध्यमेनेदं ज्ञातुं शक्यते। संस्कृतभाषामधिकृत्य ते सङ्गणकयन्त्राणामप्याविष्काराय प्रयतन्ते। 6G Super computer 2025 तमे वर्षे निर्मापयिष्यते तै:। एवमेव 6G Super computer 2035 तमेऽब्दे पूर्णं भविष्यतीति। 'नासा' इत्यत्र (६०,०००) षष्टिसहस्रात्मिका: संस्कृतपाण्डुलिपयोऽपि सन्ति। ता: अधिकृत्याऽनुसन्धानं जायमानं वर्तते। अस्माभिरपि दिशायामस्यां प्रयासो विधेय:।

डॉ. सुनीतिकुमारचटर्जीमहोदयानामाध्यक्षये गठितेन संस्कृतशिक्षा-ऽऽयोगेनापि (१९५६) संस्कृतेऽनुसन्धानाय संस्तुतय: प्रदत्ता:। तेनोक्तं यद् विश्वविद्यालयेषु शोधसंस्थासु च शोधकार्याणां स्तरोन्नयनाय संस्कृतभाषायां गोष्ठीनां, सम्मेलनानाञ्चायोजनं करणीयम्। शोधकार्याणां प्रकाशनाय तेषां प्रचाराय- प्रसाराय च सुविधा प्रदेया।

वेदे कर्मकाण्डे चानुसन्धानेन नवीनज्ञानं प्राप्य लौकिकपारलौकिक-सुखमवाप्तुं शक्यते। ननु **"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेद:"**[१२] इति वेदशब्दस्यार्थ कुर्वता सायणाचार्येणोक्तम्। तत्रेष्टलाभार्थ यागानुष्ठानरूपं यद्धर्माचरणं क्रियते तद्वेदमन्त्राणां शुद्धोच्चारणेनैव सम्पादनीयं भवति। संस्कृतशिक्षाया मूलाधारो वैदिकग्रन्थेषु समाहितो वर्तते। संस्कृतशिक्षा मुख्यतो मानववादसहिष्णुताऽऽध्यात्मिकताराष्ट्रवाद सर्वधर्मसम्प्रदायवादसमाजवादविश्ववादेष्वाधारिता विद्यते। संस्कृतशिक्षा

---

११. संस्कृतमञ्जरी अङ्क १-२, जुलाई २०१३ त: दिसम्बर २०१३ पर्यन्तम्, पृ.सं.-४३
१२. ऋग्वेदभाष्यभूमिका

समाजिकसाहित्यिकसांस्कृतिकादिक्षेत्रेषु विशेषरूपेण बलं प्रददाति। शिक्षेयं सर्वजनसुखाय सर्वजनहिताय चेति सर्वोदयभावनया ओत-प्रोता वर्तते। संस्कृतवाङ्मयेऽनुसन्धानपदाय चिन्त्यं मृग्यमित्यादि पदानां प्रयोगोऽपि क्रियते। यथा महामहोपाध्यायमल्लिनाथेन कृतासु बृहत्त्रय्या लघुत्रय्याश्च व्याख्यासु टीकासु वा बहुसु स्थलेषु चिन्त्यं मृग्यमित्यनुसन्धेयतोक्ता वर्तते। यथा– कुमारसम्भवे **"शम्भोर्यतध्वमाक्रष्टुमयस्कान्तेन लोहवत्।"**[१३] अस्य व्याख्यायावमनुसन्धानार्थं सूचयति, इत्यत्र लोहवत् **'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'**[१४] इति वतिप्रत्ययो मृग्यः। एवंविध संस्कृतशिक्षाया-मनुसन्धानसापेक्ष्यं बहूनि क्षेत्राणि सन्ति यत्र चानुसन्धानं करणीयम्। 'सूचना-प्रौद्योगिक्याः' युगे परिवर्तनेच्छया नूतनासुन्धानप्रवृत्त्या च संस्कृतशास्त्रेषु निहितज्ञानेन किमप्यभिनवं सृजनं कृत्वा समाजस्य राष्ट्रस्य समग्रस्य विश्वस्य चाभ्युदयो भवेत्।। इति शम्।।

---

१३. कुमारसम्भवम् - २/५९

१४. अष्टाध्यायी - ५/१/११५

संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण में संस्थाओं की भूमिका

प्रो. भास्कर मिश्र
विभागाध्यक्ष एवं संकायप्रमुख

स्वतन्त्रोत्तर भारत में ऐतिहासिक तथ्यात्मक दृष्टिकोण को अपने में संजोये हुए तथा ज्ञान-विज्ञान की धरोहर से जन-मानस को संचित करते हुए संस्कृत भाषा आध्यात्मिकता की पोषक के रूप में विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ाते हुए मंगलमय जीवन व्यतीत करने की विशिष्टशिक्षा प्रदान करती है। आधुनिक समाज शास्त्रियों और शिक्षाविदों की भी यही अवधारणा रही है कि बिना संस्कृत के अध्ययन अध्यापन के न तो भारतीय संस्कृति का बोध हो सकता है न ही उसमें निहित वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व प्रभासित हो सकता है। आज आवश्यकता है इस दृष्टि को विकसित करने के लिए, संस्कृतज्ञों के साथ वैज्ञानिक धारा से जुड़े हुए समूह की, जो समन्वित दृष्टिकोण से समस्त विश्व को नई राह दिखा सकें। इस तरह के प्रयास संस्कृत विश्वविद्यालयों में अवश्य किये जाने चाहिए क्योंकि ज्ञान और विज्ञान की विपुलता के उपरान्त भी आज भारत पाश्चात्य देशों का अनुवृति हो गया है, उसके मूल में यही कमी दृष्टिगोचर होती है जिसके उन्मूलन की आज अधिक आवश्यकता है। तभी भारत-भारत बन पायेगा और कहीं अतीत में खोये हुए अपने स्वरूव को विश्वपटल पर पुनः रेखांकित कर पायेगा। यद्यपि संस्कृति का पोषक व ज्ञान विज्ञान की अमूल्य निधि के रूप में संस्कृत भाषा अपने आप में विश्व की अक्षुण्ण धरोहर राशि है। फिर भी विगत वर्षों में विश्व-स्तर पर इसके उन्नयन में जिन महापुरूषों का विशेष योगदान है वे हैं डा. मण्डन मिश्र, डा. आर.के. शर्मा और डा. स्वामीनाथन

जिन्होंने संस्कृत भाषा के संरक्षण में संस्थापित संस्थाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इसी क्रम के विकास को गति प्रदान करते हुए शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार के तत्वावधान में राष्ट्रिय राजधानी दिल्ली में दिल्ली विद्यापीठ, तिरूपति विद्यापीठ को एकीकृत करते हुए 1972 में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान की स्थापना की गई। विकास क्रम की इस श्रखंला में विभिन्न प्रान्तों में भाषा के पठन पाठन की विधा के विकास के रूप में विभिन्न शाखाओं का श्रीगणेश किया गया। जिसके लिए अध्यापकों एवं शिक्षार्थियों की संस्कृत सेवा के प्रति दिया गया योगदान अविस्मणीय रहेगा। इन संस्थाओं से निष्णात छात्र न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी ज्ञान सरिता को प्रवाहित कर रहे हैं। आज संस्कृत भाषा का जो स्वरूप और स्थान दिखाई दे रहा है, उसमें पूर्वाचार्यो का त्याग और तपस्या ही कारण है जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी संस्कृत भाषा और उसमें निहित ज्ञान-विज्ञान के संरक्षण द्वारा इसे विश्वपटल पर रेखांकित किया।

यद्यपि संस्कृत संस्थानों द्वारा संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण हेतु निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। फिर भी इस प्रचार-प्रसार के लिए जो कदम उठाने चाहिए थे, उनमें कहीं शिथिलता दिखाई पड़ती है। इसे दूर करने का शिक्षाविदों द्वारा प्रयास किया जाना चाहिए जिससे संस्कृत भाषा जन सामान्य में बोली जाने भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो सके। इसके लिए **संस्कृत भारती** संस्कृत सम्भाषण शिविरों के माध्यम से संस्कृत भाषा को जनसामान्य तक पहुंचाने का विशेष कार्य कर रही है, जो सराहनीय है। संस्कृत के प्रति सामाजिक चेतना उत्पन्न करने का आधार भी यही होना चाहिए, जिससे भारतीय संस्कृति की आधार भूत देव-वाणी को जन-जन तक पहुंचाने का मार्ग प्रशस्त हो सके। शैक्षणिक संस्थानों की भूमिका का आधार भी यही निश्चित किया जाना चाहिए जिससे आध्यात्मिक विरासत के संरक्षण के साथ-साथ ज्ञान और विज्ञान की धाराओं को शिखर पर प्रतिष्ठित कर पायें। संस्कृत भाषा में निबद्ध पाण्डुलिपियों और उसमें निहित साहित्य को विश्व के सम्मुख लाने की

आज नितान्त आवश्यकता है। इसके लिए गवेषणात्मक विधि द्वारा संस्कृत संस्थाओं में विशेष शाखा के अन्तर्गत कार्य किया जाना चाहिए। शोध कार्य को राष्ट्रोपयोगी बनाने के लिए अनुसंधान की आधुनिक विधाओं को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। जिससे यह कार्य आगे चलकर विश्वहितकारी के रूप में प्रतिष्ठित हो सकें।

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, तिरूपति विद्यापीठ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय व अन्य प्राच्य विद्या संस्थानों में इस ओर ध्यान दिया जा रहा है, किन्तु संसाधनों के अभाव में जो गति प्राप्त होनी चाहिए थी वह नहीं हो पा रही है। उसके लिए राष्ट्रीय और प्रान्तीय स्तर पर संसाधनों के विकास के लिए पूर्ण सहयोग और आर्थिक सहायता के प्रयत्न किये जाने चाहिए। तभी संस्कृत भाषा में निहित ज्ञान राशि का संरक्षण और सम्बर्द्धन हो पायेगा। ऐसा भी नहीं है कि एक पक्षीय असहयोग के कारण आज संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण में बाधायें उत्पन्न हो रही हैं ये उभयपक्षीय खामियां है जिसे दोनों पक्षों के सहयोग से ही दूर किया जा सकता है। आज संस्कृत शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए सहायता सरकारों से मिलनी चाहिए तथा उन उपलब्ध संसाधनों द्वारा संस्कृत अनुरागियों को उसके प्रचार-प्रसार के लिए योगदान करना चाहिए, वे इसके लिए प्रयत्न करें तभी विश्व-स्तर पर विश्वबन्धुत्व और विश्व कल्याण की भावना को उन्नत शिखर पर प्रतिष्ठापित कर पायेंगे। श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विद्यापीठ के संस्थापक डा0 मण्डन मिश्र जी की भी यही अवधारणा रही है कि विश्वपटल पर ज्ञान विज्ञान के साथ मानवता का संरक्षण करने वाली आध्यात्मिक भाषा देववाणी संस्कृत में ही निहित है। जब तक इसके पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था नहीं हो पायेगी तब तक विश्व में शान्ति और कल्याणकारी प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि सम्भव नहीं है। अतः विश्व में शान्ति और कल्याणकारी प्रवृत्तियों के समुचित सम्वर्द्धन हेतु संस्कृत भाषा के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए तभी हम राष्ट्र के गौरवान्वित इतिहास को संरक्षित कर पायेंगे।

संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण में विभिन्न संस्थाओं का योगदान

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ

कोठारी शिक्षा आयोग के सुझावों को दृष्टिगत रखते हुए अखिल भारतीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली की स्थापना 8 अक्टूबर 1962 को विजय दशमी के दिन डा. मण्डन मिश्र जी के निर्देशन में हुई।

भारत सरकार द्वारा 1 अप्रैल 1967 को विद्यापीठ का अधिग्रहण किया गया। 21 दिसम्बर 1970 को श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली (एक पंजीकृत स्वायत्त संस्था शिक्षामंत्रालय भारत सरकार) का अंग बन गया। विद्यापीठ ने 1 नवम्बर, 1991 से मानित विश्वविद्यालय के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया। इसका उद्देश्य संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ संस्कृत साहित्य के गौरवान्वित इतिहास के संरक्षण और संस्कृत शिक्षकों के प्रशिक्षण द्वारा आधुनिक भाषा और विज्ञान के अध्यापकों के समकक्ष वेतन प्रदान करने के अवसरों को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना रहा है।

विद्यापीठ में संस्कृत शोध, पाण्डुलिपियों के प्रकाशन एवं संरक्षण के लिए एक स्वतन्त्र विभाग है। इस विभाग द्वारा न केवल प्राचीन पाण्डुलिपियों का अन्वेषण किया जाता है, अपितु संस्कृत-साहित्य के विद्वानों की उत्कृष्ट रचनाओं का प्रकाशन भी होता है। साथ ही विभाग द्वारा त्रैमासिक शोध-पत्रिका ''शोध -प्रभा'' का प्रकाशन भी किया जाता है। विद्यापीठ में 1994-95 के सत्र से शास्त्री पाठ्यक्रम के साथ-साथ व्यावसायिक संस्कृत, व्यावसायिक हिन्दी एवं संगणक प्रयोग सम्बन्धी पाठ्यक्रम और विभिन्न प्रमाणपत्रीय पाठ्यक्रम को नियमित रूप से अध्ययन-अध्यापन में सम्मिलित किया गया है।

विद्यापीठ शास्त्री पारम्परिक विषयों के अध्ययनाध्यापन एवं गहन अनुसन्धान के द्वारा भारतीय वैज्ञानिक परम्परा का संरक्षण करते हुये आज के इस संगणक युग में आधुनिक वैज्ञानिक शैक्षणिक

परम्पराओं से समन्वय स्थापित करने का सार्थक प्रयास कर रहा है एवं संस्कृत स्नातकों को रोजगारपरक शिक्षण प्रदान करते हुये कुशल शिक्षकों के निर्माण में शिक्षाशास्त्र विभाग एवं वास्तुशास्त्र, ज्योतिष, पौरोहित्य से सतत संलग्न है। फलस्वरूप विश्वविद्यालय के छात्र एवं अनुसन्धाता देश एवं विदेश की प्रतिष्ठित संस्थाओं में अभूतपूर्व योगदान देने में सफलता प्राप्त कर रहे हैं। संस्कृत में निबद्ध विभिन्न शास्त्रों का अनुवाद किया जा रहा है तथा पारम्परिक संस्कृत वाङ्मय की अतिविशिष्ट शाखाओं के ज्ञान का प्रचार-प्रसार के लिए विद्यापीठ कटिबद्ध है।

संस्कृत के अध्यापकों के प्रशिक्षणार्थ साधनों का सुलभीकरण और संस्कृत शिक्षा से सम्बद्ध प्रासंगिक पक्षों पर शोध करवाना, संस्कृत में मौलिक ग्रन्थों, टीकाओं का अनुवाद करना, उनसे सम्बद्ध साहित्य का प्रकाशन, प्रकाशित एवं अप्रकाशित सामग्री का संवर्धन करना, पाण्डुलिपियों का संकलन, संरक्षण एवं प्रकाशन, राष्ट्रिय संस्कृत पुस्तकालय और संग्रहालय का निर्माण, संस्कृत पाण्डुलिपियों में प्रयुक्त लिपियों के प्रशिक्षण का प्रबन्धन, संस्कृत में आधुनिक तकनीकी साहित्य के साथ मौलिक संस्कृत ग्रन्थों के सार्थक निर्वचनों की दृष्टि से आधुनिक विषयों में शिक्षणार्थ साधनों की प्रस्तुति, संस्कृत, हिन्दी एवं संगणक विषयों में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का संचालन करना आदि विद्यापीठ द्वारा संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण हेतु किये गये कुछ प्रयास है। प्रकाशन विभाग द्वारा इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार एवं संरक्षण के निमित्त ग्रंथों का प्रकाशन किया गया है । प्रमुख ग्रंथ निम्न प्रकार से है -

1. दायभागः
2. जैमिनीयन्यायमाला
3. An Anthology of Sanskrit Classic in English Translation
4. श्रौतयज्ञविश्लेषणम्
5. सिद्धित्रयम्
6. अवयवतत्वचिन्तामणिदीधितविद्योतः

7. प्रत्यक्षागमप्रमाणोल्लास:
8. संशयवाद:
9. भारतीयदर्शने स्याद्वाद:
10. बृह्त्त्रयीपरिशीलनम् परिचयखण्ड:
11. बृह्त्त्रयीपरिशीलनम् सांस्कतिकखण्ड:
12. बृह्त्त्रयीपरिशीलनम काव्यशास्त्रीखण्ड:

विद्यापीठ द्वारा विशिष्ट व्याख्यानमालाओं का भी आयोजन किया जाता है यथा-

' श्री लाल बहादुर शास्त्री स्मारक व्याख्यानमाला

' आचार्य वाचस्पति उपाध्याय स्मारक व्याख्यानमाला

' आचार्य कुन्दकुन्द-स्मृति व्याख्यानमाला

' पं. कल्याणदत्त शर्मा स्मारक व्याख्यानमाला

' आचार्य पट्टाभिराम शास्त्री स्मारक व्याख्यानमाला

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फ्रांस के प्रख्यात प्राच्यविद्याविद् प्रो. पियैर् सिल्वाइन फिलियोजा जी ने ''वाच्छानाथकुट्टिकविविरचितं महिषशतकम्'' विषय पर विशिष्ट व्याख्यान दिया। इस प्रकार विद्यापीठ निरन्तर संस्कृत शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु प्रयासरत है, तथा योगदान दे रहा है।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की स्थापना अक्टूबर 1970 में सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के अन्तर्गत पंजीकृत एक स्वायत्त संगठन के रूप में पूरे देश में संस्कृत के समग्र विकास तथा प्रोन्नयन हेतु की गई संस्कृत भाषा के संरक्षण, प्रसार तथा विकास और इसके सभी पक्षों की शिक्षा हेतु 1956 मे भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्थापित 'संस्कृत आयोग' की विभिन्न संस्तुतियों के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु इसने एक केन्द्रीय अभिकरण के रूप में भूमिका निभाई है। संस्थान के

पारम्परिक संस्कृत शिक्षण के संवर्धन और सम्प्रसारण के क्षेत्र में योगदान, इसके श्रेष्ठ प्रकाशनों और इसके द्वारा 50,000 से भी अधिक दुर्लभ संस्कृत पाण्डुलिपियों के संरक्षण तथा प्रबन्धन को महत्व देते हुए भारत सरकार ने इसे 7 मई, 2002 से मानित विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान किया।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान मुख्यालय द्वारा ''संस्कृत विमर्श'' नामक अर्धवार्षिक तथा गंगानाथ झा परिसर द्वारा त्रैमासिक शोध पत्रिका और 'उशती', दृक् 'कथासरित्' तथा 'गंगानाथ झा शोध-पत्रिका' नामक साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाता है। इनके अलावा जम्मू परिसर से 'श्रीवैष्णवी', भोपालपरिसर से 'राष्ट्री तथा वार्षिक शोधपत्रिका 'शास्त्रमीमांसा' लखनऊ परिसर से 'गोमती' तथा ज्ञानायनी, जयपुर परिसर से 'जयन्ती', पुरी परिसर से 'शिक्षासुधा' व 'पौर्णमासी' गुरूवायूर परिसर से 'गुरूपवनेशकृपा' शृंगेरी परिसर से 'शारदा' गरलीपरिसर से 'हैमी' तथा मुम्बई परिसर से विद्यारश्मि शोध पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। मौलिक संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु विद्वानों एवं संस्थाओं को 80 प्रतिशत आर्थिक सहायता प्रदान करता है। प्रकाशकों के माध्यम से अप्राप्य तथा दुर्लभ संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता दी जाती है। संस्थान समय-समय पर विभिन्न ग्रन्थमालाओं का प्रकाशन करता है। अब तक संस्थान की निम्नलिखित ग्रन्थमालाएं आरम्भ की जा चुकी हैं –

* रजत जयन्ती ग्रन्थमाला
* स्वतन्त्र भारत स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थमाला
* संस्कृत वर्ष स्मृति ग्रन्थमाला
* पालि एवं प्राकृत अध्ययन ग्रन्थमाला
* लोकप्रिय ग्रन्थमाला/शास्त्रीय ग्रन्थमाला, दुर्लभ ग्रन्थों के पुनर्मुद्रण की ग्रन्थमाला

संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रहण एवं संरक्षण के कार्य में

गंगानाथ झा परिसर के पाण्डुलिपि-संग्रहालय में विभिन्न शास्त्रों से सम्बन्धित पचास हजार से भी अधिक पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं। जम्मू, पुरी तथा गुरूवायूर के परिसरों में भी दुर्लभ पाण्डुलिपियां हैं।

अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण केन्द्रों के माध्यम से क्रमिक संस्कृत स्वाध्याय सामग्री (दीक्षा पाठ्यक्रम) का संचालन किया जाता है। इसके अन्तर्गत समाज के विभिन्न वर्गों तथा आयु के संस्कृत तथा संस्कृतेतर अध्येताओं जैसे शिक्षक, व्यापारी, गृहणी, बालक, वृद्ध, डाक्टर, इंजीनियर इत्यादि नौकरी-पेशा लोग सोत्साह लाभ ले रहे हैं।

इलेक्ट्रानिक माध्यमों से संस्कृत कार्यक्रमों का प्रसारण

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान इग्नू के ज्ञानदर्शन के भाषा-मन्दाकिनी चैनल के माध्यम से प्रतिदिन संस्कृत कार्यक्रम प्रसारित करता है। डी. डी.इंडिया तथा डी.डी. भारती पर संस्कृत भाषा शिक्षण के कार्यक्रम का प्रसारण भी सप्ताह में तीन बार संस्थान द्वारा किया जाता है।

प्रवर्तित व्याख्यानमालाएं

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान द्वारा कई व्याख्यान मालाएं आयोजित की जा रही हैं। जिसमें प्रमुख हैं।

1. पं. गौरीनाथ शास्त्री स्मृति व्याख्यानमाला
2. डॉ. भीमराव अम्बेडकर स्मृति व्याख्यानमाला
3. पं. मण्डन मिश्र स्मृति व्याख्यानमाला
4. वी. राघवन् स्मृति व्याख्यानमाला
5. डॉ. राधाकृष्णन् स्मृति व्याख्यानमाला
6. पं. गोपीनाथ कविराज स्मृति व्याख्यानमाला

7. एम. एम. मधुसूदन ओझा स्मृति व्याख्यानमाला
8. डॉ. हीरालाल जैन स्मृति व्याख्यानमाला
9. पी.टी.कौरेकोशे स्मृति व्याख्यानमाला
10. राजीव गांधी अन्ताराष्ट्रिय व्याख्यानमाला

इस प्रकार राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण के लिए प्रयासरत है।

राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ तिरूपति

तिरूपति विद्यापीठ की स्थापना यू.जी.सी. एक्ट 1956 के तहत हुई जो संस्कृत शिक्षा, पारम्परिक शास्त्र तथा शिक्षण शास्त्र की उच्चस्तरीय संस्था है। संस्कृत आयोग (1957) की संस्तुति के आधार पर भारत सरकार द्वारा 1961 में तिरूपति में केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ तिरूपति सोसायटी के नाम से स्वायत्त संस्था के रूप में इसकी स्थापना हुई। 1987 में इसे मानित विश्वविद्यालय घोषित किया गया। सम्पूर्ण भारतवर्ष से छात्र पारम्परिक शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए यहां आते हैं । साथ ही संस्कृत स्नातकों को रोजगारपरक शिक्षण भी प्रदान किया जाता है।

तिरूपति विद्यापीठ में शोध कार्य को बहुत महत्व दिया जाता है तथा संस्कृत के संरक्षण तथा प्रसार हेतु विभिन्न गतिविधियां की जाती है यथा- आचार्य कक्षा पश्चात् शास्त्रीय अध्ययन में प्रशिक्षण, विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन, लिपि विकास प्रदर्शनी, प्राचीन लिपि अधिगम हेतु इलेक्ट्रानिक उपकरण, संस्कृत स्वअधिगम सामग्री पाण्डुलिपियों का डिजिट्लाइजेशन, संगणक तथा संस्कृत में परास्नातक पाठ्यक्रम आदि ।

विद्यापीठ के शोध तथा प्रकाशन विभाग द्वारा वेद, वेदान्त, आगम, ज्योतिष, न्याय, व्याकरण, साहित्य, शिक्षा, संस्कृत विज्ञान आदि पर 260 से अधिक मूल्यवान ग्रन्थ प्रकाशन किये गये हैं। संस्कृत में निहित समृद्ध वैज्ञानिक ज्ञान को ''संस्कृत विज्ञान वैभवम सीरीज'' के माध्यम से प्रचारित एवं प्रसारित किया जा रहा है ।

इस प्रकार संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण में विभिन्न संस्कृत विश्वविद्यालयों द्वारा योगदान दिया जा रहा है। यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहनी चाहिए जिससे प्राचीन तथा गौरवशाली संस्कृत भाषा की गरिमा को अक्षुण्ण रखा जा सके।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैदिक शिक्षण प्रणाली की प्रासंगिकता

प्रो. आर. पी. पाठक
शिक्षाशास्त्र विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
नई दिल्ली 110016

भारत की सम्पूर्ण सभ्यता, धर्म, दर्शन, रीति-रिवाज, आचार-विचार, संस्कृति, रहन-सहन आदि का मुख्य आधार वेद ही है। इसलिए प्राचीन भारतीय संस्कृति को वैदिक संस्कृति कहा जाता है। भारत की वैदिक परम्परा विश्व की प्राचीनतम परम्परा है जिसमें जीवन के सभी पक्षों का ज्ञान समाहित है। इसके शाश्वत मूल्य आज भी उसी रूप में विद्यमान हैं। वैदिक काल में 'शिक्षा' को न तो पुस्तकीय ज्ञान का पर्यायवाची माना गया और न जीविकोपार्जन का साधन। इसके विपरीत शिक्षा को एक प्रकाश माना गया। शिक्षा का ध्येय सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त होकर वास्तविक सत्य की खोज करना था जिससे मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सके। प्रारम्भ में माता-पिता अपनी सन्तान को शिक्षा देते थे। उपनयन संस्कार के बाद छात्र गृह त्यागकर गुरु के सान्निध्य में आता था तथा गुरुकुल में रहकर विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करता था।

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।[1]

विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर गुरु के आदर्श व्यवहार का अनुकरण करते थे और अपना रहन-सहन उन्नत करने का प्रयत्न करते थे-

उपनीयः गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च।।[2]

---

1. शतपथब्राह्मण 14.5

वैदिक कालीन शिक्षा की अवधारणा है कि–

"The knowledge originates and flutes from the lotus feet of Guru"

पाठ्यक्रम की सामग्री विद्यार्थी तक कैसे पहुँचाई जायें, यह शिक्षण विधि का विषय है। वेदों तथा उपनिषदों में भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का प्रयोग किया गया है, परन्तु सबसे प्रमुख विधि स्वयं अन्वेषण विधि है। वैदिक ऋषियों की यह धारणा है कि ज्ञान व्यक्ति स्वयं के प्रयास से ही प्राप्त कर सकता है। दूसरों के द्वारा प्रदत्त ज्ञान को शाब्दिक रूप से ही ग्रहण किया जा सकता है। आत्मसात् करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षार्थी स्वयं ज्ञान की अनुभूति करे। वैदिक कालीन शिक्षण विधि औपचारिक शिक्षा और व्याख्यान पर विशेष बल नहीं देती अपितु **'स्वाध्याय'** एवं **'अन्वेषण'** पर बल देती है एवं शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है–

"Education is a lifelong process"

वैदिक आचार्यो की मान्यता है कि ज्ञान का अर्जन स्वाध्याय के द्वारा ही किया जा सकता है। वैदिक कालीन शिक्षा में स्वाध्याय को एक महान यज्ञ कहा गया है। अध्यापक शिक्षार्थी का मार्गदर्शन कर सकता है परन्तु ज्ञान का आत्मीकरण तो शिक्षार्थी को स्वयं करना पड़ता है। वैदिक कालीन शिक्षा में प्रचलित कुछ शिक्षण विधियों का विवरण निम्नलिखित है–

1. पहेली विधि
2. सूत्र प्रणाली
3. अनुरूपता प्रणाली
4. कथा प्रणाली
5. व्युत्पत्ति प्रणाली
6. चर्चा प्रणाली
7. भाषण प्रणाली
8. संश्लेषण प्रणाली
9. अनुक्रमिक प्रणाली

1. पहेली प्रणाली - इस विधि को अत्यन्त गूढ़ तथ्यों की व्याख्या द्वारा भी समझना कठिन होता था। ऋग्वेद में कई मन्त्र इस प्रकार के हैं कि उनमें किसी साधारण तथ्य को भी सकारात्मक ढंग से

2 मनुस्मृति 2.69

व्यक्त किया गया है। इन मन्त्रों में बौद्धिक क्रीड़ा भी विशेष रूप से द्रष्टव्य है। पहेली यही है कि सुनने वाले को उसका नाम पता लगाना है। जैसे विष्णु के सम्बन्ध में कहा गया है–

त्रीण्येक उरूगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति।[3]

अर्थात् उनमें से विस्तृत कीर्ति वाला एक ऐसा देवता जिसने तीन पगों में सारे भुवनों पर अति क्रमण किया और जहां देवता आनन्दित होते हैं।

आज भी कक्षा में बुद्धि की जांच करने के लिए पहेली बूझो कार्यक्रम चलता है। बच्चे अपनी योग्यता, क्षमता के आधार पर सोचने के लिए मजबूर होते है और उत्तर देने की जिज्ञासा बलवती होती है।

2. सूत्रप्रणाली – ज्ञान जब अबाध गति से बढने लगता है तो उसे विस्तृत भाषा में याद रखना कठिन होता है। अतः ज्ञान को स्मृति में संचित बनाये रखने के लिए सूत्र प्रणाली का प्रयोग आवश्यक होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद का 'तत्त्वमसि' इसी प्रकार का सूत्र है। वर्तमान समय में व्याकरण, विज्ञान आदि विषयों में इस प्रणाली का महत्व अधिक बढ़ गया है।

3. अनुरूपता प्रणाली – अनेक बातें और तथ्य जो तर्क द्वारा नहीं समझाई जा सकती, उन्हें अनुरूपता प्रणालीद्वारा सरलता से समझाया जा सकता है। जैसे याज्ञवल्क्य आत्मा और परमात्मा के मध्य अन्तर स्पष्ट करने के लिए ढोल, मधु, नदी, शंख, समुद्र आदि सदृश प्रतीकों का प्रयोग करते थे। वर्तमान समय में इस विधि को 'सिम्बोलिक विधि ' के नाम से सम्बोधित करते हैं। गणित, ज्यामिति, सांख्यिकी, भाषाविज्ञान में इस विधि का प्रयोग किया जा रहा है।

4. कथा प्रणाली – नैतिक शिक्षा के लिए कथाओं का प्रयोग प्राचीन काल से होता रहा है सीधी-सादी भाषा में प्रत्यक्ष रूप से यदि उपदेश दिया जाय, तो वह छात्रों को प्रभावित नहीं करता, परन्तु कथा के माध्यम से उपदेश रुचिकर बनाया जा सकता है। जैसे केनोपनिषद् में

3. ऋग्वेद 8.29.7

इन्द्र तथा राक्षसों की कथा द्वारा मानवीय करुणा का उपदेश दिया गया है। वर्तमान समय में धार्मिक और आध्यात्मिक अनुष्ठानों में सामूहिक रूप से कथा प्रणाली का प्रयोग प्रचलित है लेकिन यह प्रणाली अधिकांशतः कथाकार पर निर्भर है।

5. व्युत्पत्ति प्रणाली - शब्दों का मूल उद्‌गम, उसमें निहित भावों को अभिव्यक्त करता है। किसी गूढ़ विचार की व्याख्या उसके लिए प्रयुक्त शब्द की व्युत्पत्ति द्वारा की जा सकती है। बृहदारण्यक उपनिषद् में पुरुष की व्युत्पत्ति 'पुरिषय' की गई है, जिसका तात्पर्य है कि हृदय दुर्ग में निवास करने वाला। इस प्रणाली का प्रयोग दर्शनशास्त्र और साहित्य में किया जाता है।

6. चर्चा प्रणाली - इस प्रणाली का प्रयोग वेदों में अधिक मिलता है। इसमें अध्यापक तथा विद्यार्थी एक स्थान पर बैठकर किसी समस्या विशेष पर विचार-विमर्श करते हैं। वर्तमान समय में इस प्रणाली को वार्तालाप विधि भी कहते हैं। इस विधि का प्रयोग सामाजिक अध्ययन शिक्षण, दर्शनशास्त्र, व्याकरण, भाषा साहित्य आदि विषयों में बहुतायत से किया जा रहा है। आधुनिक लोकतान्त्रिक प्रणालियों में इसका प्रयोग बढ़ गया है।

7. भाषा प्रणाली—भाषण प्रणाली को व्याख्यान विधि भी कहते हैं। उपनिषदों में विशेष रूप से तो प्रश्नोत्तर प्रणाली का प्रयोग हुआ है परन्तु कभी-कभी व्याख्यान प्रणाली का प्रयोग भी उचित माना जाता है। यम-नचिकेता संवाद में इसी प्रणाली का प्रयोग मिलता है। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा के शिक्षण में इस प्रणाली का बहुतायत प्रयोग हो रहा है।

8. संश्लेषण प्रणाली - चर्चा प्रणाली में विश्लेषण पर बल दिया जाता है, अर्थात् किसी समस्या के विभिन्न पक्षों पर पृथक्-पुथक् दृष्टियों से विचार किया जाता है। संश्लेषण प्रणाली उसकी पूरक प्रणाली है, जिसमें विश्लेषण द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को सार रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरणार्थ बृहदारण्यक में महाराज जनक द्वारा प्रस्तुत विभिन्न दृष्टिकोणों को समाहार रूप में याज्ञवल्क्य द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस

विधि का प्रयोग व्याकरण, विज्ञान आदि विषयों में किया जा रहा है।

9. अनुक्रमिक प्रणाली – इस प्रणाली में अधीत सामग्री को क्रमबद्ध प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। एक प्रश्न का उत्तर दूसरे प्रश्न को जन्म देता है और इस प्रकार प्रश्नोत्तर का क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि जिज्ञासु अन्तिम उत्तर तक नहीं पहुंच जाता। उदाहरणार्थ याज्ञवल्क्य जनक संवाद में इस प्रणाली का प्रयोग किया गया है।

वैदिक ऋषि अनश्वर, निरपेक्ष, सार्वभौमिक सत्ता से तादात्म्य रखना चाहते हैं। शिक्षा द्वारा व्यक्ति इस तादात्म्य को पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। किसी भी विधि को अपनाया जायें, उससे सीखने में सहायता मिलनी चाहिए। उपर्युक्त अध्यापन विधियों का प्रयोग हमें अपनी कक्षा-कक्ष शिक्षण में करने की आवश्यकता है। अपनी वर्तमान शिक्षण प्रणाली में कुछ इस तरह का बदलाव लाना होगा कि विद्यार्थी जीवन में शत प्रतिशत अंक लाना ही महत्वपूर्ण न हो। हमें प्रतिस्पर्धा पर आधारित शिक्षण प्रणाली में बदलाव करना होगा। इसके लिए हमें त्यागी, तपस्वी, समर्पण भाव वाले सबसे अधिक बुद्धिमान शिक्षको का चयन करना होगा जिससे वे अपना श्रेष्ठतम योगदान मनुष्यता के निर्माण में दे सकें।

वैदिक कालीन शिक्षा औपचारिक शिक्षण और व्याख्यान पर बल नहीं देती है बल्कि स्वाध्याय और स्वयं के अन्वेषण पर बल देती है। इससे प्रेरणा प्राप्त कर आज शिक्षकों को नई पीढी हेतु जीवन की खोज, जिज्ञासा की यात्राओं पर निकलने का माध्यम बनना होगा। उन्हें केवल अतीत के प्रश्नों को दोहरा देने वाला और उनका उत्तर हाथ में दे देने वाली भूमिका में बंध कर नहीं रहना होगा। वैदिक अध्यापन विधि को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। इन सभी शिक्षण विधियों का प्रयोग संस्कृत भाषा के उन्नयन में करने की आवश्यकता है। लुप्त प्राय: शिक्षण विधियों के अन्वेषण की आवश्यकता है। संस्कृत भाषा को शिक्षा पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से मान्यता मिलनी चाहिए। इस भाषा का शिक्षण इसलिए भी आवश्यक होना चाहिए क्योंकि यह अत्यन्त

समृद्धशाली व वैज्ञानिक भाषा है तथा अपने देश के स्वाभिमान का प्रतीक है। इस भाषा की महत्ता को ध्यान में रखते हुए वैदिक शिक्षण प्रणाली को अध्यापक को अपने जीवन में उतारने की आवश्यकता है। ऋषियों, मुनियों का चिन्तन, मनन और शिक्षण स्वप्रयोग पर आधारित होता था। वे पहले प्रयोग करते थे तब व्यवहार में अपनाकर सिद्धान्त निर्मित करते थे। लेकिन वर्तमान में स्वयं पहले सिद्धान्त निर्मित कर उसे व्यवहार में अपनाते हैं। वर्तमान समय में शिक्षा और शिक्षण का तालमेल बिगड गया है इसे ठीक करने की जरूरत है। वैदिक शिक्षण प्रणाली की वैज्ञानिकता वर्तमान शिक्षण प्रणाली में विशेष रूप से संस्कृत शिक्षण में प्रयोग की त्वरित आवश्यकता है साथ ही साथ संस्कृत शिक्षण को प्रभावकारी बनाने के लिए अध्यापकों को अद्यतन नवाचारों के साथ अपने को समुन्नत करना होगा तथी संस्कृत शिक्षा और शिक्षणशास्त्र की दशा-दिशा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक हो सकेगा।

---

1. शतपथब्राह्मण 14.5
2. मनुस्मृति 2.69
3. ऋग्वेद 8.29.7
4 बृहदारण्यक उपनिषद् 4.2
5 केनोपनिषद् 2.8
6 कठोपनिषद् 3.6

7 द्विवेदी कपिलदेव (1988) वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, वैदिक शोध संस्थान, ज्ञानपुर, वाराणसी, उ.प्र.
8 अल्तेकर ए. एस. (1944) एजूकेशन इन एनसियेंट इण्डिया
9 शर्मा राम शरण (1989) प्राचीन भारत, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली
10 मुखर्जी आर. के. (1940) एनसियेंट इण्डियन एजूकेशन
11 ओड एल. के. (1985) शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान
12 पाठक आर. पी. (2010)
प्राचीन भारतीय शिक्षा, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली
13 डा. एस. एन. (1960) एजूकेशन इन इण्डिया टुडे एण्ड टुमारो,
14 पाठक आर. पी. (2012) शिक्षा का दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, अटलांटिक प्रकाशन, नई दिल्ली
15 उपाध्याय बलदेव (1958) वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, उ. प्र.

संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक अनुसंधान के आयाम

डॉ. रचना वर्मा मोहन
सहआचार्या
शिक्षाशास्त्र विभाग,
श्री ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली

संस्कृत भाषा विश्व की समस्त भाषाओं में समृद्ध एवं प्राचीन है तथा भारत की अधिकांश भाषाओं की जननी है। हमारी संस्कृति की निधिरक्षिका संस्कृत भाषा के प्रति विशेष सम्मान का भाव होना चाहिए। वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, दर्शन, विज्ञान, व्याकरण, आयुर्वेद, काव्य, नाटक आदि जो अमूल्य वाङ्मय इस भाषा में समाहित है उसकी प्रशंसा विश्व के सभी विद्वानों ने की है। संस्कृत ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिसका मूल स्वरूप और व्याकरणीय ढांचा लगभग पांच हजार वर्षो से आज भी वैसा ही है। यह वस्तुतः बड़ी मनोरम वैज्ञानिक व सरल भाषा है। किन्तु वर्तमान संदर्भ में यह देखा जा रहा है इसका प्रचलन दिन पर दिन कम होता जा रहा है। लोग इसे पढ़ने तथा सीखने में कम रुचि ले रहे हैं। शिक्षा को केवल व्यवसाय प्राप्त करने का आधार समझा जाने लगा है। जिससे वास्तविक ज्ञान के महत्व को लोग भूल रहे हैं। जबकि संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है जो छात्रों में नैतिक गुणों का संचार करने, आत्म अनुशासन की शक्ति प्रदान करने तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने में अपना सहयोग प्रदान कर सकती है।

Dr. Radha Krishnan said, 'It can not be said that culture enshrined in Sanskrit language is irrelevant to modern conditions. The higher aspects of Vadic thought, Buddha, Mahavir and Ashoka are taught to us to build a classless society, where men and woman, what ever be their status, are treated alike.'

इसी सन्दर्भ में 1956 में डा. सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में संस्कृत आयोग का गठन किया गया जिसमें वर्तमान स्थिति के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार तथा उसकी लोकप्रियता स्थापित करने की अनिवार्यता पर बल दिया गया। 27 जनवरी 1914 को सत्यव्रत शास्त्री जी की अध्यक्षता में द्वितीय संस्कृत आयोग का गठन किया गया। भारतीय विद्वत परिषद् जो एक निजी ईमेल ग्रुप है उसके 2000 सदस्य जिनमें कुलपति, आचार्य, विद्वान् तथा छात्र सम्मलित हैं। ये सम्पूर्ण देश से संस्कृत शिक्षा के विकास हेतु आयोग का वांछित सूचनाएं प्रदान कर रहे हैं। प्रथम आयोग के प्रतिवेदन में पारम्परिक तथा आधुनिक दोनों ही संस्कृत के पठन-पाठन की सारणियों को सुदृढ़ बनाने के अनेकानेक मार्गों का केवल निर्देश ही नहीं किया गया, अपितु संस्कृत शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण इत्यादि पर भी सुझाव दिये गये हैं।

संस्कृत अनुसंधान के सन्दर्भ में भी आयोग ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये –

- संस्कृत पाठशालाओं से निकले हुए छात्रों को भी अन्य विश्वविद्यालयों के छात्रों की तरह शोध सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान की जायें।
- शोधकार्य के उन्नयन हेतु विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाये।
- संस्कृत तथा उससे सम्बद्ध विषयों पर लेख प्रकाशित करने वाली पत्र-पत्रिकाओं के स्तर उन्नयन पर ध्यान दिया जाये।
- उच्चस्तरीय शोध कार्य को समुन्नत करने के लिए साहित्य संस्थान द्वारा अन्य पारितोषकों के समान संस्कृत एवं भारतीय ज्ञान सम्बन्धी कार्य के लिए भी पारितोषिकों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

इस प्रकार संस्कृत शिक्षा के सशक्तिकरण में अनुसंधान की महत्वपूर्ण भूमिका पर आयोग द्वारा बल दिया गया। वर्तमान संदर्भ में भी संस्कृत

से सम्बन्धित अध्ययनों की नितान्त आवश्यकता है। खासतौर पर संस्कृत विश्वविद्यालयों द्वारा इस पक्ष पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। अनुसंधान एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य मौलिक समस्याओं का अध्ययन कर सत्य की नवीनतम एंव समसामयिक व्याख्या करना है। वास्तव में अनुसंधान का उद्देश्य कार्य को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करना तथा वास्तविक तथ्यों की खोज करना है। इसके द्वारा प्राप्त नियम, तथ्य एवं सिद्धांत अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय होते हैं। संस्कृत शिक्षा को समृद्ध बनाने के लिए शोध के क्षेत्र में अपार सम्भावनायें हैं। जिन पर ध्यान देने की नितान्त आवश्यकता है। विभिन्न प्रकार की शोध विधियों के आधार पर संस्कृत साहित्य में निहित विभिन्न विषयों पर शोधकार्य किये जाने चाहिए जिससे हमारी गौरवशाली संस्कृति तथा उसमें निहित मूल्यों की वर्तमान समय के उपादेयता सिद्ध की जा सके। इस सन्दर्भ में गुणात्मक शोध की महती उपयोगिता है। इसके अन्तर्गत इस पत्र में पांच शोध विधियों के सम्मिलित किया गया है।

1) अन्तर्विद्यापदक उपागम

इसके अन्तर्गत अन्तर्विधापरक अनुसंधान पर बल दिया जाना चाहिए। इसमें शिक्षा से जुड़ी समस्याओं का शिक्षा के अतिरिक्त अन्य विद्याओं की सहायता से अध्ययन करने की पहल की जा सकती है। जैसे ज्योतिष तथा मनोविज्ञान आधारित समस्याऐं, शैक्षिक तकनीकी तथा संस्कृत व्याकरण पढ़ाने की विधियां आदि पर अन्तर्विद्यापरक शोध किये जा सकते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में निहित मनोवैज्ञानिक तथ्यों तथा मूल्यों की वर्तमान समय में पढ़ाये जाने वाले पाश्चात्य मनोविज्ञान से तुलना की जा सकती है।

2) दार्शनिक विधि

दार्शनिक विधि का प्रयोग महान चिन्तकों के शैक्षिक विचारों, संगठनों एवं आन्दोलनों के अध्ययन के संदर्भ में किया जाता है। इसके अन्तर्गत विचारों या सम्प्रत्ययों का विश्लेषण, समीक्षात्मक आकलन एवं चिंतक के विचार परिप्रेक्ष्य को विज्ञापित करने वाले पक्ष का निर्धारण मुख्य उद्देश्य होता है। इसमें किसी व्यक्ति, समुदाय, राष्ट्र या समूह के

चिन्तन में किसी दिये समय पर पाये जाने वाले विचारों की व्यवस्था या प्रभावी धारणाओं या विचारों का विश्लेषण किया जाता है तथा यह प्रदर्शित किया जाता है कि वे उनके जीवन, उनकी उपलब्धियों, व्यवहारों तथा साहित्य में किस प्रकार प्रतिबिम्बित है या किसी महान चिन्तक या समूह विशेष के व्यक्तियों के ऐसे विचारों का समीक्षात्मक मूल्यांकन किया जाता है जो उनके व्यक्तिगत या आम अभिव्यक्तियों एवं चर्चाओं, जीवन एवं उपलब्धियों में प्रदर्शित होते हैं। विभिन्न चिन्तकों यथा - अरविन्द, विवेकान्द, टैगोर, गांधी, कृष्णमूर्ति, शंकाराचार्य पर किये गये शैक्षिक शोध इस विधि के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इन शोधों द्वारा सम्बन्धित चिन्तकों के शैक्षिक विचारों, उनके शैक्षिक मुद्दों पर पाये जाने वाले दृष्टिकोणों तथा उन परिप्रेक्ष्यों में शिक्षा की प्रणाली, शिक्षण विधि तथा शैक्षिक मूल्यांकन आदि की अवधारणाओं का गहन अध्ययन किया जा सकता है। शैक्षिक विचारों पर विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषणात्मक ढंग से प्रकाश डाला जा सकता है जिससे इस समय की शिक्षा की मुख्य संकल्पनाओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके जीवन के साथ जोड़ा जा सके।

3) ऐतिहासिक विधि

इस विधि का मुख्य उद्देश्य अतीत की जानकारी के आधार पर वर्तमान को समझना एवं भविष्य के लिए सतर्क करना है। ऐतिहासिक अनुसंधान के परिणामों से न केवल पुरातन घटनाओं की जानकारी मिलती है वरन् वर्तमान में किये जा रहे चिन्तन को एक दिशा व दृष्टि मिलती है तथा भावी नीति निर्धारण में भी महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। वस्तुतः ऐतिहासिक अनुसंधान अतीत की वास्तविकताओं को तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में सामने लाकर वर्तमान व भविष्य की क्रियाओं व प्रवृतियों के आधार का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक अनुसंधानों में प्रयुक्त होने वाली सामग्री अतीत के घटनाक्रमों, व्यक्तियों, संस्थाओं अथवा प्रक्रियाओं आदि से सम्बन्धित होती है। इसका अनुसंधान विषय वर्तमान न होकर पुरातन अतीत होता है जो उस समय की उपलब्ध सामग्री पर आधारित होता है। संस्कृत में उपलब्ध पाण्डुलिपियां

तथा शिलालेख इस प्रकार के अध्ययन में प्रमुख स्रोत के रूप में प्रयोग में लाये जा सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में किये जाने वाले अधिकांश ऐतिहासिक शोधों के तहत इन्हीं स्रोतों से आधार सामग्री ली जाती है।

4) विषय वस्तु विश्लेषण

इसे पाठ्यवस्तु विश्लेषण या अभिलेख विश्लेषण भी कहते हैं। इसमें लिखित व मौखिक सम्प्रेषण से प्राप्त आधार सामग्री का विश्लेषण करके वस्तुनिष्ठ ढंग से सूचनाओं की विवेचना की जाती है। विषय वस्तु विश्लेषण द्वारा किसी प्रस्तुत सामग्री जैसे पाठ्य पुस्तक या लेख के कठिनाई स्तर को जानना, किसी प्रस्तुति में पक्षपात, विद्वेष या प्रचार का मूल्यांकन करना, किसी कार्य की त्रुटियों व विसंगतियों का विश्लेषण करना, किसी लेखक की साहित्यिक शैली, विश्वासों दृष्टिकोणों व विचारों को पहचानना आदि किया जाता है। संस्कृत विषय में पढ़ाई जा रही विभिन्न पुस्तकों की विषयवस्तु का विश्लेषण करके उपर्युक्त वर्णित सभी पक्षों पर विचार किया जा सकता है। जिससे पुस्तक की संस्कृत शिक्षा के विकास के सन्दर्भ में उपादेयता तथा महता सिद्ध हो सके। विषय वस्तु का विश्लेषण करते समय अनुसंधानकर्ता को कभी भी परिलक्षित सूचनाओं को विश्वसनीय नहीं मानना चाहिए वरन् आन्तरिक व बाह्य समालोचना के द्वारा उनकी प्रमाणिकता व विश्वसनीयता की जांच करनी चाहिए।

5) क्रियात्मक अनुसंधान

वर्तमान संदर्भ में संस्कृत शिक्षा के विकास में यह अत्यन्त उपयोगी विधि है। इसके द्वारा कक्षा शिक्षण से जुड़ी अनेक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अधययन किया जाता है ताकि शिक्षण में सुधार व परिवर्तन किया जा सके। इसका उद्देश्य समस्या पर तत्काल कार्य करते हुए निष्कर्ष निकाल कर परिस्थिति में सुधार करना है। क्रियात्मक अनुसंधान व्यस्थित खोज की ऐसी प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य व्यक्ति या समूह क्रियाओं में रचनात्मक सुधार तथा विकास लाना है।

संस्कृत शिक्षण में क्रियात्मक अनुसंधान की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। हमारे यहां विद्यालयों में कक्षा छः से संस्कृत शिक्षा प्रारम्भ होती है। छात्रों में वर्तनी, मात्रा, उच्चारण आदि की त्रुटियां पायी जाती हैं जिसके कारण छात्र संस्कृत के वाचन तथा लेखन में अत्यधिक कठिनाई का अनुभव करते हैं तथा रुचि लेना बंद कर देते हैं। छात्रों की इन त्रुटियों को दूर करने में क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा बहुत सहायता मिल सकती है। छात्रों की संस्कृत वाचन, तथा लेखन सम्बंधी कठिनाईयों को दूर करने हेतु उनके कारणों का पता लगाया जा सकता है। जो निम्न प्रकार से हो सकते हैं।

१. अशुद्ध उच्चारण- उच्चारण दोष के कारण वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियां यथा - श तथा ष के स्थान पर स का उच्चारण। कृषकः शिक्षकः पाठशाला कृसकः सिक्षकः तथा पाठसाला हो जााता है।

२. लिपि का अपूर्ण ज्ञान- हलन्त विसर्ग में त्रुटि करना, ड तथा ड़ में अन्तर न पता होना। ताडयति-ताड़यति।

३. अनुस्वार तथा अनुनासिक का अपूर्ण ज्ञान- खण्डम्/खंडम्, दिनांक/ दिनाङ्क। संस्कृत भाषा में ङ् ञ ण् न् म् अनुनासिक अपने-अपने वर्ग के वर्णो के साथ ही आते हैं। और इसी रूप में लिखे जाते हैं। हिन्दी में ङ् ञ् ण् इन अनुनासिकों का स्थान (ं) ने ले लिया है तथा छात्र इन्हीं के आधार पर गलतियां करते हैं।

४. संयुक्त व्यंजनों का अपूर्ण ज्ञान -

५. अभ्यास का अभाव- अशुद्ध बोलने पर सुधार न कराया जाना जिससे अज्ञानतावश त्रुटियों का बना रहना। ब्राह्मण/ब्राम्हण।

६. असावधानी के कारण वर्तनी दोष- कभी-कभी शीघ्रता के कारण भी छात्र अनेक त्रुटियां करते हैं अध्ययनम्/अध्यनम्, वर्णनात्मक/ वर्णात्मक आदि।

इस प्रकार वर्तनी सम्बंधी विभिन्न प्रकार की अशुद्धियों का परीक्षा के आधार पर प्रदत्त संकलन किया जा सकता है। तत्पश्चात् प्रदत्तों का विश्लेषण करके समाधान हेतु सुझाव दिये जा सकते हैं। यथा -

- शुद्धोच्चारण एवं शुद्ध लेखन का अभ्यास प्रतिदिन कराना।
- कक्षा में अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन करते समय गति, यति, वर्तनी, स्वराघात, बलाघात आदि का ध्यान रखना।
- वर्णो एवं पदों को शुद्ध रूप में पढ़ना।
- संधियुक्त व समासयुक्त पदों की सूची बनाना।
- वर्तनी की दृष्टि से क्लिष्ट एवं भ्रामक स्वरों व व्यजंनो की सूची बनाना।
- सहयोगियों की सहायता लेना।

इन कार्यो को पूरा करने के लिए संस्कृत व्याकरण की पुस्तकों, भाषा विज्ञान की पुस्तकों, दृश्य/श्रव्य सामग्री, टेपरिकार्डर, पाठ्य पुस्तकों तथा अभ्यासपुस्तिका आदि की सहायता ली जा सकती है।

उक्त सभी क्रियाओं को निश्चित् अवधि में प्रयोग करके पुनः छात्रों को विशिष्ट वर्ण, पद वाक्य अथवा श्लोक का उच्चारण करवाकर या लिखवाकर देखा जा सकता है कि वर्तनी सम्बंधी अशुद्धियां कम हुई या नहीं। इस प्रकार जब किसी खास परिस्थिति में पाई जाने वाली समस्या विशेष के प्रति खास प्रकार का ज्ञान अपेक्षित हो तब क्रियात्मक अनुसंधान का प्रयोग उपयुक्त है तथा संस्कृत विषय में छात्रों की रुचि बढ़ाने हेतु यह अत्यन्त उपयोगी विधि हो सकती है।

अन्त में निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण हेतु गुणात्मक शोध अत्यन्त आवश्यक है। इस क्षेत्र में प्रासंगिक, खोज-परक तथा सुझावात्मक अनुसंधान कार्य किया जाना एक बड़ी चुनौती है तथा इसे कुशलतापूर्वक, कर्मठता, तथा क्रमबद्धता से करके संस्कृत की गौरवशाली परम्परा को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौल लोकेश, (2008), शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. गुप्ता एस. पी. (2013), अनुसंधान संदर्शिका, सम्प्रत्यय, कार्यविधि एवं प्रविधि, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

3. पाण्डेय के. पी. (2006) शैक्षिक अनुसंधान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
4. मित्तल सन्तोष (2010), संस्कृत शिक्षण, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
5. शर्मा रीटा एवं जैन अमिता (2005), संस्कृत शिक्षण, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।
6. Best J.W. & Kahn J.V. (2010), Research in Education, PHI Learning Pvt. Ltd. New Delhi.
7. Creswell J.W. (2012), Educational Research, PHI Learning Pvt. Ltd. New Delhi.

वैश्विक सन्दर्भ में संस्कृत शिक्षा का सशक्तिकरण–व्यावहारिक अनुप्रयोग

विमलेश शर्मा, सहायक आचार्या
शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रियसंस्कृत विद्यापीठ,
मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110016

आचार्य महाकवि दण्डी के शब्दों में–

संस्कृतम् नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीवार्णभारती।।

देववाणी, देवभाषा और सुभारती जैसे नामों से अलंकृत संस्कृत भाषा की अक्षुण्ण धारा वैदिक काल से लेकर आज तक प्रवाहित हो रही है जिसमें भारतीयों को मनन्, चिन्तन, गवेषणा एवम् अनुभूति समन्वित है। संस्कृत भाषा में रचित समस्त वाङ्मय–वेद, उपनिषद्, पुराण, आरण्यक, स्मृतियाँ, इतिहास, रामायण, भगवद्गीता, सांख्ययोग, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, बौद्ध, जैन-दर्शन, व्याकरण, गणित, रसायनशास्त्र, पुराणइतिहास, चिकित्साविज्ञान, भाषाविज्ञान, खगोलशास्त्र, विधिशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र काव्यशास्त्र, प्राणीविज्ञान, भौतिकविज्ञान, परमाणुविज्ञान, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, कला, भूगोल, आयुर्वेद, योग, शिल्प, वास्तुशास्त्र आदिसमुद्र की तरह विशाल एवम् बहुमुखी हैं। इसमें न केवल ईश्वर प्रधान रचनाओं अथवा आध्यात्मिक एवम् भौतिक विद्याओं का विस्तार है अपितु वैज्ञानिक एवम् तकनीकी ज्ञान के साथ व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी आयामों का भी अटूट भण्डार विद्यमान है। जो समग्र मानवता का पथ-प्रदर्शन करने वाला, आपात्कालीन संकटों की स्थिति से बचाकर सन्मार्ग की ओर ले जाने की असीम क्षमता रखता है।

समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा स्वयं में सशक्त है प्रत्येक प्रादेशिक भाषाएं–तमिल, तेलगु और मलयालम इसके समृद्ध साहित्य में

स्वयं को सम्पन्न, सम्बद्धित एवम् अनुप्राणित कर रही हैं। इतना ही नहीं इसके वैदिक एवम् लौकिक साहित्य ने एशिया महाद्वीप के विभिन्न देशों की भाषाओं, संस्कृतियों, सभ्यताओं तथा परम्पराओं को प्रभावित किया है तथा अमेरिका, रूस, इण्डोनेशिया, जर्मनी, कनाडा की भाषाओं पर भी अमिट छाप छोड़ी है तथा संस्कृत भाषायी शिक्षा का अध्ययन-अध्यापन कार्य रुचिपूर्वक किया जा रहा है।

वैदिक काल से लेकर और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी निर्मित आयोगों–श्री राधाकृष्णन 48-49, श्री दौलतराम कोठारी 1964-66, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2002, 2003, 2005, 2007 के अनुसार संस्कृत शिक्षा का उद्देश्य–इहलोक में सर्वांगीण विकास/अभ्युदय एवम् परलोक में परम निःश्रेयास की प्राप्ति से है। इसी उद्देश्य के आधार पर वैदिक कालीन ऋषियों ने चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रसथ तथा सन्यास की सुन्दर व्यवस्था के अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की विलक्षण प्रतीति जिसका वर्णन महाभारत में किया गया है वह अन्यत्र भी है और जो इसमें है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। तथा जो मानवजन का बौद्धिक विकास और उच्च कोटि का सन्तुलन हेतु अवसर प्रदान करता है।

प्रस्तुत पेपर–वैश्विक सन्दर्भ में संस्कृत शिक्षा को व्यावहारिक रूप देने की अर्थात् सशक्तिकरण के मानदण्ड निर्धारित करने की जिससे संस्कृत शिक्षा को समयानुकूल जन-जन तक पहुँचाया जा सके।

1. सूचना-संचार एवं तकनीकी के माध्यम से

सूचना-प्रौद्योगिकी के युग में टेलीविजन, इन्टरनेट, समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं के माध्यम द्वारा यदि संस्कृत शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना चाहते हैं तो टेलीविजन कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी निभानी होगी। इन्टरनेट द्वारा संस्कृत शिक्षा की उपयोगिता को लेकर स्वयं की सत्ता स्थापित करनी होगी समाचार पत्रों एवम पत्रिकाओं के माध्यम से संस्कृत शिक्षा की वैज्ञानिकता, दार्शनिकता, मनोविज्ञान को प्रकट करना होगा। social sites के माध्यम से भी व्यक्तियों से जुड़ने का प्रयास एवम्

संस्कृत शिक्षा के विषय में बताने का कार्य किया जाये सम्भवत: अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे।

2. संस्कृत शिक्षा का प्रायोगिक रूप द्वारा

यह कहा जाता है कि संस्कृत भाषा संगणक के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। हमें इस ओर जोर देना होगा कि संस्कृत भाषा को किस प्रकार सरल बनाकर कार्यान्वित रूप में जनता तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए जैसे संस्कृत भाषा में निहित भाषाविज्ञान, व्याकरण, गणित, संगीत, मनोविज्ञान, दर्शन आदि विषयों को क्रियान्वित कर दिखा सकते हैं। क्योंकि मनुष्य का स्वभाव है कि वह कहने की अपेक्षा करके सीखने में अधिक विश्वास करता है और जब हम प्रयोग करके बतायेंगे कि संस्कृत भाषा में इस प्रकार का विज्ञान निहित है तो व्यक्तियों का इस ओर आकर्षण बढ़ेगा

3. सास्कृतिक कार्यक्रमों एवं शिविरों के माध्यम से–

प्रत्येक व्यक्ति का मनोरंजन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण होता है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों को देखने की, सुनने की इच्छा भी होती है। अत: इन कार्यक्रमों द्वारा मानव हृदय को काफी हद तक परिवर्तित किया जा सकता है। संस्कृत भाषा को जनलोकप्रिय बनाने हेतु, विभिन्न प्रकार के नृत्यों, नाटकों, नुक्कड़ नाटकों आदि द्वारा जनता के दृष्टिकोण में बदलाव लाया जा सकता है। वर्तमान की बदलती सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए संस्कृत शिक्षा के सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित नाटकों के माध्यम से जनता को सन्देश दिया जा सकता है इससे जनता को संस्कृत भाषा में रचित ग्रन्थों को पढ़ने की रुचि जाग्रत होगी।

विभिन्न प्रकार के शिविरों के माध्यम से भी संस्कृत शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाया जा सकता है। ये शिविर साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक रूप में आयोजित करवाये जायें तथा इन शिविरों में संस्कृत शिक्षा की उपयोगिता, व्याख्यान, संभाषण, वाचन अभ्यास, लेखन अभ्यास भी कराया जाय। संस्कृत शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु शिविर रूप में संस्कृत भारती संवादशाला तथा राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा सराहनीय कार्य

किया जा रहा है। लेकिन अभी इस कार्य को आगे बढ़ाने का आवश्यकता है, जिससे संस्कृत भाषा को जन-जन तक पहुँचाया जा सके।

4. प्रतियोगिताओं एवं दानवृत्तियों के माध्यम से–

प्रतियोगिताओं का आयोजन संभवतया छात्रों में संस्कृत शिक्षा के प्रति रुचि को विकसित कर सकता है। प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय स्तर पर प्रतियोगिताओं का आयोजन न केवल संस्कृत छात्रों के लिए अपितु अन्य विषयों के छात्रों के लिए भी किया जाना चाहिए तथा प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कार भी दिया जाना चाहिए।

संस्कृत अध्ययन करने वाले छात्रों को विद्यालय स्तर पर विश्वविद्यालय स्तर पर छात्रवृत्तियों द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ये छात्रवृत्तियाँ सरकार द्वारा, संस्थाओं द्वारा या विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। उच्च स्तर पर छात्रों को गुणवत्तापरक शोधकार्य हेतु छात्रवृत्ति दी जाय जिससे छात्रों की संस्कृत शिक्षा के प्रति रुचि बढ़ेगी।

5. संस्कृत भाषा का अन्य विषयों के सम्बन्ध द्वारा सशक्तिकरण–

संस्कृत भाषा प्राचीन भाषा है वर्तमान स्वरूप के अनुसार बदलाव लाकर इस भाषा को नवीन विषयों के साथ सम्बन्धित किया जाय तो अवश्य ही इसकी ओर सभी का झुकाव होगा। क्योंकि आज का प्रत्येक व्यक्ति नवीनता चाहता है वह उन वस्तुओं से स्वयं को अलग कर लेता है जहाँ नवीनता का अभाव हो नवीनता तो मानव के स्वभाव की वृत्ति है कि उसका ध्यान प्राचीन की अपेक्षा नई वस्तु अधिक आकर्षित करती है अतः संस्कृत भाषा को नवीनता के आधार पर उन विषयों के साथ जोड़ना होगा जो आज समय की माँग के अनुरूप उच्च स्तर पर स्थान निर्धारित किये हुए है। तथा इस तरह का अदलाव विभिन्न क्षेत्रों में किया जा सकता है जो इस प्रकार से है–

संस्कृत और शैक्षिक प्रबन्धन–

अधिकांश छात्र छात्राओं द्वारा शैक्षिक प्रबन्धन का क्षेत्र अत्यधिक पसन्द कियाजाता है क्योंकि प्रबन्धन की शिक्षा प्राप्त कर छात्रों को

देशीय, बहुद्देशीय, विदेशीय कम्पनियों में मोटे पैकेजज प्राप्त हो रहे हैं। जिस छात्र को अपने कार्यों में जितनी दक्षता प्राप्त है उसे उतना ही भारी भरकम पैकेज प्राप्त होता है। क्योंकि वर्तमान की शिक्षा व्यवसायिक हो रही है।

संस्कृत भाषा में रचित अनेकों ग्रन्थ भगवद्गीता, रामायण, शिवपुराण जो केवल धर्म की ही व्याख्या नहीं करते अपितु प्रबन्धन की भी शिक्षा देते हैं। उदाहरण शिव-परिवार, प्रबन्धन का उत्तम स्त्रोत है जो डेमिंग तथा जुरान के सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की दार्शनिक व्याख्या करते हैं।

आवश्यकता है कि बृहद संस्थानों IMM, IIPM (प्रबन्धन के) से जुड़ने की तथा असंख्य ग्रन्थों में प्रबनधन शिक्षा रूपी अमूल्य तथ्यों को खोजने की जोड़ने की (पाठ्यक्रम में) जिससे छात्रों में प्राचीन एवम् नीवन परिपेक्ष्य के प्रबन्धन को जानने व पहचानने की क्षमता उत्पन्न होगी संस्कृत भाषा रचित ग्रन्थों के प्रति रुचि उत्पन्न होगी संस्कृति का भी संरक्षण होगा। संस्कृत शिक्षा का प्रचार-प्रसार तथा व्यावसायीकरण भी हो छात्रों की दक्षतानुसार पैकेजज भी प्राप्त होंगे। वर्तमान में कतिपय प्रबन्धन संस्थानों में भगवद्गीता को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है।

संस्कृत और इतिहास

इतिहास ऐसा विषय है जहाँ संस्कृत का महत्त्वपूर्ण स्थान है संस्कृत भाषा में रचित अनेकों ग्रन्थ-वैदिक एवम् लौकिक में प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, राजव्यवस्था का ज्ञान भरा हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों के पठन-पाठन द्वारा ही छात्र स्वयं के गौरवशाली अतीत को जान पायेंगे इससे संस्कृत भाषा अधिक सशक्त हो पायेगी।

संस्कृत और भूगोल, खगोल

पृथ्वी के विषय में समग्र जानकारियाँ भूगोल के अन्तर्गत आती हैं तथा तारों का विशेष ज्ञान खगोलशास्त्र से ही हो जाता है। संस्कृत भाषा में निबद्ध अनेकों ग्रन्थ ऐसे हैं जो पृथिवी की संरचना एवम् तारों का सटीक ज्ञान कराते हैं जैसे आर्यभट्टीयम (आर्यभट्ट) और आचार्य लगध द्वारा प्रणीत ज्योतिषशास्त्र। अतः इन शास्त्रों, ग्रन्थों को वर्तमान

पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाय जिससे इन ग्रन्थों का संरक्षण भी होगा और छात्र प्राचीन विज्ञान की उत्कृष्टता से परिचित भी हो सकेंगे। सायणाचार्य ने वेदभाष्य के समय प्रकाश की गति के विषय में ऐसे सूत्र की चर्चा की है जो उस समय भी लोकप्रिय था और इस सूत्र में निहित मान्यताओं की सच्चाई समकालीन विज्ञान भी स्वीकार करता है।

संस्कृत और चिकित्सा, योग

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को स्वस्थ रखना चाहता है वह चिकित्सा-आयुर्वेद, योग द्वारा स्वस्थ रखता है। वर्तमान में आयुर्वेद एवम् योग का क्षेत्र दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अनेकों छात्रों द्वारा आयुर्वेद, योग को विषय के रूप में स्वीकारा जा रहा है। संस्कृत भाषा में वर्णित सुश्रुत, चरक आदि का चिकित्साशास्त्र प्रख्यात है, साथ ही साथ पतञ्जलि विरचित योगसूत्र प्रसद्धि है योगसूत्र योग की महत्ता को स्वीकार करता है जोकि असंख्य व्यक्तियों की जीविकोपार्जन का साधन भी है। [वर्तमान में आयुष अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान आल इण्डिया मेडिकल हास्पिटल, गौतमपुरी में बन रहा है।] इस तनावयुक्त जिन्दगी में आयुर्वेद, योग पद्धति अधिक कारगर सिद्ध हुई है। माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में इनको सम्मिलित कर छात्रों की रुचि को विकसित किया जा सकता है। इससे छात्र प्राचीन चिकित्सा पद्धति एवम् योग पद्धति को जान सकेंगे।

राजनीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र

महाभारत में वर्णित राजनीतिशास्त्र प्राख्यात है आचार्य चाणक्य रचित चाणक्य नीति, शुक्राचार्य द्वारा प्रणीत शुक्रनीति तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र अदि नीति ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसके साथ ही पण्डित विष्णुशर्मा द्वारा रचित 'पंचतंत्र' आचार्य नारायण पंडित द्वारा प्रणीत 'हितोपदेश' दोनों ग्रन्थ राजनीति, नीति, मूल्य, सद्भाव आदि की व्याख्या करते हैं कि किस प्रकार पशु पक्षियों रूपी पात्रों द्वारा मूल्यों से युक्त राजनीति की शिक्षा कहानियों के माध्यम से दी जा सकती है स्वयं में एक अनूठा प्रयास था। वर्तमान पाठ्यक्रम में मिलाकर छात्र प्राचीन राजनीति, नीतिशास्त्र एवम् अर्थशास्त्र से परिचय प्राप्त कर सकेंगे तथा प्राचीन एवम् नवीन ज्ञान का समन्वय कर समय के अनुकूल उपयोग कर पायेंगे।

संस्कृत और मनोविज्ञान, संगीतशास्त्र

मनोविज्ञान का क्षेत्र दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। मानव, पशु आदि के व्यवहार का, मन एवम् आत्मा का समुचित ज्ञान प्राप्त करने में मनोविज्ञान प्रयासरत है। प्राचीन वैदिक मनोविज्ञान–वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उपनषिद–ब्रह्म, आत्मा, गीता-कर्म, अकर्म की मनोवैज्ञानिक तंत्र-शैव, अशैव, मूलाधार चक्र वर्णन, योग–ध्यान, चेतना, अनुभूति, संगीत–श्लोक उच्चारण, पंचकोश–अन्नमय कोश, जनमय, मनोमय, विज्ञानमय, प्राणमय आनन्दमय तथा आध्यात्मिक मनोविज्ञान की वैज्ञानिकता को आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के व्यवहारों को समझने हेतु उचित हो सकता है।

प्राचीन भारत का संगीत विज्ञान की विशिष्टता को प्राप्त किये हैं सामवेद से लेकर संगीत रत्नाकर आदि संगीत शास्त्र के विशुद्ध वैज्ञानिक ग्रन्थ है। जिनका संगीत के छात्रों द्वारा अध्ययन किया जाना चाहिए प्राचीन एवम् नवीन संगीत में तुलना कर सकेंगे तथा ये ग्रन्थ सदैव जीवन्त रहें संस्कृत एवम् संस्कृति का संरक्षण होकर सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलें।

संस्कृत और गणित

भारतीय गणित में जिस बिन्दु अंकन पद्धति का विकास किया था वह महत्त्वपूर्ण है। आज जिसे पाइथोगोरस सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है वह वास्तव में शुल्व सूत्र में निरूपित सिद्धान्त का ही विकास है। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य ने करणीचिह्न बीजगणितीय प्रतीक और नकारात्मक मात्रा की अवधारणा, क्रम परिवर्तन और दो का वर्गमूल प्राप्त करने के नियम खोजकर आौर उसकी गणना करके विज्ञान क्षेत्र में योगदान दिया है। यह कार्य संस्कृत विद्वानों के द्वारा अन्वेषणों और आविष्कारों के द्वारा किया गया है। माध्यमिक उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम में वैदिक गणित का समावेश कर छात्रों की तर्क, चिन्तन एवम् विश्लेषणात्मक क्षमता में वृद्धि करेगा।

इस प्रकार अनेकों ग्रन्थ हैं जो संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं तथा जिनका अनेकों विषय से सम्बन्ध भी है। इनका अध्ययन-अध्यापन कर

संस्कृत भाषा को सशक्त किया जा सकता है। क्योंकि आवश्यकता है कि पूर्व प्राथमिक स्तर पर छात्र संस्कृत शिक्षा के अन्तर्गत भाषायी कौशलों/क्षमताओं से परिचय प्राप्त करें। प्राथमिक एवम् माध्यमिक स्तर पर व्याकरण नियम, सिद्धान्तों को जान कर प्रयोग कर सकें। और उच्चस्तर पर शिक्षा प्राप्त कर शोध के द्वारा नये-नये तथ्यों की खोज एवम् नियम सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर सार्थक निष्कर्ष प्राप्त करें। संस्कृत ग्रन्थों में निहित दार्शनिकता, मनोवैज्ञानिकता एवम् तकनीकी विज्ञान को वर्तमान परिपेक्ष्य में तुलनात्मक या समन्वयात्मक स्वरूप प्रदान कर उत्कृष्टता के परिचय को समाज के सम्मुख रखा जा सकें। इससे संस्कृत शिक्षा का प्रचार-प्रसार और व्यावहारिक सशक्तिकरण द्वारा जनसुलभ भाषा बनाना होगा तथा वर्तमान में जोड़कर नवीनता का अभिनन्दन करना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

उपाध्याय बलदेव (1980) "वैदिक साहित्य एवम् संस्कृति" चौखम्बा , वाराणसी उत्तर प्रदेश।

द्विवेदी कपिल देव (1986) "भाषाविज्ञान एवम् भाषा शास्त्र" साहित्य भण्डार इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।

जोशी किरीट (2008) "भारतीय वैदिक मनोविज्ञान"

सिंह कर्ण डॉ. (1995) "वैदिक साहित्य का इतिहास" साहित्य भण्डार मेरठ, यू.पी.।

द्विवेदी कपिल देव (2009) "वैदिक साहित्य और संस्कृति", साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, यू.पी.।

सफाया रघुनाथ (2011) "संस्कृत शिक्षण", साहित्य अकादमी भवन, पंचकूला।

संस्कृत शिक्षा में शोध के अनुक्षेत्रः चुनौतियाँ एवं समाधान की अपेक्षाएँ

डा. अमिता पाण्डेय भारद्वाज
सहायक आचार्या, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विद्यापीठ

शैक्षिक अनुसन्धान शिक्षा व्यवस्था में अपेक्षित जागरूकता, कुशलता एवं गुणवत्ता बनाए रखने की विलक्षण दृष्टि एवं आतुरता सृजित करने के साथ ही उसे युगानुरूप अपेक्षाओं में रूपायित करने में सहायक होता है। यह वस्तुनिष्ठ शैक्षिक ज्ञान के कोष में अभिवृद्धि, शैक्षिक नीतियों एवं सिद्धान्तों के निरूपण में वैज्ञानिक आधार उपलब्ध कराने तथा शैक्षिक प्रशासकों, शिक्षकों एवं अन्य शिक्षण-कर्मियों में शिक्षा एवं शिक्षण-अधिगम की समस्याओं के प्रति वैज्ञानिक रूझान विकसित करने में प्रभावी साधकत्व प्रदान करता है। संस्कृत शिक्षा से सम्बन्धित अनुसन्धान कार्यों के संदर्भ में भी यह लागू होता है।

शैक्षिक अनुसन्धान के अनुक्षेत्रों को कई दृष्टियों से वर्णित किया जा सकता है। भारतीय सन्दर्भ में इन अनुक्षेत्रों की प्राथमिकताएँ राष्ट्रीय प्राथमिकताओं एवं नीतियों के अनुरूप बदलती रही हैं। लेकिन किसी विषय-क्षेत्र से सम्बन्धित अनुसन्धान शिक्षण, अधिगम, मूल्यांकन, मापन एवं परीक्षण, अनुदेशनात्मक संसाधन, प्रशासन, पाठ्यक्रम आदि शिक्षा के विभिन्न स्तरों-प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में सम्बन्धित होते हैं और इनकी प्राथमिकता शिक्षा के औपचारिक एवं निरौपचारिक सन्दर्भों को दृष्टिगत रखकर निर्धारित किये जाते हैं। प्रस्तुत पत्रक में इन अनुक्षेत्रों को संस्कृत शिक्षा से सम्बन्धित अनुसन्धान मुद्दों के अन्तर्गत वर्णित किया गया है तथा उनसे जुड़ी चुनौतियों को व्याख्यायित करने एवं उनके समाधान प्रस्तावित करने का प्रयास किया गया है। इन अनुक्षेत्रों यथा- भारतीय ग्रन्थों में निहित

शैक्षिक तत्व एवं विचार और वर्तमान सन्दर्भ में उनकी प्रासंगिकता, विभिन्न स्तरों पर संस्कृत शिक्षा के पाठ्यक्रमों का विश्लेषण, संस्कृत शिक्षा से जुड़े कर्मियों का मनोवैज्ञानिक कारकों के संदर्भ में अध्ययन, भाषा शिक्षकों के शिक्षण व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन, एवं तदनुसार सुधार की ओर प्रवृत्त करना, स्वानुदेशनात्मक सामग्रियों का निर्माण एवं उनकी वैधता का निरूपण, भारतीय अवधारणाओं पर आधारित शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्वों पर शोध उपकरणों का निर्माण तथा संस्कृत शिक्षा की प्रभाविता सुनिश्चित करने की दृष्टि से क्रियात्मक अनुसन्धान के उपक्रम की प्रयोज्यता आगे दिए गए बिन्दुओं के रूप प्रस्तुत में किया गया है।

संस्कृत शिक्षा में शोध के विभिन्न अनुक्षेत्र

१. शैक्षिक तत्वों एवं विचारों का अध्ययन : भारतीय वाङ्मय में निहित शैक्षिक तत्त्वों एवं विचारों को परखना, उनका स्वरूप, वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता, व्यावहारिक परिस्थितियों में प्रयोग आदि से सम्बन्धित अनुक्षेत्रों को संस्कृत शिक्षा में अनुसन्धान कार्य का विषय बनाया जा सकता है। शैक्षिक तत्त्वों के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्य, स्वरूप, शिक्षण एवं मूल्यांकन विधियों, प्रबन्धन आदि का समीक्षात्मक अध्ययन करते हुए उनकी वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययनों द्वारा ज्ञान के दायरों में तो विकास होगा ही साथ ही उभरती चुनौतियों का सामना करने की युक्तियों के लिए प्रबल आधार विकसित हो सकेगा।

२. विभिन्न स्तरों पर संस्कृत शिक्षा के पाठ्यक्रमों का विश्लेषण : प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तरों पर संस्कृत शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों का मनोवैज्ञानिक एवं व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषणात्मक अध्ययनों को भी अनुसन्धान का क्षेत्र बनाया जा सकता है। इन विश्लेषणों को पाठ्यक्रम के संरचनात्मक तत्त्वों के आधार पर अन्य भाषायी विषयों के पाठ्यक्रमों से तुलना करके अधिगमकर्त्ता विद्यार्थी के लिए सुग्राह्य बनाया जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन शिक्षा के किसी भी स्तर हेतु संस्कृत पाठ्यक्रम के अभिकल्पन में सही

दिशा निर्देश दे पायेंगे जिससे इन पाठ्यक्रमों की उद्देश्यपूर्णता एवं प्रभाविता को सुनिश्चित करना सम्भव हो सकेगा।

३. मनोवैज्ञानिक कारकों के सन्दर्भ में अध्ययन : संस्कृत शिक्षा से जुड़े प्रशासकों, शिक्षकों, अध्यापक शिक्षकों, छात्रों आदि का मनोवैज्ञानिक कारकों के संदर्भ में उनकी मनोवृत्तियों एवं अभिवृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययनों का संस्कृत शिक्षा में अनुसन्धान अनुक्षेत्रों के रूप में लिया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक कारकों के अन्तर्गत व्यक्तित्व, बुद्धि (संज्ञानात्मक, सांवेगिक एवं आध्यात्मिक), सृजनात्मक चिन्तन, अभिवृत्ति, रूचि, मूल्य, समायोजन आदि के आधार पर शोध कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। इस प्रकार के अध्ययनों द्वारा संस्कृत शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों का इन विभिन्न मनोवैज्ञानिक कारकों के सन्दर्भ में वस्तु स्थिति जानने में मदद मिलेगी जिससे सम्बन्धित कारक को प्रभावी रीति से संयोजित करने में अपेक्षित प्रयास किये जा सकेंगे।

४. भाषा शिक्षकों के शिक्षण व्यवहार स्वरूपों का अध्ययन: शिक्षण व्यवहार शिक्षण की परिस्थिति में उत्पन्न विशिष्ट क्रियाओं तथा अधिगम लक्ष्यों की प्राप्ति कराने हेतु व्यवस्थित संक्रियाओं के उपयोग सम्बन्धी कौशल का बोध कराता है। उदारणार्थ किसी कक्षा शिक्षण की परिस्थिति में विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण, प्रश्न पूछना, व्याख्या या विवरण देना, निर्देशन, आदेश देना आदि शिक्षण व्यवहार की श्रेणी में रखे जाते हैं। इस व्यवहार के अध्ययन के लिए व्यवस्थित प्रेक्षण की विधियों यथा– फ्लैन्डर्स की अन्तर्क्रिया विश्लेषण विधि, मिलर की समकक्ष वार्ता विधि आदि का प्रयोग किया जाता है। भाषा शिक्षकों के शिक्षण व्यवहार स्वरूपों का वस्तुनिठ अध्ययन, उनकी वस्तुस्थिति से अवगत तो करायेगी ही साथ ही सम्बन्धित भाषा के शिक्षकों की प्रवीणताओं में अपेक्षित सुधार सुनिश्चित करने का मार्ग प्रशस्त करेगा।

५. स्वअनुदेशनात्मक सामग्रियों का निर्माण : स्वअनुदेशनात्मक सामग्री का तात्पर्य उन सामग्रियों से है जिनकी सहायता से अधिगमकर्ता, स्थान और समय के दायरे से स्वतंत्र रहकर अधिगम की ओर उन्मुख होता है। इन सामग्रियों को रेखीय, शाखीय व शृंखलित अभिक्रम,

कम्प्यूटर समर्थित अभिक्रम, ई–अधिगम सामग्री के स्वरूपों में अभिकल्पित एवं निर्मित किया जा सकता है। संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में इन सामग्रियों के निर्माण एवं उनके वैधता निरूपण को अनुसंधान का आधार बनाया जा सकता है। संस्कृत व्याकरण के मुख्य सम्प्रत्यय जैसे कारक प्रकरण, संधि, समास, प्रत्यय आदि वाक्य संरचना, शिक्षाप्रद कहानियाँ (पंचतंत्र, हितोपदेश आदि) संस्कृत सम्भाषण आदि कुछ ऐसे घटक हैं जिन पर स्वअनुदेशनात्मक सामग्रियों का निर्माण किया जा सकता है। जहाँ एक ओर यह अध्ययन संस्कृत भाषा में सम्प्रेषण एवं संस्कृत सम्प्रत्ययों पर अधिकार प्राप्त करवाने में अधिगमकर्ता की सहायता करेगा, वहीं दूसरी ओर इसे उपचारात्मक शिक्षण एवं स्मार्ट कक्षाओं के लिए सहायक सामग्री के रूप में अनुप्रयोग किया जा सकता है।

६. शोध उपकरणों का निर्माण : भारतीय संदर्भ में विकसित अवधारणाओं पर आधारित मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक तत्वों/कारकों पर शोध उपकरणों के निर्माण एवं उनके प्रमाणीकरण को भी शोध अध्ययन का विषय बनाया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक तत्व यथा–व्यक्तित्व, बुद्धि (संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं आध्यात्मिक), सृजनात्मक चिन्तन, रूचि, आदि तथा शैक्षिक तत्व यथा–शिक्षण अधिक्षमता, शिक्षण अभिवृत्ति, शैक्षिक मूल्य, शिक्षण प्रभाविता, शैक्षिक प्रबन्धन आदि सम्प्रत्ययों का भारतीय वाङ्मय में क्या अवधारणा रही है, उन्हें चिन्हित कर तथा उनके वर्तमान सन्दर्भों में निहितार्थ अन्वेषित कर आधारभूत शोध उपकरणों का निर्माण किया जा सकता है। इन शोध उपकरणों से शिक्षा से जुड़े अनेक शोधकर्ता लाभान्वित हो सकेंगे।

७. संस्कृत शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन : वैश्विक सन्दर्भ में उभरती अभिनव चुनौतियों को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन एक प्रभावी अद्यतन रणनीति है। इसके अन्तर्गत संस्कृत शिक्षा की व्यवस्थाओं, शिक्षण–अधिगम के प्रभावी अभिकल्पन, शिक्षक एवं छात्र के सहयोगात्मक आधार पर प्रतिभाग सुनिश्चित करने और ज्ञान, कौशल एवं व्यवहार स्तर पर भाषायी प्रवीणताओं को विकसित करने की अत्यन्त उपयोगी सम्भावनाएँ ढूँढ़ी जा सकती है। इस दृष्टि से स्वाट परीक्षण तथा अभिप्रेरणाओं एवं

क्षमताओं की संगति के आधार पर पूरी संस्कृत शिक्षण की व्यवस्था में गुणवत्ता विकसित करना मुख्य ध्येय बनाया जा सकता है। इस युक्ति का समावेश प्राय: हर विषय के शिक्षण व्यवस्था में लागू करने की संस्तुति आज के सन्दर्भों में की जा रही है। इस दृष्टि से संस्कृत शिक्षा में शोध के अनुक्षेत्रों में इसे नवीनतम प्रविष्टि के रूप में लिया जा सकता है।

८. संस्कृत शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान : क्रियात्मक अनुसन्धान शोधकर्त्ता की वास्तविक शैक्षिक परिस्थितियों से जड़ी मूर्त समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक विधि से करने का प्रयास करता है। इसे गुणात्मक शोध के प्रतिमान में शामिल किया जाता है तथा सुधार परक बहुआयामी युक्तियों का स्वरूप निर्धारण करने में इसकी भूमिका बेजोड़ है। संस्कृत शिक्षा से जुड़े प्रशासक, प्रबन्धक, शिक्षक, अध्यापक शिक्षक, छात्र आदि अपनी व्यावहारिक परिस्थितियों में सुधार क्रियात्मक अनुसन्धान के माध्यम से कर सकते हैं। इसके द्वारा अभ्यासकर्ता अपनी दिन-प्रतिदिन की शैक्षिक परिस्थितियों में तो सुधार करता ही है, साथ ही अपनी व्यावसायिक दक्षता को भी अभिवृद्ध करता है। इसके अतिरिक्त संस्थाओं द्वारा क्षमता संवर्द्धन के उपक्रमों में भी क्रियात्मक अनुसन्धान की विधि के माध्यम से यथार्थ एवं व्यवहार स्तरों को सहज ही प्रभावी बनाया जा सकता है।

संस्कृत शिक्षा में अनुसन्धान : चुनौतियाँ एवं प्रस्तावित सुझाव

संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में किये गये अनुसन्धानों की मुख्य चुनौतियाँ यथा प्रसार एवं विकास, वर्तमान सन्दर्भ में प्रासांगिकता, उपयुक्त तकनालॉजी का अनुप्रयोग, प्रभावी शोध उपागम का निरूपण, प्रस्तुतीकरण, परम्परिक एवं अद्यतन दृष्टिकोण, आदि के रूप में देखी जा सकती है। इन सभी चुनौतियों के समाधान हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत है :

१. अन्तर्विद्यापरक शोध उपागम : संस्कृत शिक्षा में अनुसन्धान की परिधि में अन्तर्विद्यापरक उपागम को अंगीभूत करके इसकी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता को अभिवृद्ध किया जा सकता है। इस उपागम के तहत संस्कृत शिक्षा की औपचारिक एवं अनौपचारिक व्यवस्थाओं से

जुड़ी समस्याओं का शिक्षा के अतिरिक्त अन्य विद्याओं की सहायता से अध्ययन करने की पहल की जा सकती है। यह उपागम शोध कार्यों एवं अध्ययनों की गुणवत्ता एवं अर्थपूर्णता को भी संवर्धित कर सकता है।

२. सम्प्रेषण माध्यम में नमनीयता : संस्कृत शिक्षा में किये गये शोध कार्यों को अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाने एवं उपलब्ध कराने के लिए उसका सम्प्रेषण माध्यम अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह माध्यम यदि आम–आदमी की भाषा में किये जाये तो सम्प्रेषण प्रभावी माना जायेगा। इसलिए शोध कार्यों को संस्कृत भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी व हिन्दी भाषा में भी प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा करने से संस्कृत में किये गये शोधकार्यों का व्यापक प्रसार एवं विस्तार सम्भव हो पायेगा।

३. तकनालॉजी का प्रयोग : इस तकनीकी युग में संस्कृत शिक्षा से जुड़े शोधार्थियों को अपने कार्यों में तकनालॉजी के प्रयोग में अभ्यस्त होना चाहिए जिससे अपने शोध लक्ष्यों को द्रुत, सरल एवं कुशलता से प्राप्त कर सकेंगे। सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण, प्रदत्त विश्लेषण, प्रदत्त संकलन आदि की प्रक्रियाओं में तकनालॉजी का उपयोग शोध कार्यों की विशुद्धता, प्रामाणिकता एवं व्यावहारिक उपादेयता को संबलित कर सकेगा।

४. अन्य संस्थाओं के साथ सहयोगात्मक सम्बन्ध : संस्कृत शिक्षा से जुड़े संस्थानों एवं शोध विभागों का अन्य संस्थाओं के साथ प्रतिभाग आधारित निष्पन्न शोध कार्यों पर समीक्षात्मक चिन्तन, तथा संगोष्ठियों, कार्यशालाओं एवं विचार-विमर्श मंचो द्वारा आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे शोध कार्यों की प्रभाविता एवं गुणवत्ता में वृद्धि सुनिश्चित हो पायेगी तथा अभिनव शोध अनुक्षेत्रों के लिए सही दिशा मिल सकेगी।

५. शोध कार्यों के सारांशों की समीक्षात्मक प्रस्तुति के रूप में संकलन : संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े सभी शोध कार्यों एवं पत्रों को सारांशों के रूप में संकलित कर उन्हें प्रकाशन के लिए सम्पादन आदि की प्रक्रियाओं में रखना चाहिए। इस सर्वे की उपादेयता को अन्य

भाषाओं मुख्यतः अंग्रेजी एवं हिन्दी के अनुवादित स्वरूपों द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इससे संस्कृत शिक्षा व अन्य शिक्षा के क्षेत्रों से जुड़े शोधकर्त्ता लाभान्वित हो पायेंगे।

अन्त में, इस पत्रक में सुझाये संस्कृत शिक्षा में शोध के अनुक्षेत्र तथा उनसे जुड़ी चुनौतियाँ एवं प्रस्तावित समाधान संस्कृत शोधकर्त्ताओं एवं संस्थाओं को निश्चित ही नई दिशा प्रदान करेंगे जो संस्कृत जगत से जुड़े शोध कार्यों को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करेंगी। इसे ठोस स्वरूप प्रदान करने हेतु शोध के प्रतिमानाकें, शोध प्रारूपों, शोध प्रस्तुतिकरण व शोध कार्य योजनाओं के प्रति उदारवादी दृष्टि अपनाने की आवश्यकता है जिससे इन शोध कार्यों एवं अध्ययनों को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर पहचान मिल सकेगी। इसके साथ उपयुक्त सम्प्रेषण तकनालॉजी के माध्यम से अन्य आधुनिक विषयों एवं संस्थानों के साथ सहयोगात्मक एवं समन्वयात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की जरूरत है जो कि नवीन शोध अनुक्षेत्रों को पहचानने, चिन्हित करने एवं उनके दायरों को अपेक्षित सतर्कता के साथ उजागर करने के आसार संवर्धित होंगे जो आज के वैश्विक सन्दर्भ की महत्वपूर्ण अपेक्षाओं का आधार बनेगा।

संदर्भ अध्ययन सूची :

- **पाण्डेय, के.पी.**; शैक्षिक अनुसन्धान, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी। (१९९८)
- **गुप्ता, एस.पी.**; अनुसन्धान संदर्शिका, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद। (२०१३)
- **भार्गव, महेश;** आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन; एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा। (२००१)

जुड़ी समस्याओं का शिक्षा के अतिरिक्त अन्य विद्याओं की सहायता से अध्ययन करने की पहल की जा सकती है। यह उपागम शोध कार्यों एवं अध्ययनों की गुणवत्ता एवं अर्थपूर्णता को भी संवर्धित कर सकता है।

२. सम्प्रेषण माध्यम में नमनीयता : संस्कृत शिक्षा में किये गये शोध कार्यों को अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाने एवं उपलब्ध कराने के लिए उसका सम्प्रेषण माध्यम अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह माध्यम यदि आम–आदमी की भाषा में किये जाये तो सम्प्रेषण प्रभावी माना जायेगा। इसलिए शोध कार्यों को संस्कृत भाषा के साथ–साथ अंग्रेजी व हिन्दी भाषा में भी प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा करने से संस्कृत में किये गये शोधकार्यों का व्यापक प्रसार एवं विस्तार सम्भव हो पायेगा।

३. तकनालॉजी का प्रयोग : इस तकनीकी युग में संस्कृत शिक्षा से जुड़े शोधार्थियों को अपने कार्यों में तकनालॉजी के प्रयोग में अभ्यस्त होना चाहिए जिससे अपने शोध लक्ष्यों को द्रुत, सरल एवं कुशलता से प्राप्त कर सकेंगे। सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण, प्रदत्त विश्लेषण, प्रदत्त संकलन आदि की प्रक्रियाओं में तकनालॉजी का उपयोग शोध कार्यों की विशुद्धता, प्रामाणिकता एवं व्यावहारिक उपादेयता को संबलित कर सकेगा।

४. अन्य संस्थाओं के साथ सहयोगात्मक सम्बन्ध : संस्कृत शिक्षा से जुड़े संस्थानों एवं शोध विभागों का अन्य संस्थाओं के साथ प्रतिभाग आधारित निष्पन्न शोध कार्यों पर समीक्षात्मक चिन्तन, तथा संगोष्ठियों, कार्यशालाओं एवं विचार-विमर्श मंचो द्वारा आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे शोध कार्यों की प्रभाविता एवं गुणवत्ता में वृद्धि सुनिश्चित हो पायेगी तथा अभिनव शोध अनुक्षेत्रों के लिए सही दिशा मिल सकेगी।

५. शोध कार्यों के सारांशों की समीक्षात्मक प्रस्तुति के रूप में संकलन : संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े सभी शोध कार्यों एवं पत्रों को सारांशों के रूप में संकलित कर उन्हें प्रकाशन के लिए सम्पादन आदि की प्रक्रियाओं में रखना चाहिए। इस सर्वे की उपादेयता को अन्य

भाषाओं मुख्यत: अंग्रेजी एवं हिन्दी के अनुवादित स्वरूपों द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इससे संस्कृत शिक्षा व अन्य शिक्षा के क्षेत्रों से जुड़े शोधकर्त्ता लाभान्वित हो पायेंगे।

अन्त में, इस पत्रक में सुझाये संस्कृत शिक्षा में शोध के अनुक्षेत्र तथा उनसे जुड़ी चुनौतियाँ एवं प्रस्तावित समाधान संस्कृत शोधकर्त्ताओं एवं संस्थाओं को निश्चित ही नई दिशा प्रदान करेंगे जो संस्कृत जगत से जुड़े शोध कार्यों को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करेंगी। इसे ठोस स्वरूप प्रदान करने हेतु शोध के प्रतिमानाकें, शोध प्रारूपों, शोध प्रस्तुतिकरण व शोध कार्य योजनाओं के प्रति उदारवादी दृष्टि अपनाने की आवश्यकता है जिससे इन शोध कार्यों एवं अध्ययनों को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर पहचान मिल सकेगी। इसके साथ उपयुक्त सम्प्रेषण तकनालॉजी के माध्यम से अन्य आधुनिक विषयों एवं संस्थानों के साथ सहयोगात्मक एवं समन्वयात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की जरूरत है जो कि नवीन शोध अनुक्षेत्रों को पहचानने, चिन्हित करने एवं उनके दायरों को अपेक्षित सतर्कता के साथ उजागर करने के आसार संवर्धित होंगे जो आज के वैश्विक सन्दर्भ की महत्वपूर्ण अपेक्षाओं का आधार बनेगा।

संदर्भ अध्ययन सूची :

- **पाण्डेय, के.पी.**; शैक्षिक अनुसन्धान, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी। (१९९८)
- **गुप्ता, एस.पी.**; अनुसन्धान संदर्शिका, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद। (२०१३)
- **भार्गव, महेश**; आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन; एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा। (२००१)

संस्कृत शिक्षा का प्रसार एवं विकास

डॉ. नागेन्द्रनाथ झा

एसो. प्रोफेसर, शिक्षा विभागः

रा.सं.संस्थानम् (मानितविश्वविद्यालयः), रणवीरपरिसरः

कोट भलवाल,जम्मू - 181122

भारतवर्ष की प्रतिष्ठा प्राचीन काल से लेकर आजतक दो धरोहरों पर टिकी हुई है, जिसमें एक है संस्कृत भाषा और दूसरी धरोहर है संस्कृति। इन्हीं दो धरोहरों के कारण भारत आज भी विश्व में अपना स्थान कायम रखा है। जहाँ तक संस्कृत भाषा की बात है तो इसे वैदेशिक भी मानते हैं कि संस्कृत भाषा भारत की ही नहीं है बल्कि वैज्ञानिक भाषा होने के कारण हम सभी का यह प्राणभूत आधार है।

अब प्रश्न ये उठता है कि यदि संस्कृत भाषा हमारी धरोहर है और प्राचीन काल से चली आ रही है तो हमें इस धरोहर को कायम रखने के लिए कौन-कौन से उपाय करने होंगे जिससे कि ये धरोहर संचित रहे। पुनः जन-जन की भाषा बने, जन-जन की शिक्षा हो और शिक्षा जिस देश में अल्प है वहाँ पूर्ण हो। मनुष्य अनुकरणशील होता है, और अनुकरण द्वारा अपने जीवन यापन को सुचारु रूप से चलाना चाहता है। कहा जाता है कि **अध्यापक देश का निर्माता होता है**, अध्यापक जितना शिक्षित योग्य सुदृढ एवं कुशल होगा देश उतना ही सबल होगा। संस्कृत शिक्षा के प्रचार एवं विकास के लिए अध्यापकों को निम्न लिखित उपाय करना चाहिए।

1. कक्षा में सरल संस्कृत में पढाना।
2. विषय के अनुसार उपयोगिता सिद्धान्त को ध्यान रखना।
3. संगणक का ज्ञान होना।

4. अपनी संस्था में संस्कृत वातावरण बनाना।
5. संस्कृत बोलने में छात्रों को स्वतंन्त्रता प्रदान करना।
6. अध्यापक को "कोर" पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर पढाना चाहिए।
7. संस्कृत भाषा के साथ आधुनिक भाषा का ज्ञान होना चाहिए।
8. छात्रों का मूल्याङ्कन सही ढंग से होना चाहिए।
9. अध्यापक को दार्शनिक एवं मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है।

*** विषय के अनुसार संस्कृत भाषा अध्ययन की आवश्यकता उपयोगिता**

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी अलग संस्कृति होती है। जो उस राष्ट की पहचान बनाए रखती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी संसकृति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है। भारतीय संस्कृति का उद्गम स्रोत संस्कृत भाषा है। संस्कृत हमारे पूर्वजों की धरोहर है। संस्कृत में ही भारतीय संस्कृति सन्निहित है। साहित्य, दर्शन, राजनीति, प्राचीन ज्ञान विज्ञान के स्रोत आदि सभी दृष्टियों से संस्कृत की बहुत आवश्यकता है। संस्कृत ही एकमात्र ऐसी भाषा है जिस के अध्ययन मात्र से कई प्रकार के विकास एक साथ सम्भव हैं।

*** भाषा की आवश्यकता**

संस्कृत भाषा अपने आप में पूर्ण एवं समृद्ध भाषा है। इसकी ध्वनियाँ इतनी है कि संसार की सभी भाषाओं की ध्वनियों का इसमें समावेश सम्भव है। संस्कृत ध्वनि के स्वर एवं व्यंजन वैज्ञानिक आधार पर हैं। संस्कृत में वाक्यंत्र से प्रस्फुटित सूक्ष्म से सूक्ष्म सभी ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण हुआ है। भाषा की दृष्टि से संस्कृत की आवश्यकता निम्नलिखित अनेक कारणों से है –

1. इसमें सूक्ष्माति सूक्ष्म ध्वनियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण है।
2. संस्कृत भाषा का शब्द भण्डार अत्यन्त विशाल है। इसमें शब्द

रचना की अद्भुत सामर्थ्य है।

3. यह संसार की प्राचीनतम भाषा है।
4. संस्कृत के चारों वेद विश्व की प्राचीनतम रचना है।
5. संस्कृत भाषा में विशाल साहित्य है।
6. सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आयुर्वेदिक, ज्योतिष, दर्शन आदि सभी विषयों के मूल्यवान ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है।
7. संस्कृत का अध्ययन भाषाविज्ञान विषय शिक्षण के लिए प्रमुख है।
8. संस्कृत भाषा अन्य अनेक विषयों के शिक्षण का माध्यम है क्योंकि इसमें ही मौलिक अनेक ग्रन्थ हैं।
9. संस्कृत भाषा भारत की सम्पर्क भाषा है।
10. संस्कृत हमारी सांस्कृतिक भाषा है।
11. संस्कृत संविधान द्वारा स्वीकृत राष्ट्रीय भाषाओं में से एक है।
12. संस्कृत भाषा सभी के लिए आदरणीय भाषा है।
13. हम संस्कृत भाषा में वार्तालप करके गौरव का अनुभव करते हैं।
14. संस्कृत में राष्ट्रीय भाषा होने की सम्पूर्ण क्षमता है।

*** मातृभाषा को समृद्ध बनाने की दृष्टि से**

संस्कृत भारोपीय परिवार की प्राचीन आर्य भाषा है। वर्तमान में उत्तर भारत में प्रचलित सभी भाषाओं की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई है। विभिन्न प्रान्तों की मातृभाषा के रूप में व्यवहार की जानेवाली आसामी, बंगला, गुजराती, हिन्दी, पंजाबी, मराठी, उडिया भाषाओं में संस्कृत के 75 प्रतिशत शब्द तत्सम व तद्भव के रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं। इन सभी भाषाओं में जीवन का संचार संस्कृत से हो रहा है। संस्कृत से ही हिन्दी भाषा समृद्ध हो रही है। हिन्दी भाषा में नवीन शब्द रचना तथा व्याकरण का आधार संस्कृत ही है। हिन्दी भाषा में पूर्ण योग्यता के

लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है। अतः मातृ भाषा की समृद्धि के लिए संस्कृत का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

*** भारतीय भाषाओं की जननी के रूप में**

भारतीय आर्य भाषओं में सर्वाधिक प्राचीन भाषा वैदिक संस्कृत है। वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत, लौकिक से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश, अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ। यह हिन्दी, बंगला, उडिया, आसामी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी इन सभी भाषाओं की जननी है।

संस्कृत भाषा से दक्षिण भारत की सभी भाषायें भी समृद्ध तथा सशक्त हुई है। भारत की समस्त भाषाओं के कोष निर्माण कार्य को सम्पन्न करने के लिए संस्कृत का विशेष ज्ञान अपेक्षित है, क्योंकि संस्कृत के विना शब्दों की व्युत्पत्ति सम्भव नहीं है।

*** सांस्कृतिक समृद्धि के लिए**

भारतीय संस्कृति संस्कृत भाषा में निहित है। हमारे मूल्यवान् विचार, दर्शन, आध्यात्मिकता, उन्नत नैतिकता आदि संस्कृत में ही निहित है। संस्कृत ग्रन्थ ही भारतीय सभ्यता, उच्चआदर्श की अभिव्यक्ति करते हैं। वेदों में ईश्वरीय व्यख्यान हमारे उदात्त विचारों, आदर्शों की प्रशंसनीय निधि है। रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराण, भारतीय संस्कृति और सभ्यता के दर्पण हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम्" "सर्वे भवन्तु सुखिनः" परोपकाराय सतां विभूतयः" जैसे उदात्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन संस्कृत भाषा में हुआ है। भारतीय समाज में जीवन के प्रत्येक भाग शास्त्रीय आदेशों से नियन्त्रित है, और वे आदेश संस्कृत भाषा में हैं। अतः संस्कृत को भूल जाना भारतीय संस्कृति को भूल जाना है। संस्कृत भाषा का चीन कोरिया तथा जपान में भी पर्याप्त प्रचार है। इन देशों में बौद्ध धर्म के कारण संस्कृत को मान सम्मान दिया जाता है। आज भी इन देशों के छात्र संस्कृत पढने के लिए भारत में आते रहते हैं। अतः भारतीय संस्कृति प्राचीन व समृद्ध शाली है। महा काव्यों में रघुवंश, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, कुमारसम्भवम्, नैषधचरितम्, बुद्धचरितम्

जैसे ग्रन्थरत्न हैं। बाणभट्ट की "कादम्बरी" विश्व का श्रेष्ठ गद्यकाव्य है। इस प्रकार साहित्य की दृष्टि से संस्कृत साहित्य से श्रेष्ठ है।

* राष्ट्रिय एकीकरण की दृष्टि से

भारत का भौगोलिक चित्र संस्कृत भाषा में वर्णित है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक विस्तृत प्रदेश का नाम भारतवर्ष रखा है।

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥

भारतवर्ष की अखण्डता तथा देश प्रेम की भावना विष्णु पुराण, भागवत पुराण में भी सुन्दरता के साथ व्यक्त की गई है। इसलिए राष्ट्रिय एकता की दृष्टि से संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य है। संस्कृत साहित्य से ही हम प्राचीन एवं नवीन जीवन मूल्यों में सामंजस्य कर सकते हैं।

भारतीय पुरातत्त्ववित् चेलिशेष ने भी कहा है कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में मानवतावाद और विश्वबन्धुत्व की स्पष्टविचार धारा देखी जा सकती है। इन विचारों का आधुनिक विश्व के सन्दर्भ में बडा महत्व है।

* संस्कृत भाषा के अध्ययन की उपयोगिता

यद्यपि आज संस्कृत भाषा दैनिक व्यवहार में बहुत कम मात्रा में प्रयुक्त हो रही है फिर भी इसका अध्ययन करते रहना अनिवार्य है, क्यों कि –

1. यह भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा है। यह भाषा हमारे पूर्वजों की धरोहर है। इसके ग्रन्थ सर्वाधिक प्राचीन वैभव को व्यक्त करते हैं।

2. संस्कृत भाषा वैज्ञानिक भाषा है, इसका व्याकरण विश्व में सर्वश्रेष्ठ है। इसका साहित्य उच्च्व कोटि का है।

3. इस भाषा में भारत भाषा का प्रचीन वैभवपूर्ण, गौरवपूर्ण इतिहास सुरक्षित है। संस्कृत के अभाव में हमें अपना इतिहास विस्मृत

हो जाएगा, जिस कारण हमारा वैभवपूर्ण अतीत भी स्वप्न की भाँति नष्ट हो जाएगा।

4. संस्कृत में ज्ञान विज्ञान, समाजशास्त्र दर्शन, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष आदि सभी सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक ग्रन्थ विद्यमान है। यदि इस भाषा का अध्ययन नहीं होगा तो इन ग्रन्थों का अस्तित्व भी समाप्त हो जाएगा। अतः संस्कृत भाषा के अध्ययन की अति महत्वपूर्ण उपयोगिता है।

*** प्राचीन ज्ञान विज्ञान के स्रोत के रूप में**

ज्ञान विज्ञान का बहुमूल्य साहित्य संस्कृत में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। भूगोल एवं खगोल शास्त्रों में आर्यभटीय एक प्रामाणिक ग्रन्थ है जिस में खगोल के आधुनिकतम प्रत्ययों को सरलता से स्पष्ट किया गया है। गणित एवं रेखागणित में जितनी भी प्रमेय है, उनमें से अधिकांश प्रमेयों की बोधायन के सूत्रों से हुई है। त्रिभुज का सर्वप्रथम प्रयोग ज्ञान सूत्र सिद्धान्त नामक ग्रन्थ में हुआ है। दशमलव एवं शून्य की कल्पना भारतीय गणित शास्त्र की देन है। बीजगणित का प्रारम्भ भारत में पाँच हजार वर्ष पहले ही हो चुका था।

ज्योतिष शास्त्र के सभी ग्रन्थ संस्कृत में हैं। चिकित्सा विज्ञान शास्त्र में "सुश्रुत व चरक" प्रसिद्ध हैं। राजनीति विज्ञान में कौटिल्य का अर्थशास्त्र सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ संस्कत में ही है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, यंत्रविज्ञान, विमान विज्ञान, भाषा विज्ञान आदि विषयों पर संस्कृत साहित्य में पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है। दर्शन शास्त्र में भारतीय षड्दर्शन विश्व में अग्रगण्य है। नाटक, छन्द, अलंकार आदि सभी क्षेत्रों में संस्कृत साहित्य का अपार भण्डार है। अतः इस ज्ञान भण्डार को जानने के लिए संस्कृत भाषा के अध्ययन की विशेष आवश्यकता है।

*** साहित्यिक विकास की दृष्टि से**

विश्व में काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भारतीय संस्कृत काव्यशास्त्रीय रचनाएँ सर्वप्रथम प्राप्त हुई हैं। संस्कृत भाषा की महाकाव्य, नाटक, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, आख्यान, उपन्यस, चम्पूकाव्य आदि प्रसिद्ध

विधाओं में रचनाएँ हैं। विश्व का सर्वश्रेष्ठ नाटक "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" संस्कृत में है। भर्तृहरि के तीनों शतक विश्व स्तर के ग्रन्थ हैं। पंचतन्त्र, हितोपदेश की कहानियों का अनुवाद विश्व की सभी भाषाओं में हो चुका है।

उपर्युक्त उपाय करने से संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास सम्भव है।

संस्कृत-शिक्षा में अनुसन्धान का वर्तमान परिदृश्य, चुनौतियाँ एवं सुझाव

डॉ. सुमन कुमार झा
वरिष्ठ-सहायकाचार्यः, साहित्यविभागः,
श्री. ला. ब. शा. रा. सं. विद्यापीठम्, नवदेहली-16

ऊर्ध्वोर्ध्वमारूह्य यदर्थतत्त्वं धीः पश्यति श्रान्तिमवेदयन्ती।
फलं तदाद्यैः परिकल्पतानां विवेकसोपानपरम्पराणाम्॥[1]

किसी भी शिक्षा-पद्धति, शिक्षण-संस्थान, शोध-संस्थान एवं विश्वविद्यालयों के सर्वोत्कृष्ट-रूप या उपलब्धि का परिचायक संस्थान के अनुसंधान-कार्य को माना जाता है। अनुसंधान की गुणवत्ता, उपयोगिता तथा उत्कृष्टता ही शिक्षा-पद्धति एवं शिक्षण-संस्थान की सफलता और उत्कृष्टता का सूचक माना जाता है। शोध एवं प्रकाशन कार्य के द्वारा ही उस विषय एवं विषय-सम्बद्ध शिक्षा की वर्तमान में उपयोगिता तथा विस्तार की सम्भावना भी प्रदर्शित होती है। अनुसन्धान के आधार पर ही उस विषय के पाठ्यक्रम में युगानुकूल परिवर्तन एवं परिष्कार किया जाता है, जिससे वह शिक्षा समाज एवं राष्ट्र के हित तथा आवश्यकता को पूर्ण करते हुए, शिक्षार्थियों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में समर्थ होती है।

अतः किसी भी शिक्षा में अनुसंधान का वैशिष्ट्य सर्वथा स्वीकृत एवं सिद्ध है। फलतः वर्तमान संस्कृत-शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसे अनुसन्धान-कार्य की आवश्यकता है जिससे संस्कृत-शिक्षा समाज के लिए उपयोगी, प्रासङ्गिक एवं रोजगारोन्मुखी बन सके।

---

1 अभिनवभारती-षष्ठोऽध्यायः

वर्तमान उच्चतर-शिक्षा-पद्धति में चिन्तकों, दार्शनिकों, विचारकों, शिक्षाविदों, समालोचकों, एवं नीति-निर्धारकों के द्वारा अनुसंधान एवं प्रकाशन कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता देने की बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जितने भी शिक्षा-आयोगों की स्थापना भारत-सर्वकार के द्वारा की गयी, सभी ने उच्चतर शिक्षा के सन्दर्भ में अनुसंधान कार्य को बढावा देने, उसके प्रसार एवं प्रगति हेतु नये-नये शोध-संस्थान, अनुसंधान-केन्द्र एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना पर सर्वाधिक बल दिया। अनुसंधान हेतु अतिरिक्त-बजट की व्यवस्था, कनिष्ठ एवं वरिष्ठ शोधवृत्ति में गुणात्मक बढ़ोतरी, नवीन-संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना इत्यादि महत्वपूर्ण निर्णय शिक्षा-आयोगों की देन है। भारत में उच्चतर शिक्षा के प्रसार एवं वर्तमान स्वरूप में इन आयोगों के द्वारा दिये गये विचारों एवं सुझावों का महत्वपूर्ण योगदान है।

विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग (U.G.C) ds Draft Regulation- 2010 & 1oth, 11th & 12th five year plan of u.g.c के अनुसार महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, शोध-संस्थानों, प्रबन्धन-संस्थानों, रक्षा-संस्थानों, चिकित्सा-संस्थानों, औद्योगिक-संस्थानों एवं विद्यापीठों में शोध एवं प्रकाशन के कार्यो को बढावा देने, शोधकार्य की गुणवत्ता सुनिश्चित करने, नवीन-अनुसंधान हेतु पाठ्यक्रमों में परिवर्तन कर उसे अन्तर्विषयक (Inter disciplinary) करने तथा पाठ्यक्रमों को नवीनतम स्वरूप प्रदान करने का निर्देश दिया गया है।

अत: हमारा यह दायित्व बन जाता है कि हमारे द्वारा किये गये एवं करायें जा रहे शोध-कार्य निर्धारित मानदण्ड के अनुरूप, मौलिक , प्रासङ्गिक, एवं स्तरीय हो । क्रियमाण अनुसंधानकार्य के द्वारा सम्बद्धशास्त्र तथा विद्या की अभिवृद्धि हो। हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि विश्वविद्यालयों एवं शोध-संस्थानों में हो रहे अनुसंधान एवं प्रकाशन का कार्य **पिष्ट-पेषण** से रहित हो, साथ ही समाज एवं सम्बद्ध-विषय में एक नई दृष्टि उत्पन्न करने में समर्थ हो सके।

संस्कृतशिक्षा में अनुसंधान की उत्कृष्ट, सुदृढ एवं नैरन्तर्य परम्परा रही है। वेद से लेकर अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्य पर्यन्त वह परम्परा

अत्यन्त वैज्ञानिक-रीति एवं शास्त्रीय-पद्धति से प्रवर्तित होती रही है। **संस्कृतशिक्षा में वैदिक काल से ही लोकोपयोगी, समाजोपयोगी, राष्ट्रोपयोगी एवं सम्पूर्ण विश्वोपयोगी अनुसंधान की परम्परा परिलक्षित होती है, जिसमें न केवल मानव अपितु समग्र जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों, प्राकृतिक-संसाधनों के संरक्षण, विकास एवं कल्याण की कामना दृष्टिगत होती है। समग्र वैदिक-साहित्य मौलिकदृष्टि एवं लोकोपयोगी तत्त्वों तथा तथ्यों से भरे हुए हैं। वेद से लेकर आधुनिकसंस्कृतसाहित्य तक का अगाध एवं अनन्त संस्कृत-वाङ्मय, उत्कृष्ट तथा स्मृद्ध अनुसंधान का प्रतिफल है।**

चतुर्वेद, संहिता, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यक, उपनिषद्ग्रन्थों, षड्-वेदाङ्गों, स्मृतिग्रन्थों, धर्मशास्त्रीयग्रन्थों, दार्शनिकप्रस्थानों, नवीनदार्शनिकप्रस्थानों, आयुर्वेदग्रन्थों, कोशग्रन्थों, अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, पौराणिक-वाङ्मय, कामशास्त्र, विविध-कलाएँ, सौन्दर्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, काव्यशास्त्र, लाक्षणिकग्रन्थों, नवीनकोशग्रन्थों, विशाल एवं अगाध लौकिक-संस्कृतसाहित्य, समग्र अर्वाचीन-संस्कृतसाहित्य, तथा अद्यावधि विविध-विधाओं में रची जा रही साहित्यिक-रचनाएँ जिनकी संख्या अनन्त हैं उस सुदृढ़ अनुसन्धान परम्परा की ही देन हैं। समग्र-संस्कृतवाङ्मय की विकास-यात्रा संस्कृतशिक्षा की अनुपम अनुसन्धान-पद्धति से ही प्रवर्तित हुई है। इस तरह हम देखते हैं कि संस्कृतशिक्षा में अनुसंधान का गौरवशाली इतिहास एवं समृद्ध परम्परा रही है।

परन्तु वर्तमान संस्कृतशिक्षा के अनुसंधान का स्वरूप एवं वर्तमान परिदृश्य अस्पष्ट प्रतीत होता है। यद्यपि संस्कृतवाङ्मय में शोधकार्य की अपार सम्भावनाएँ उपलब्ध हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम उन सम्भावनाओं का तलाश करे एवं उसे वैज्ञानिक तरीके से युगानुरूप, युग की आवश्यकता के अनुरूप बनाकर वर्तमान समाज एवं जन-जीवन के उपयोग हेतु प्रस्तुत करे। सम्बद्धशास्त्र, विषय तथा साहित्य के सम्वर्द्धन एवं विकास में शोधकार्य की भूमिका भी निर्धारित हो। संस्कृतशिक्षा के सशक्तिकरण हेतु संस्कृतशिक्षा के क्षेत्र में क्रियमाण

अनुसंधान-कार्य के परिदृश्य में समुचित परिवर्तन की महती आवश्यकता है।

आज के वैश्विक (Global) एवं सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी (Information and communication technology) के युग में संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे शोध-कार्यों की उपयोगिता एवं प्रासङ्गिकता को हमें तथ्य, तर्क एवं प्रमाण के साथ उपस्थापित करना पड़ेगा। संस्कृतवाङ्मय में जनकल्याणार्थ अनन्त-ज्ञान एवं तथ्य निहित हैं जिनका उद्घाटन कर वर्तमान समाज एवं विश्व के समक्ष रखना न केवल हमारी जिम्मेदारी है अपितु हमारा परम ध्येय भी होना चाहिए। **आज भी प्राचीन संस्कृत साहित्य के हजारों ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, अठारहवीं शताब्दी से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अधुना पर्यन्त संस्कृतभाषा में विविध-विधाओं, विविध-विषयों पर रचित अनेक शास्त्रीय-ग्रन्थ, अनन्त साहित्यिक-रचनाएँ अनुसन्धान की परिधि से बाहर हैं।** जिनमें न जाने लोकोपयोगी ज्ञान विज्ञान के कितने तथ्य अन्तर्निहित हो।

इस सम्बन्ध में कतिपय सुझाव निम्नलिखित रूप से हो सकते हैं-

1- अनुसंधान-कार्य हेतु चयनित विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार ।

2- अनुसन्धान कार्य का विषय अन्तर्विषयक (Inter disciplinary) हो साथ ही सम्बद्धशास्त्र एवं विषय के सम्बर्द्धन, विकास तथा विस्तार में सहायक सिद्ध हो।

3- संस्कृतशिक्षा से सम्बद्ध समस्त अनुसंधान एवं प्रकाशन की सूचना किसी एक वेबसाइट या एजेन्सी पर यथाशीघ्र प्रेषित करने की समुचित व्यवस्था की जाय, तथा ऐसा करना संस्थानों के लिए अनिवार्य किया जाय।

4- अनुसंधान के विषय का सीमांकन अवश्य होना चाहिए । अन्यथा निष्कर्ष प्राप्ति की सम्भावना कम हो जाती है। अत्यन्त विस्तृत

एवं सीमा का निर्धारण नही होने से उसकी पूर्णता एवं व्यावहारिकता में सन्देह उपस्थित होने की सम्भावना बढ जाती है।

5- अनुसंधानकार्य में पूर्वकृत शोधकार्यो, शोधपत्रिकाओं, शोधपत्रों, सहायकग्रन्थों एवं समीक्षाग्रन्थों का स्थान सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

6-शोधकार्य में समस्या का निर्धारण एवं सम्भावित समाधान हेतु शोध प्रविधि का शास्त्रसम्मत-विधि एवं वैज्ञानिक-रीति से सुप्रयोग किया जाना चाहिए। इससे शास्त्र की परम्परा एवं मर्यादा का संरक्षण होगा तथा पूर्व-परम्परा से उसका सम्बन्ध स्थापित हो पाएगा।

7- शोध-निर्देशकों के द्वारा शोधार्थी को शास्त्रसम्मत दिशा-निर्देश प्रदान किया जाना चाहिए। जिससे शोधार्थियों को समुचित शोध-निर्देशन प्राप्त हो सके ।

8- प्रत्येक शास्त्र के पारिभाषिकशब्दों का शब्दकोश निर्माण हो, ताकि शोधार्थी संस्कृतवाङ्मय में उस शास्त्र के परिभाषिक-शब्दों से परिचित हो सके तथा उन शब्दों के शास्त्रगत अर्थो से अवगत हो सके । शोधार्थियों हेतु संस्कृतभाषा-संभाषण, एवं लेखन में दक्षता सुनिश्चित करने हेतु प्रशिक्षण की नैरन्तर्य-व्यवस्था।

9- विषय, संशय,पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष एवं निर्णय की प्रक्रिया का अनुसंधान में अनुपालन।

विषयो विषयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्।
निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकणं स्मृतम्।।

10- कृतकार्य-सर्वेक्षण एवं सम्बन्धित-साहित्य-सर्वेक्षण को अनुसंधान की प्रक्रिया का अनिवार्य अंग बनाना ।

11- अनुसंधानकार्य हेतु सामग्री-संकलन, उद्धरण आदि के लिए प्राथमिक साधनों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए न कि secondary source स्रोत का । अनुसंधान की प्रक्रिया में मूलग्रन्थों के वैशिष्ट्य को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

12- शोधार्थियों के लिए सम्पूर्ण शोध-प्रविधि का पूर्वशिक्षण सुनिश्चित करना तथा उस प्रविधि का अनुसंधान-कार्य में सर्वथा

अनुपालन।

13- स्तरीय शोधकार्यों के यथाशीघ्र प्रकाशन की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित करना। 14-14-प्रतिविभाग, प्रतिसंस्थान, प्रतिविश्वविद्यालयों के द्वारा अपने अपने संस्थानों में अबतक के कृत-शोधकार्यों की सूची वेबसाइट, इण्टरनेट पर उपलब्ध कराना एवं समग्र शोध-विषयों की सूची का ग्रन्थरूप में, या पत्रिका के रूप में प्रकाशन।

15- संस्कृतशिक्षा से सम्बद्ध सभी महाविद्यालयों, विद्यापीठों, शोधसंस्थानों, विश्वविद्यालयों के संस्कृतविभागों, एवं संस्कृतविश्वविद्यालयों का एक common website या सूचनातन्त्र विकसित किया जाय जहाँ इन संस्थानों से सम्बन्धित समस्त सूचनाएँ, अब तक किये गये, तथा किये जा रहे अनुसंधानकार्यों का विवरण उपलब्ध हो। साथ ही संस्कृतशिक्षा से सम्बन्धित सभी संस्थानों में अब तक हुए शोधकार्यों की विवरणिका का किसी एक संस्था के द्वारा कई खण्डों में यथाशीघ्र प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

16- U G C ds D.R.S-1, D,R.S- 2, Centar establishment, major research project, minor research project, Individual project इत्यादि के अन्तर्गत प्राप्त अनुदान के सहयोग से गम्भीर, अन्तर्विषयक, संस्कृतविद्या के प्रचार एवं प्रसार में सहयोगी विषयों, लोक समाज एवं राष्ट्रहित से सम्बद्ध विषयों पर स्तरीय शोधकार्य को प्रोत्साहन देना। इसके लिए संसाधनों की समुचित व्यवस्था करना।

17- विविधशास्त्रीय टीकाग्रन्थों का पाठ्यक्रम में समावेश किया जाना चाहिए, तथा टीकाओं में अन्तर्निहित शोध-सरणि के द्वारा शोधार्थियों में शोध-दृष्टि का विकास करना। वस्तुतः संस्कृत के मूलशास्त्रीय ग्रन्थों पर लिखे गये अनेक शास्त्रीय-टीकाग्रन्थ संस्कृतशिक्षा के समृद्ध एवं उत्कृष्ट अनुसंधान-पद्धति का सर्वाधिक सुन्दर निदर्शन है। इस उदाहरण के आधार पर वर्तमान समय में भी संस्कृतग्रन्थों पर टीकाग्रन्थों का निर्माण संस्कृतविद्या की श्रीवृद्धि में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे। विशेषतः अर्वाचीन संस्कृतसाहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण साहित्यिक-रचनाओं

के उपर टीकाओं का निर्माण वर्तमान संस्कृतशिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है। इस कार्य को अनुसंधान कार्य के द्वारा किया जा सकता है।

18- **संस्कृतशिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य को बढावा देने हेतु सभी शोधार्थियों के लिए विशिष्टाचार्य तथा विद्यावारिधि स्तर पर न्यूनतम 10,000 प्रतिमाह की राशि शोधवृत्ति के रूप में, तथा वार्षिक विविधव्यय हेतु 20,000 की राशि देने की व्यवस्था की जानी चाहिए, जो कि वर्तमान में 5,000- प्रतिमाह है। साथ ही प्रति संस्थान सभी शोधार्थियों के लिए पृथक छात्रावास का निर्माण किया जाना चाहिए। इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं मानवसंसाधनविकास मन्त्रालय, तथा अन्य संगठनों को प्रतिवेदन संस्थानों के द्वारा दिया जाना चाहिए।**

19- अन्तर्विषयक (Inter disciplinary) शोध को प्रोत्साहित करने हेतु तत्तद् विषयों एवं शास्त्रों में संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, सेमिनारों, परिचर्चा, शास्त्रार्थ, विशिष्टव्याख्यानमालाओं इत्यादि अनुसंधानपरक आयोजनों को बढावा दिया जाना चाहिए, प्रतिशास्त्र एवं प्रतिविषय के पाठ्यक्रमों में यथासंभव कतिपय पत्रों के अन्तर्गत शास्त्रान्तर तथा समान-प्रकृतिवाले विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए। जिससे स्नातकोत्तर स्तर पर अध्ययन करने वाले छात्रों में शोध की दृष्टि विकसित होगी। तुलनात्मकसाहित्य के अध्ययन से शोध के नये मार्ग उद्घाटित होंगे। अध्यापकों के समक्ष भी अनुसंधान के नयें नयें आयाम उद्घाटित होंगे। आचार्य स्तर की कक्षाओं से ही आचार्यो के द्वारा शोधात्मक अध्यापनपद्धति को अपनाया जाना चाहिए जिससे छात्रों में शोध दृष्टि का विकास हो सके और छात्र शोधकार्य की ओर उन्मुख हो सके।

20- **उत्कृष्ट शोधार्थियों को वृत्ति हेतु अपने अपने संस्थानों में वरीयता दिया जाना चाहिए जिससे की शोधार्थियों को प्रोत्साहन मिलें और वे अधिकतम श्रम से अनुसंधानकार्य में प्रवृत्त हो।** वर्तमान में संस्कृतशिक्षा की दो धाराएँ प्रचलित हैं यथा परम्परागत-धारा एवं आधुनिक-धारा (modern stream & Traditional stream)। संस्कृत के परम्परागत विद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यापीठों, शोधसंस्थानों,

संस्कृतविश्वविद्यालयों अन्य संस्कृत-संस्थानों में परम्परागत शास्त्रीय-पद्धति से पठन पाठन एवं अनुसंधान कार्य प्रवर्तित होता है। वहीं सामान्य विद्यालयों, महाविद्यालयों, संस्थानों विद्यापीठों एवं विश्वविद्यालयों के संस्कृतविभागों में आधुनिक-धारा के अन्तर्गत आधुनिक-पद्धति से पठन-पाठन एवं अनुसंधान-कार्य सम्पन्न होते हैं। परम्परागत धारा के अन्तर्गत जहॉ शिक्षण एवं शोध की भाषा संस्कृत है वही आधुनिक धारा के अन्तर्गत हिन्दी अंग्रेजी या क्षेत्रीय भाषाओं के द्वारा शिक्षण एवं शोधकार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

साथ ही दोनों धाराओं के पाठ्यक्रमों में भी अत्यधिक भिन्नता पायी जाती है। पाठ्यक्रम में एकरूपता नही होने की वजह से आधुनिक धारा के शोधार्थियों को परम्परागत धारा में कठिनाई प्रतीत होती है। ठीक यही स्थिति अध्यापन के स्तर पर भी दिखाई देती है।

संस्कृतशिक्षा के सशक्तिकरण हेतु विशेष रूप से अनुसंधाान के क्षेत्र में उत्कृष्टता हेतु परंपरागत-धारा में शास्त्रीयपद्धति से शिक्षण एवं अनुसंधान-पद्धति वाले शिक्षणसंस्थानों में शास्त्रीयपद्धति से परम्परागत धारा में शिक्षित एवं दीक्षित, तथा शास्त्रों में प्रविष्ट गति वाले व्युत्पन्न शोधार्थियों को अध्यापनकार्य हेतु वरीयता दिया जाना चाहिए। जैसा कि आधुनिक धारा के शिक्षण संस्थानों में अनिवार्य रूप से देखा जाता है।

चुनौतियाँ- संस्कृतशिक्षा के अन्तर्गत किये जा रहे अनुसंधानकार्यो की निम्नलिखित चुनौतियाँ हैं-

1- अनुसंधान को मौलिक नवीन एवं वैज्ञानिक रूप प्रदान करना- संस्कृतेतर जगत के द्वारा यह आरोप हमारे उपर लगाये जाते है कि इस क्षेत्र में किये जा रहे अनुसंधानकार्यो में नवीनता मौलिकता एवं वैज्ञानिकता का अभाव पाया जाता है। प्रायशः अधिकांश शोधकार्य पिष्ट-पेषण प्रतीत होते हैं अतः हमारा दायित्व है कि इस मानदण्ड पर हम खरे उतरे।

2- संस्कृतशिक्षा में क्रियमाण शोधकार्य को लोकोपयोगी समाजोपयोगी राष्ट्रोपयोगी सम्बद्ध विषयोपयोगी एवं सम्बन्धित क्षेत्र में प्रासङ्गिक

बनाना । सम्बद्ध शास्त्र एवं विषय के विकास एवं सम्वर्द्धन में उस शोध कार्य की प्रासङ्गिकता तय करना। इस दिशा में हमारा प्रयत्न होना चाहिए।

3- अनुसंधान कार्य की उच्च गुणवत्ता का निर्धारण करना।

4- शोधार्थियों के लिए वृत्ति की व्यवस्था ।

5- शोध-प्रबन्धों का संरक्षण तथा पुस्तक के रूप में प्रकाशन।

6- सुयोग्य शोधार्थियों का चयन।

7- संस्कृत शिक्षा के प्रति समाज एवं छात्रों का उन्मुखीकरण।

8- शोध-कार्य हेतु आधुनिक सुविधाओं की व्यवस्था, यथा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी।

9- शोधकार्य एवं शोध-प्रबन्ध के गम्भीर तथा न्यायोचित मूल्याङ्कन-पद्धति का निर्माण एवं क्रियान्वयन। इस दिशा में प्रयत्न की आवश्यकता।

10- कृतकार्य सर्वेक्षण की समुचित व्यवस्था करना।

11- संस्कृतशिक्षा को रोजगारोन्मुखी बनाना, संघ एवं राज्यसेवा आयोगों की परीक्षाओं में निर्धारित-पाठ्यक्रमों का विद्यापीठों एवं विश्वविद्यालयों के आचार्यविषयों में समावेश करना।

12- संस्कृत अध्येताओं कों इस दिशा में प्रेरित करना तथा इस हेतु विशेष दिशा निर्देश एवं परामर्शकेन्द्र की स्थापना करना।

13- संस्कृतशोधार्थियों को रोजगार के समस्त क्षेत्रों की जानकारी प्रदान करना तथा । U G C एवं अन्य सर्वकारीय agency के scheame के बारे में बताना। 14- संस्कृतशोधार्थियों के लिए संगणक-प्रशिक्षण, सूचना-प्रौद्योगिकी का प्रशिक्षण, अंग्रेजीभाषादक्षता का प्रशिक्षण प्रदान करना।

15- आधुनिकज्ञान-विज्ञान एवं वैश्विकसन्दर्भ के लिए तैयार करना।

16- सभी संस्कृत-छात्रों विशेषरूप से शोधार्थियों हेतु संस्कृत-संभाषण-कौशल का विकास।

अतः वर्तमान संस्कृतशिक्षा के सशक्तिकरण हेतु आवश्यकता है उन अनगिनत ग्रन्थों में अन्तर्निहित रहस्यों , मानवजीवनोपयोगी तत्वों , तथ्यों, समाज एवं राष्ट्रोपयोगी ज्ञानों, विचारों, उपायों , तरीकों, एवं संदेशों को अनुसंधान के द्वारा समाज एवं जनजीवन के समक्ष लाना तथा अनुसंधान के निष्कर्षो से समाज एवं राष्ट्र के समक्ष विद्यमान एवं आनेवाली चुनौतियों, समस्याओं, रोगों एवं कुविचारों का निवारण किया जा सके।

संस्कृतभाषा का साहित्य सदैव मानव, समाज एवं राष्ट्र का पथप्रदर्शक रहा है, मार्गदर्शन करता रहा है, साथ ही उस शुभ एवं जनकल्याण के पथ में आनेवाली बाधाओं, अवरोधों एवं समस्याओं का व्यावहारिक तथा तार्किक समाधान भी संस्कृतवाङ्मय प्रदान करता रहा है। आज भी संस्कृतवाङ्मय में अनेकानेक बहुमूल्य विचार, अमूल्य तथ्य, विशिष्ट एवं लोकोपयोगी ज्ञान, विज्ञान भरे पड़े है जिनका सम्पूर्ण विश्व को जरूरत है। विज्ञान हो या अभियान्त्रिकी, प्रबन्धन हो या पर्यावरण, समाजशास्त्र हो या राजशास्त्र गणितशास्त्र हो या अर्थशास्त्र, चिकित्साविज्ञान हो या योगविज्ञान, प्रबन्धन हो या मानवविज्ञान, व्यवहारज्ञान हो या मूल्यपरकज्ञान, मानवधर्म हो या राष्टधर्म, भूगर्भविज्ञान हो या नक्षत्रविज्ञान, भूगोल हो या जीवनविज्ञान, व्यक्तित्वनिर्माण हो या राष्टनिर्माण, या चरित्रनिर्माण, व्यवसायिकशिक्षा हो या तकनीकीशिक्षा सभी विषय संस्कृतवाङ्मय में प्रचुर रूप से वर्णित हैं विवेचित हैं। आवश्यकता है उसे शोधकार्य के द्वारा सरल एवं सहज भाषा में जनसामान्य के समक्ष लोककल्याणहेतु लाने की और उसे बताने की। इसके दो महत्वपूर्ण लाभ हैं एक तो संस्कृतवाङ्मय का पुनः नवीनीकरण होगा तथा दूसरा लोगों में संस्कृत के प्रति सहज आकर्षण पैदा होगा। फलतः वर्तमानसमाज संस्कृतशिक्षा के प्रति उन्मुख होगा। इति।

संस्कृत शिक्षा के उन्नयन में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की भूमिका

डॉ. मनीषा तनेजा पाहुजा
अतिथि अध्यापिका, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय
संस्कृत विद्यापीठम्, नवदेहली-1100016

'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा।' यह उक्ति द्योतक है भारत की प्रतिष्ठा तथा भारत का गर्व कही जाने वाली संस्कृति की। विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में अग्रगण्य तथा प्रत्येक दृष्टि से अपना महत्व सिद्ध कर चुकी संस्कृत भाषा आज एक ऐसे रास्ते पर खड़ी है जहाँ से कोई ही गुजरना पसन्द करता है। स्कूली छात्रों में इस विषय के प्रति घटती रुचि जिसके लिए विभिन्न कारक उत्तरदायी हैं एक बहुत ही अंधकारमय भविष्य की ओर संकेत कर रहा है। भारत पूरे विश्व में अपनी संस्कृति एवं मूल्यों के लिए प्रसिद्ध है। संस्कृत भाषा जो कि ज्ञान का एक अथाह सागर है धीरे-धीरे लुप्त होने के कारण हमें अपनी जड़ों अर्थात् हमारी संस्कृति और मूल्यों से भी हमें दूर कर रही है। वर्तमान में यदि हम देखें तो संस्कृत के प्रसार व प्रचार में कुछ संस्कृतनिष्ठ गुरुकुल, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय भी लगे हुए हैं। जैसे-राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर, जगद्गुरु आदिशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, केरल, श्री सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, गुजरात आदि।

संस्कृत शिक्षा के उन्नयन में विभिन्न संस्कृतनिष्ठ संस्थाएँ अपना योगदान दे रही हैं। परन्तु यहाँ पर राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली के योगदान पर आपका ध्यानाकर्षण करने का प्रयास किया जा रहा है।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की स्थापना १५ अक्टूबर १९७० को एक स्वायत्त संगठन के रूप में भारत सरकार ने संस्कृत आयोग (१९५६-५७) की अनुशंसा के आधार पर संस्कृत के विकास तथा प्रचार-प्रसार हेतु संस्कृत सम्बद्ध केन्द्र सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के उद्देश्य से की। १७ मई २००२ को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने इसे बहुपरिसरीय मानित विश्वविद्यालय के रूप में घोषित कर दिया। राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान देश का एकमात्र बहुपरिसरीय बृहत्तम संस्कृत विश्वविद्यालय है। इसका मुख्य उद्देश्य– पारंपरिक संस्कृत विद्या व शोध का प्रचार, विकास व प्रोत्साहन है। वर्तमान में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली मुख्यालय परिसर के अतिरिक्त अखिल भारतीय स्तर पर दस निम्नलिखित परिसर हैं :–

१) गंगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश

२) श्री सदाशिव परिसर, पुरी, उडीसा

३) श्री रणबीर परिसर, जम्मू

४) गुरुवायूर परिसर, केरल

५) जयपुर परिसर, राजस्थान

६) लखनऊ परिसर, उत्तर प्रदेश

७) राजीव गाँधी परिसर, श्रृंगेरी, कर्णाटक

८) वेदव्यास परिसर, हिमाचल प्रदेश

९) भोपाल परिसर, मध्यप्रदेश

१०) के.जे. सोमय्या संस्कृत विद्यापीठ, मुम्बई, महाराष्ट्र

११) एकलव्य परिसर, अगरतला

तथा अन्य दो परिसर हरियाणा तथा चैन्नई में शीघ्रातिशीघ्र खुलने जा रहे हैं।

संस्कृत शिक्षा के उन्नयन हेतु संस्थान विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का आयोजन कर रहा है जिनका विवरण इस प्रकार है–

१. शिक्षण – संस्थान के विभिन्न परिसरों, संस्थान द्वारा संचालित और संस्थान द्वारा सम्बध संस्कृत संस्थाओं में संस्थान द्वारा निर्मित पाठयक्रम के आधार पर प्राक्शास्त्री से लेकर आचार्य स्तर तक का शिक्षण सम्पादित किया जाता है।

२. प्रशिक्षण – संस्थान द्वारा संस्कृत में बी.एड. के समकक्ष शिक्षाशास्त्री की उपाधि हेतु एक शैक्षणिक सत्र के शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तथा एम.एड. के समकक्ष, शिक्षाचार्य की उपाधि हेतु भी एक शैक्षणिक-सत्र के शिक्षक-प्रशिक्षक पाठ्यक्रम का संचालन भी किया जाता है।

३. शोध – सभी परिसरों में छात्रों का शोध हेतु पंजीयन संस्थान द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्रवेश-परीक्षा में सफलता के आधार पर या नेट उत्तीर्णता के आधार पर होता है और शोध कार्य के सफल समापन पर उन्हें पी.एच.डी. के समकक्ष विद्याविधि की उपाधि प्रदान की जाती है।

शोध के क्षेत्र–

i) संस्थान संस्कृत वाङ्गमय के विभिन्न अंगों पर शोध कार्यक्रमों के उत्तरदायित्व का निर्वहन करता है।

ii) संस्थान द्वारा प्राचीन पाण्डुलिपियों पर अनुसंधान को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है।

iii) गंगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद का एकमात्र उद्देश्य शास्त्रों की चयनित शाखाओं में शोध का सम्पादन है।

४. प्रकाशन – संस्थान अपने अंगभूत परिसरों द्वारा सम्पादित शोधग्रन्थों और दुर्लभ संस्कृत पाण्डुलिपियों का प्रकाशन करता है। अभी तक संस्थान ने ५०० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। संस्थान मुख्यालय द्वारा **'संस्कृत-विमर्श'** नामक अर्धवार्षिक तथा गंगानाथ झा परिसर द्वारा त्रैमासिक शोध-पत्रिका और **'उशती'** नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। संस्थान मौलिक संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु विद्वानों एवं संस्थाओं को ८० प्रतिशत आर्थिक सहायता

प्रदान करता है। प्रकाशकों के माध्यम से अप्राप्य तथा दुर्लभ संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता भी संस्थान द्वारा दी जाती है। संस्थान समय-समय पर विभिन्न ग्रन्थमालाओं का प्रकाशन करता है। अब तक संस्थान की निम्नलिखित (८) ग्रन्थमालाएँ आरंभ की जा चुकी हैं।

i) रजत-जयन्ती ग्रन्थमाला

ii) स्वर्ण-जयन्ती ग्रन्थमाला

iii) संस्कृतवर्ष स्मृति ग्रन्थमाला

iv) लोकप्रियग्रन्थमाला के पुनर्मुद्रण की ग्रन्थमाला

v) शास्त्रीयग्रन्थमाला के पुनर्मुद्रण की ग्रन्थमाला

vi) पालि अध्ययन ग्रन्थमाला

vii) प्राकृत अध्ययन ग्रन्थमाला

viii) दुर्लभ ग्रन्थों के पुनर्मुद्रण की ग्रन्थमाला

५. संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रहण एवं संरक्षण– संस्थान संस्कृत पाण्डुलिपियों का संग्रहण एवं संरक्षण भी करता है। शुल्क के आधार पर संस्थाओं को पाण्डुलिपियों की प्रतियाँ भी उपलब्ध कराता है। गंगानाथ झा परिसर के पाण्डुलिपि-संग्रहालय में विभिन्न शास्त्रों से संबंधित ५२,००० से भी अधिक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। जम्मू, पुरी, गुरुवायूर तथा श्रृंगेरी के परिसरों में भी दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ हैं। पाण्डुलिपियों का डिजीटलाइजेशन भी प्रक्रिया में है।

६. दूरस्थ शिक्षा, पत्राचार एवं अनौपचारिक रीति से संस्कृत शिक्षण, शिक्षक-प्रशिक्षण तथा स्वाध्याय सामग्री का निर्माण।

i) मुक्तस्वाध्यायपीठम् (दूरस्थ शिक्षा)– संस्थान के मुख्यालय में मुक्तस्वाध्यायपीठ तथा स्वाध्याय केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं। प्राक्शास्त्री, शास्त्री और आचार्य पाठ्यक्रम दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत संस्थान द्वारा आरंभ किए गए हैं। चार प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम पालि, प्राकृत,

संगणकीय भाषा विज्ञान (Computational Linguistics) तथा नाट्य शास्त्र भी आरम्भ किए गए हैं।

ii) पत्राचार के माध्यम से संस्कृत शिक्षण– संस्थान देश-विदेश के प्रारंभिक संस्कृत शिक्षाणार्थियों को हिन्दी एवं अंग्रेज़ी माध्यम से संस्कृत भाषा सिखाने हेतु द्विवर्षीय पत्राचार का संचालन करता है।

iii) अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण– संस्थान अखिल भारतीय स्तर पर अनौपचारिक संस्कृत शिक्षण केन्द्रों के माध्यम से क्रमिक संस्कृत स्वाध्याय सामग्री जिसे दीक्षा पाठ्यक्रम कहते हैं, का संचालन करता है।

iv) संस्कृत भाषा शिक्षक प्रशिक्षण– संस्थान संस्कृत भाषा शिक्षण हेतु अखिल भारतीय स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है।

v) शास्त्रीय ग्रन्थों का शिक्षण– संस्थान शास्त्रीय ग्रन्थों के विशिष्ट अध्ययन एवं शिक्षण हेतु विशिष्टाध्ययन कार्यक्रम का आयोजन करता है।

vi) स्वाध्याय सामग्री का निर्माण– संस्थान संस्कृत भाषा शिक्षण की मुद्रित एवं इलेक्ट्रॉनिक सामग्री का निर्माण एवं उसका प्रचार-प्रसार भी करता है।

vii) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से संस्कृत का उन्नयन– संस्कृत के उन्नयन हेतु संस्थान कुछ कार्यक्रमों को दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों पर प्रसारित भी करता है। ये कार्यक्रम डी डी भारती चैनल, ज्ञानदर्शन तथा डी डी-१ चैनल पर देखे जा सकते हैं।

७. छात्रवृत्तियाँ– सभी परिसरों व अखिल भारतीय संस्थान छात्रवृत्तियाँ प्रदान करता है। प्रत्येक वर्ष परंपरागत श्रेणी में पूर्वमध्यमा से आचार्य व विद्यावारिधि में तथा आधुनिक श्रेणी में कक्षा ९ से पी.एच.डी. तक संस्कृत में मेधावी छात्रों को संस्थान छात्रवृत्तियाँ प्रदान करता है।

८. केन्द्र सरकार की योजनाएँ– संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार हेतु मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आरंभ की जाने वाली १२ योजनाओं का क्रियान्वयन संस्थान कर रहा है–

i) शास्त्र चूड़ामणि योजना– इस योजना के अंतर्गत सेवानिवृत्त संस्कृत के विद्वानों को दो वर्ष के लिए (एक वर्ष का विस्तरण) संस्थान के विभिन्न परिसरों में तथा अन्य संस्कृत संस्थानों में नियुक्त किया जाता है जिससे युवा पीढ़ी को विभिन्न शास्त्रों में ज्ञान प्रदान किया जा सके।

ii) पुस्तक विक्रय योजना– इस योजना के अंतर्गत विश्वसनीय संस्कृत की पुस्तकें लेखकों व प्रकाशकों से विक्रय की जाती हैं तथा उन्हें निःशुल्क अच्छे संस्कृत संस्थानों में वितरित किया जाता है।

iii) संस्कृत शब्दकोश योजना– १५०० ई.पू. से संस्कृत के ऐतिहासिक सिद्धान्तों को **'इन्साइक्लोपेडिक संस्कृत शब्दकोश'** के निर्माण की योजना का कार्यभार पूना के डक्कन कालेज को सौंपा गया है। संस्थान इसके लिए वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा है।

iv) व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना– इस योजना के अंतर्गत चयनित संस्थानों को विभिन्न व्यवसायोन्मुखी कार्यशालाओं के आयोजन हेतु वित्तीय अनुदान की सहायता प्रदान की जाती है।

v) आदर्श संस्कृत महाविद्यालयों/शोध संस्थानों को वित्तीय सहायता– इस योजना के अंतर्गत देश के विभिन्न भागों में २५ संस्थाएँ कार्य कर रही हैं तथा उन्हें अनुदान प्रदान किया जा रहा है।

vi) राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित विद्वज्जनों को अनुदान– संस्थान ने राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त विद्वानों के लिए रु. ५०,०००/- की राशि निश्चित की है। इन विद्वानों के सम्मान हेतु महर्षि बादरायण पुरस्कार भी आरंभ किया है जिसकी राशि एक लाख रुपये है। अधिकतम पाँच विद्वानों को यह पुरस्कार दिया जा सकता है। २००९-१० से संस्कृत विद्वानों के लिए ५ लाख रुपये निश्चित कर दिए गए हैं।

vii) अखिल भारतीय शास्त्रीय स्पर्धा– ये कार्यक्रम संस्कृत के उन्नयन के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा ८ शास्त्रों में नियोजित किए गए हैं तथा ३ शास्त्रों में शलाका परीक्षा का आयोजन भी

किया गया है।

viii) स्वैच्छिक संस्कृत संगठनों को वित्तीय सहायता– इस योजना के अंतर्गत चयनित संस्कृत संगठनों को अध्यापकों के वेतन, छात्रों को छात्रवृत्तियों, पुस्तकालय, अनुदान व भवन निर्माण के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

ix) ज़रूरतमन्द परिस्थितियों में संस्कृत पण्डितों को सम्मान राशि सहायता– संस्थान ज़रूरतमन्द संस्कृत पण्डितों को रु. २४,०००/- की राशि प्रतिवर्ष सम्मान के रूप में देता है।

x) संस्कृत पाठशालाओं में आधुनिक अध्यापकों को वित्तीय सहायता– संस्थान रु. ६०००/- प्रति माह की राशि संस्कृत पाठशालाओं में आधुनिक अध्यापकों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

xi) प्रान्तीय सरकारी विद्यालयों में संस्कृत अध्यापकों को वित्तीय सहायता– प्रान्तीय सरकारी विद्यालयों में जहाँ सरकार संस्कृत अध्यापक नहीं रख सकती है वहाँ एक संस्कृत अध्यापक को संस्थान वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

xii) एन.जी.ओ./विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता– संस्कृत के विकास के लिए विभिन्न प्रायोजनाओं हेतु एन.जी.ओ.तथा विश्वविद्यालयों को संस्थान वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

९. अखिल भारतीय स्तर पर संस्थान International Association of Sanskrit Studies (IASS) के साथ मिलकर ६ बार विश्व सम्मेलन का आयोजन कर चुका है। संस्थान SARIT (शिकागो विश्वविद्यालय) तथा ECAF (पेरिस) के सहयोग से भी संस्कृत के उन्नयन हेतु कार्य कर रहा है।

१०. संस्कृत भाषा से अन्य भारतीय भाषाओं में शब्दकोश का प्रोजेक्ट चल रहा है।

११. युवा महोत्सव, कवि-सम्मेलन, नाट्यमहोत्सव, संस्कृत सम्मेलन, सेमिनार आदि का आयोजन भी संस्थान समय-समय पर करता रहता है।

उपरोक्त वर्णित गतिविधियाँ ऐसी हैं जिन्हें कोई संस्कृतविद् ही समझ सकता है। जनसाधारण यदि संस्कृत भाषा के बारे में अपनी जिज्ञासा की पिपासा को शान्त करना चाहता है तथा अपने ज्ञान के भण्डार में वृद्धि करना चाहता है तो भी उसके लिए संस्थान की वेबसाइट पर बहुत कुछ है जैसे संस्कृत विद्वानों का सामान्य परिचय, संस्कृत एवं ज्योतिष, रसायन, अभियान्त्रिकी इत्यादि विज्ञान, सुभाषितानि आदि। वेबसाइट पर जिज्ञासु E-Library का भी लाभ उठा सकते हैं। सौ से भी अधिक E-books भी वेबसाइट पर जनसाधारण हेतु आसानी से उपलब्ध हैं।

'ज्ञानं वयः न समीक्ष्यते' शास्त्रों की यह उक्ति हमें यहाँ यह शिक्षा प्रदान करती है कि संस्थान द्वारा किया जाने वाला संस्कृत के उन्नयन में कार्य वस्तुतः प्रशंसनीय है। संस्थान संस्कृत की अन्य संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों के लिए एक आदर्श स्वरूप है। हमें इसे एक मॉडल (आदर्श) के रूप में स्वीकार करना चाहिए। हमारा यह मानना है कि जिस गति से संस्थान संस्कृत के विषय में अपना योगदान दे रहा है यदि उसका कुछ प्रतिशत भी अन्य संस्थाएँ कर पाएँ तो निश्चित ही संस्कृत प्रचार-प्रसार से संबंधित जो चुनौतियाँ आज हमारे सामने आ रही हैं उनका समाधान पूर्ण रूप से संभव है। कहा जा सकता है–

यूँ ही नहीं मिलती राही को मंज़िल,
एक जुनून सा दिल में जगाना होता है,
पूछा चिड़िया से कैसे बना आशियाना, बोली–
भरनी पड़ती है उड़ान बार-बार
तिनका तिनका उठाना होता है।

संस्कृत शिक्षा में व्यावसायीकरण

जितेन्द्र कुमार
अतिथि व्याख्याता, शिक्षाशास्त्र विभाग
श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

संस्कृत भाषा की समृद्धि को रोजगारोन्मुखी बनाने के लिए आज के इस तकनीकी युक्त द्रुत काल में व्यावसायीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है।

संस्कृत भाषा संस्कृति का आधार है, असहाय नहीं।
समुचित प्रयासों से उपलब्ध करा सकती है, व्यवसाय सभी।।

अध्यापक, ज्योतिष या फिर पुजारी।
प्रयास हो अथक तो बन सकते हैं अधिकारी।।
व्यवसाय तो और भी हैं समाज में।
उनमें कब आ पाएगी हमारी बारी।।

उपरोक्त पंक्तियाँ संस्कृत शिक्षार्थियों के रोजगार सम्बन्धी विकल्पों पर प्रकाश डालती हैं।

आज जब हम पुनः अपभ्रंश की ओर अग्रसर हैं तब किसी भी भाषा की व्याकरण को सुरक्षित रखना परमावश्यक होता जा रहा है। ऐसे समय में जब हमारा छात्र परिश्रम के स्थान पर सफलता प्राप्ति के लघु मार्ग (Short cuts) ढूँढ़ता है तब उससे प्रत्यक्ष परिश्रम की अपेक्षा करते हुए संस्कृत को पुनः स्थापित करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुरूह कार्य जरूर है। इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए संस्कृत निष्ठ या संस्कृतबद्ध शिक्षा के माध्यम से संस्कृत भाषा की समृद्धि हेतु एक प्रतिमान की कल्पना की जा रही है जोकि निम्न प्रकार से है:–

V.R.D. Model for Vocationalisation of Sanskrit Education

संस्कृत शिक्षा का दूरदृष्टि, तर्क, निर्णय व्यावसायीकरण प्रतिमान

Where जहाँ पर V – Vision दूरदृष्टि

R – Reason तर्क

D – Decision निर्णय

अवधारणाएँ:–

1. संस्कृत भाषा का व्याकरण विश्व की समस्त भाषाओं में श्रेष्ठ है।
2. संस्कृतनिष्ठ ज्ञान को प्रचारित प्रसारित करके संस्कृत शिक्षा के माध्यम से संस्कृत भाषा का संवर्धन किया जा सकता है।
3. संस्कृत भाषा का वाङ्मय ज्ञान का स्रोत एवं विपुल भण्डार है।
4. इस प्रतिमान के प्रत्येक तत्व अन्तर्सम्बंधित एवं अन्तर आश्रित है।
5. संस्कृत शिक्षा के माध्यम से ही संस्कृत के भाषा प्रधान रूप को पुनः स्थापित किया जा सकता है।
6. अन्तरविषयी अध्ययन से ज्ञान को नवीनता प्रदान कर ज्ञान के भण्डार को बढ़ाया जा सकता है।

प्रतिमान समीकरण (Model Equation):–

S.E. = f (S.L., S.K.)

Where - जहाँ

S.E. - संस्कृत शिक्षा

S.L. - संस्कृत भाषा

S.K. - संस्कृत भाषाबद्ध ज्ञान

उपरोक्त अवधारणा को ध्यान में रखते हुए यह समीकरण यह इंगित करता है कि संस्कृत शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा संस्कृत भाषा एवं संस्कृत सम्बन्धित ज्ञान को चिर् काल तक जीवित रखते हुए उसे अजर व अमर बनाया जा सकता है।

प्रक्रिया:–I वर्तमान प्रणाली में अनुकूलन द्वारा–इसके अन्तर्गत वर्तमान प्रणाालीी में संस्कृत निष्ठ ज्ञान को संस्कृत भाषा के संवर्धन में

उपयोग किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत M.A. Sanskrit, B.A. Sanskrit में छात्रों को अनुवाद, शोध व विश्लेषण कार्यों में लगाया जाना चाहिए।

II V.R.D. प्रणाली—इसमें गुरुकुल से विश्वविद्यालय तक एक ही प्रांगण में ज्ञान विज्ञान का प्रचार प्रसार हो ऐसे स्थान की परिकल्पना की गई है। इसमें दशम् कक्षा तक संस्कृतनिष्ठ शिक्षा के बाद प्रवीणता परीक्षा के आधार पर छात्रों को सहकारी समूहों में विभाजित करके संस्कृतबद्ध विभिन्न विषयों को आधुनिक विषयों से जोड़कर संस्कृत के छात्रों के लिए अधिकाधिक व्यवसायों एवं रोजगारों का सृजन किया जा सकता है। जैसे—

संस्कृत आधारित ज्ञान, ज्योति शुल्व पाक रत्न आयुर्विज्ञान वेद व अन्य, आधुनिक विषय अंतरिक्ष आर्किटेक्चर होटल, आभूषण आधुनिक शोध द्वारा
विज्ञान मैनेजमेन्ट डिजाइन मेडिकल साईंस से प्रचार प्रसार

इसके अगले चरण में पहले तो ये पाठ्यक्रम U.G.C. आदि अभिकरणों से पूर्व स्वीकृति से प्रारम्भ किए जाने चाहिए ताकि इनमें अध्ययनरत छात्रों को सामाजिक स्वीकृति आसानी से मिल सके। यदि ऐसा न हो सके तो इस चरण के उप चरण में इन छात्रों को आधुनिक पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करने के लिए सेतु कार्यक्रमों का प्रयोग करके विशिष्ट पाठ्यक्रमों में प्रवेशित किया जा सकता है।

वित्त की व्यवस्था— 1. इस प्रणाली को संचालित करने के लिए समाज से दान, सरकार व उद्योगों से अनुदान प्राप्त करके तथा उद्योगों द्वारा प्रायोजित कराकर वित्त की व्यवस्था की जा सकती है।

2. छात्रों से प्राप्त शुल्क से भी वित्त व्यवस्था की जा सकती है।

3. संस्थान अपना प्रकाशन खोलकर, सभागारों को गोष्ठियों आदि के लिए किराए पर देकर भी वित्त का प्रबंध किया जा सकता है।

4. रंगभूमि (Amphitheatre) का प्रयोग विभिन्न नाटकों के मंचन द्वारा वित्त व्यवस्था बनाने में किया जा सकता है।

प्रतिमान की सफलता हेतु सुझाव—

1. सर्वप्रथम अंग्रेजी के समक्ष संस्कृत को हीन समझना छोड़ना पड़ेगा।

2. आत्मविश्वास के संचार की आवश्यकता है।
3. अग्रसरण के स्थान पर समर्पण के सिद्धान्त को अपनाना होगा। (Devotion instead of promotion)
4. भाषा की जटिलता को समाप्त कर हमें संस्कृत भाषा को देव भाषा के स्थान पर इसे जन भाषा बनाना होगा।
5. गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में आधुनिक विषयों का शिक्षण भी अनिवार्य रूप से होना चाहिए।
6. संस्कृत भाषा को ज्ञान प्राप्ति का माध्यम बनाना चाहिए, ज्ञान के विकास का अवरोध नहीं।
7. चारित्रिक विकास को शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बनाए रखना चाहिए।
8. संस्कृत को रटने के स्थान पर समझने के सिद्धान्त पर अग्रसारित करना चाहिए।
9. दबाव के स्थान पर तरोताजा के सिद्धान्त को अपनाना होगा। (Refresher instead of Pressure)
10. लचीलेपन के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए।
11. समय, परिप्रेक्ष्य एवं समाज की आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम में परिवर्तन करते रहना चाहिए।

उपसंहार–

छोड़ दे अब हम लगाना कयास।
प्रारम्भ करें यदि हम अभी प्रयास॥
बढ़ेगा सृजन होने लगेगा विकास।
मिलने लगेंगे व्यवसाय और
होने लगेगा सफलता का आभास॥

हमने सुना बखान, हमने किया बखान।
दूर कर समस्त व्यवधान, प्रारम्भ करे अनुसंधान॥
खोज कर उपलब्ध कराए वो समस्त ज्ञान।
जो पुनः विश्व गुरू बना हमें और बढ़ाए भारत की शान॥

संस्कृत शिक्षा का प्रसार, विकास एवं चुनौतियाँ

शिवदत्त आर्य
अतिथि व्याख्याता, शिक्षाशास्त्र विभाग,
श्री ला.ब.शा.रा.सं.वि.नई दिल्ली

प्राचीनकाल से ही संस्कृतशिक्षा को लेकर एक अलग प्रकार की धारणा लोगों के मन में बनी हुई है कि इसका भौतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन सत्य यह है कि हमारा देश पाश्चात्य देशों की तरह कहीं न कहीं भौतिकवाद में विश्वास करता है और जिसका मुख्य कारण संस्कृत के क्षेत्र में वर्तमान समय तक हम उस स्वरुप को प्राप्त नहीं कर पाये है जिसका गुणगान हम सभाओं में तो करते रहते हैं परन्तु उसकी वास्तविकता पर बहुत ही कम प्रकाश डालते हैं तथा उससे सम्बद्ध व्यावहारिक कार्य भी नहीं करते हैं। संस्कृत शिक्षा के प्रसार और विकास के सन्दर्भ में भी यही मुख्य बात है। चुनौतियों के सन्दर्भ में पहले भी चर्चा होती रही और आज भी हो रही है तथा आगे भी भविष्य में होती रहेगी लेकिन आवश्यकता है वास्तविकता के धरातल पर उतरने की क्योंकि उसके बिना संस्कृत शिक्षा का प्रसार एवं विकास संभव नहीं है और ऐसे कार्यों की जरुरत है, जो इसके प्रसार और विकास में सहायक हों। संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास के सम्बन्ध में गत वर्ष अक्टूबर मास में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान ने संस्कृत के महत्त्व पर एक राष्ट्रिय संगोष्ठी लखनऊ में आयोजित की थी जहां पर विभिन्न संस्कृतविश्वविद्यालयों के कुलपतियों द्वारा शोधालेख प्रस्तुत किये गये, जिनमें मुख्य मुद्दा संस्कृत का सरलीकरण,मुक्तस्वाध्याय, विद्यापीठों की स्थापना, संस्कृत को आधुनिक विषयों के साथ सम्बद्ध करना और क्षेत्रीय भाषाओं में संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद इत्यादि विषयों पर बल दिया गया। द्वितीय संस्कृत आयोग ने भी इन विषयों पर बल देते हुए कहा है कि

प्रत्येक विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग की अनिवार्यता और आधुनिक विषयों से इसकी सम्बद्धता पर जोर दिया जाये साथ ही प्रत्येक विश्वविद्यालय में अनुवाद विभाग की स्थापना पर भी बल दिया गया है। अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि ऐसे कौन से उपाय है जिनके माध्यम से संस्कृत शिक्षा का प्रसार किया जा सकता है-

1. आधुनिक जगत शिक्षा उसी को मानता है जिसके माध्यम से व्यावहारिक तथा भौतिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। अतः इस बात को ध्यान में रखते हुए संस्कृत विषयों में जो आधुनिक विषयों की सम्बद्धता है उसकी जानकारी हमें आज के युवा समाज को देनी होगी दिङ्मात्र जैसे अगर इन्जीनियरिंग के छात्रों और अध्यापकों को वास्तुशास्त्र का ज्ञान कराया जाये तो संस्कृत को नई दिशा मिलेगी। अर्थशास्त्र का ज्ञान यदि हमारे राजनीतिज्ञों और अर्थशास्त्रियों को कराया जाये तो देश में विद्यमान समस्याओं और अर्थजगत की कमियों को दूर करने में सहायता मिलेगी। तर्कशास्त्र या न्यायशास्त्र यदि न्यायाधीश जानता है तो निश्चित ही वह उचित न्याय करने में समर्थ होगा। योगशास्त्र एवं चरकसंहिता जैसे ग्रन्थों के विषय में यदि डॉक्टर को ज्ञान है तो वह सरलता से इलाज करने में सक्षम हो सकता है। ऐसे ही नाट्यशास्त्र जैसे ग्रन्थों को पढ़कर अभिनय क्षेत्र में कार्य करना श्रेयकर होगा।

2. संस्कृत शिक्षा के प्रसार और विकास के सन्दर्भ में भाषा को हमें दुरुह नहीं बनाना चाहिए क्योंकि हमें समाज तक उसको पहुँचाना है तो उसका सरलीकरण अपेक्षित है ताकि लोगों की उसके प्रति रुचि जागृत हो तथा उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो कि संस्कृत को हम भी सीख सकते हैं।अतः अधिक से अधिक मुक्तस्वाध्याय केन्द्रों की स्थापना हो। जिससे व्यक्ति अपनी सुलभता से अपने सामाजिक जीवन में व्यस्तता से कुछ समय निकाल कर संस्कृत शिक्षा की ओर उन्मुख होगा तथा उसे अपने व्यवहार में शामिल कर संस्कृत शिक्षा के प्रसार में सहयोग प्रदान करेगा।

3. संस्कृत के ग्रन्थों पर दुरुह से दुरुह टीका तो मिल जाती है लेकिन बहुत ही कम ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद

का कार्य हुआ है। संस्कृत के प्रसार में यह एक क्रान्तिकारी पहल है यदि अधिक से अधिक संस्कृत भाषा के ग्रन्थों को मूल संस्कृत के साथ क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद किया जाये ताकि संस्कृत में निहित विषयवस्तु का ज्ञान करने के साथ अपनी भाषा के द्वारा सामान्य व्यक्ति भी संस्कृत के प्रति अग्रसर हो। इसी प्रकार क्षेत्रीयभाषाओं में रचित ग्रन्थों को संस्कृत में अनुवाद करना भी संस्कृत के प्रसार में मील का पत्थर साबित होगा।

4. आधुनिक तकनीकी के माध्यम से संस्कृत को जोड़ना और जो बच्चे संस्कृत भाषा को उच्चारण में कठिनाई अनुभव करते है उनको ध्वनि यन्त्रों के माध्यम से उच्चारण सीखाया जाये और इसकी शुद्धता के महत्त्व को बताया जाये। इस प्रकार संस्कृत के प्रति उदासीनता के भाव को समाप्त कर संस्कृत शिक्षा का प्रसार किया जा सकता है।

5. आधुनिक विश्वविद्यालयों के अनुसार परम्परागत विश्वविद्यालयों को भी अपने पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है अर्थात् संस्कृत विषय को छात्र तभी रुचिपूर्वक पढ़ेंगे यदि उनका पाठ्यक्रम अधिक से अधिक प्रतियोगिताओं में निर्धारित पाठ्यक्रम से सम्बद्ध हो। इससे छात्र अपनी शिक्षा को रोजगारोन्मुख कर प्रतियोगी परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर रोजगार प्राप्त करेंगे तथा निश्चित ही संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास के लिए कार्य करेंगे।

वर्तमान में संस्कृत के विकास की ओर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि संस्थाओं में संस्कृत शिक्षा की स्थिति अच्छी नहीं है। कुछ संस्थाओं के उन्नति करने से पूरे संस्कृत क्षेत्र को नहीं आँका जा सकता। संस्कृत के ग्रन्थों का लेखन कार्य पहले भी होता था और अब भी हो रहा है लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर नहीं हो रहा है। संस्कृत शिक्षा के विकास में पाश्चात्य विद्वानों का भी योगदान है यह हम नहीं भूल सकते इस लिए संस्कृत के विकास के लिए अंग्रेजी भाषा का भी सहारा लेना परमावश्यक है। ब्रिटिश शासन काल में भारतीय रजवाड़े पारम्परिक भारतीय जीवन के मनोहर तथा स्वाभाविक प्रतिरूप बने रहे। राजदरबारों में सदैव संस्कृत के विद्वानों का समादर होता था। यदि राजा महाराजाओं का प्रचुर समाश्रयण न प्राप्त हुआ होता तो संस्कृत

के विद्वानों की तथा भारतीय संगीत की परम्परा न जाने पतन के किस गर्त में गिर गयी होती । पारिवारिक तथा राष्ट्रीय उत्सव-पर्वों के अवसरों पर विद्वानों तथा संगीताचार्यों को सम्मानित करने के अतिरिक्त इन नरेशों ने संस्कृत शिक्षा के विकास के क्षेत्र में दो और भी बहुमूल्य योगदान दिये। वह योगदान यह था कि अपने राजमहल के पुस्तकालयों में प्राचीन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों का संग्रह करना तथा संस्कृत विद्यालयों को स्थापित करना इस सन्दर्भ में दरभङ्गा, विजयानगरम्, बड़ौदा, नागपुर, जयपुर, इन्दौर, ग्वालियर, मैसूर, त्रावणकोर, कपूर्थला, पटियाला, जम्मू तथा कश्मीर ऐसे गणमान्य रजवाड़ों की चर्चा की जा सकती है इन रजवाड़ों ने अपने राज्यों में संस्कृत विद्यालयों की स्थापना की तथा ये विद्यालय आगे चलकर या तो अपने प्रदेश के विश्वविद्यालयों में परिणत हो गए या विभिन्न सरकारी परीक्षा-संस्थाओं से विभिन्न संस्कृतपरीक्षाओं के लिए सम्बद्ध हो गए। नरेशों ने इस कार्य से प्रेरित होकर जमींदारों, छोटे-छोटे भूमिपतियों तथा व्यापारियों द्वारा भी संस्कृत विद्यालयों, मठों, मन्दिरों तथा इस प्रकार की अन्य संस्थाओं की स्थापना की गई इसके अतिरिक्त प्रभावशाली नागरिक तथा सामाजिक नेताओं ने भी संस्कृत विद्यालय स्थापित किए जिससे संस्कृत का विकास निरन्तर चलता रहा।

आधुनिक शिक्षा ढांचा ही कुछ इस प्रकार का था कि अंग्रेजी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों का जो कुछ भी पठन पाठन होता था उसे सीमित ही कहा जा सकता हैं इसके ठीक विपरीत संस्कृत पाठशालाओं तथा टोलों में संस्कृत का विस्तृत तथा ठोस ज्ञान कराया जाता था। जो भी हो, अंग्रेजी विद्यालयों में संस्कृत के सीमित अध्ययन का परिणाम भी शिक्षा के क्षेत्र में लाभप्रद सिद्ध हुआ। इन विद्यालयों के संस्कृत विद्वान् जो संस्कृत के पठन पाठन में रत थे, उनमें संस्कृत के प्रति एक प्रेरणापूर्ण रुचि उत्पन्न हुई। इन विद्वानों ने पाश्चात्य देशों के विद्वानों का अनुसरण किया तथा उनकी पद्धति अपनाकर शोधकार्य में प्रवृत्त हुए। अनेक यूरोपीय शासनाधिकारी, प्रोफेसर तथा पादरी संस्कृत के इस व्यापक वातावरण से प्रभावित हुए तथा वें सभी संस्कृत सम्बन्धी शोधकार्य, प्राचीन पाण्डुलिपियों का संग्रह तथा उनकी खोज, संस्कृतग्रन्थों का अनुवाद, सम्पादन तथा संस्कृत वाङ्मय के ऐतिहासिक एवं

समालोचनात्मक अध्ययन में रुचि लेने लगे। इस कार्य को विधिपूर्वक सम्पन्न करने के लिए तथा उसमें पूर्ण सफल होने के लिए इन लोगों को भारतीय विद्वानों तथा पारम्परिक पण्डितों से सम्पर्क रखना अनिवार्य हो गया ।

इस प्रकार संस्कृत के इतिहास में विकास पथ को जानकर वर्तमान में संस्कृत शिक्षा के विकास की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। फिर भी इसके विकास में श्री ला.ब.शा.रा.सं.वि.नई दिल्ली, रा. सं. संस्थान, रा. सं. विद्यापीठ तिरुपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय तथा जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय का प्रयास सराहनीय कहा जा सकता है इसके साथ ही काशी हिन्दूविश्वविद्यालय भी अपनी अहम् भूमिका संस्कृत के विकास में निभा रहा है। संस्कृतभारती जैसी संस्था का प्रयास भी प्रशंसनीय है।

संस्कृत के प्रसार और विकास के बारे में चर्चा के बाद हमारे सामने संस्कृत के प्रसार और विकास में विद्यमान चुनौतियों के बारे में भी उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि वास्तविकता तो यह है कि प्रसार और विकास का जानना जितना जरूरी है उससे कही अधिक इस क्षेत्र में विद्यमान चुनौतियां को पहचानना है। जो न केवल इसके भूतकाल की परिस्थितियों की जिम्मेदार हैं बल्कि वर्तमान की भी विकास पथ की बाधाएं बनी हुई है तथा जिनके माध्यम से भविष्य को और अधिक प्रोन्नत बनाया जा सकता है-

* संस्कृत को एक विशिष्ट वर्ग की या ब्राह्मणों की भाषा मानना।

* संस्कृत के प्रति लोगों की उदासीनता ।

* संस्कृतज्ञों का अन्य विषयों तथा विषय विशेषज्ञों में रुचि न लेना।

* कण्ठस्थीकरण की परम्परा पर बल देना । जिससे समझने की शक्ति का ह्रास होना।

* आधुनिकता से किनारा करना तथा आधुनिक संसाधनों एवं

तकनीकी का उपयोग न करना। अंग्रेजी भाषा के प्रति उदासीनता या द्वेषपूर्ण व्यवहार।

* शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में संस्कृत शिक्षा को वर्तमान समस्याओं से सम्बद्ध कर न पढ़ाना।

* तेजी से परिवर्तित समयानुसार सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित न करना तथा उचित निर्णय न लेना।

* समाज में संस्कृत शिक्षक को सम्मान की दृष्टि से न देखना।

* ई अधिगम, ऑनलाइन अधिगम, अन्तर्जाल एवं कम्प्यूटर की सहायता से अनुदेशन,शिक्षा तकनीकी एवं उपागमों का संस्कृत शिक्षा में समावेश न होना।

* राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार का संस्कृत के प्रति तटस्थ रूप से नीतियों का निर्धारण एवं संचालन न करना।

* संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास में समन्वयात्मक दर्शन एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण न अपनाना

और भी बहुत सी समस्याएं हमारे सामने विद्यमान है जो संस्कृत शिक्षा की उन्नति में बाधक बनी हुई हैं इन सभी को दूर करना नितान्त आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. संस्कृत शिक्षा का विकास, (ब्रिटिशकाल के सन्दर्भ में) डॉ॰ अरविन्द कुमार पाण्डेय, आदित्य बुकसेन्टर, वाराणसी, 2004.

2. शिक्षा के आयाम , डॉ॰ शंकर दयाल शर्मा, प्रभातप्रकाशन, दिल्ली, 2005.

3. शिक्षा एवं संस्कृति (नये सन्दर्भ), डॉ॰ भास्करमिश्र, भावना प्रकाशन, दिल्ली,1995.

4. भारतीय शिक्षा प्रवृत्तियाँ, आयाम, सुबहसिंह यादव, जे.पी. यादव, एच.एस.यादव, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर,1999.

5. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, एस गुन्ता जे पी अग्रवाल, शिप्रा पब्लिकेशन्स, 2009.

6. संस्कृत शिक्षण, डॉ॰ सन्तोष मित्तल, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, 2010.

संस्कृत शिक्षा का प्रसार, विकास और चुनौतियाँ

डॉ. ऋषिराज

प्रसिद्ध शिक्षा-मनोवैज्ञानिक जॉन लॉक ने कहा है कि- **"जिस प्रकार पौधे का विकास कृषि द्वारा होता है, उसी प्रकार मनुष्य का विकास शिक्षा द्वारा ही होता है।"** अर्थात् पादप के विकास में कृषि से सम्बद्ध चार तत्त्वों (बीज, कृषक, जल, वातावरण) की प्रधानता होती है, उसी प्रकार मनुष्य के विकास में शिक्षा से सम्बद्ध चार तत्त्वों (बालक, शिक्षक/अनुभव, पाठ्यक्रम/परिस्थितियाँ, वातावरण) की महत्ता मानी गई है ये चारों तत्त्व एक दूसरे के पूरक हैं एक भी तत्त्व के अभाव में यह सम्पूर्ण प्रक्रिया प्राणहीन हो जाती है। शिक्षा के इस स्वरूप को सुसंस्कारित रूप में प्राप्त करने के लिए हमें सुसंस्कृत, संस्कारित एवं परिष्कृत, समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा के आश्रय में जाना होगा। संस्कृत भाषा द्वारा प्रदत्त ज्ञान सम्पूर्ण विश्व में मानवता की शिक्षा प्रदान करता है, मनुस्मृति में स्मृतिकार ने कहा भी है-

एतद्देशस्य प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् पृथ्वी के प्रत्येक भाग से ज्ञान के जिज्ञासु मानव इस देश (भारतवर्ष) में आयेंगे और यहाँ के प्रतिभाशाली तत्त्ववेत्ताओं द्वारा नीति की शिक्षा ग्रहण करेंगे। संस्कृत भाषा का यही ज्ञान मनुष्य को विश्वबन्धुत्व की भावना का बोध कराता है यथा-

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैवकुटुम्बकम्॥ (हितोपदेश, १/६९)

संस्कृतभाषा प्रदत्त औपचारिक, अनौपचारिक, निरौपचारिक रूप में दिया गया ज्ञान ही संस्कृत शिक्षा है। संस्कृत शिक्षा के इतिहास पर दृष्टिपात् करने पर ज्ञात होता है कि प्रस्तुत शिक्षा का उद्भव विश्वगुरु के रूप में प्रसिद्ध उस समय आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध भारतवर्ष में

हुआ था। संस्कृत भाषा के रूप में समाहित शिक्षा भारत के वैदिक काल में गुरुकुलों तथा आश्रमों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा थी जो गुरु, आचार्यों तथा उपाध्यायों द्वारा मौखिक श्रुति वाचन पद्धति से शिष्यों को दी जाती थी। यह शिक्षा वैदिक ज्ञानकोश पर आधारित थी, जिसे शिष्य आत्मसात् करके मानव कल्याण करते हुए मोक्ष के मार्ग को प्राप्त करता था। शिक्षा रूपी संस्कार को प्राप्त करने से पूर्व मानव पशुवत् रहता है, यह संस्कार ही उसके स्वभाव को शुद्ध व सुसंस्कृत करके उसे ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कराता है। नीतिशतक में नीतिशतककार ने कहा भी है–

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

इसी प्रकार मानवता रूपी मूल्यों के संरक्षण के लिए शिक्षा-नीति के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवदगीता में कहते हैं कि–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

परन्तु वैदिकोत्तर काल के पश्चात् एक वर्ग विशेष तक सीमित रहने के कारण संस्कृत शिक्षा का उत्तरोत्तर होने वाला विकास मन्द पड़ गया और भारतवर्ष के मध्ययुग (मुगलकाल) में संस्कृत शिक्षा की स्थिति एक कृषकाय युवति के समान हो गई। उस समय ब्राह्मण कुलीन परिवारों में ही संस्कृत शिक्षा का अध्ययन-अध्यापन गुप्त रूप से होता था। यही स्थिति अंग्रेजों के काल में भी देखने को मिलती है। **सन् १८३५ में लॉर्ड मैकाले द्वारा बनाई गई शिक्षा नीति** ने संस्कृत शिक्षा के सशक्तिकरण पर कुठाराघात किया और विद्यालयी पाठ्यक्रमों से उसे अलग कर दिया गया। परन्तु **राजाराममोहनराय, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द** जैसे समाज सुधारकों के प्रबल विरोध के कारण **१९/०६/१८५४ में घोषित वुड-घोषणापत्र तथा ०३/०२/१८८२ में गठित हण्टर आयोग** ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में कुछ स्थान प्राच्य भारतीय शिक्षा के लिए निर्धारित किया। यह एक अत्यन्त न्यूनतम प्रयास था जिस कारण भारत की सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण में कमी

आने लगी। अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने के पश्चात् भारतीय शिक्षाविदों ने पुनः भारत के शैक्षिक स्वरूप पर मन्थन किया और पाया कि भारत की सभ्यता और संस्कृति का सुदृढ़ विकास सिर्फ संस्कृत शिक्षा में ही सन्निहित है कहा भी है–

संस्कृतं संस्कृतेर्मूलं ज्ञानविज्ञानवारिधिः।
वेदतत्त्वार्थसंजुष्टं लोकाऽऽलोककरं शिवम्॥

इसी आधार को मानते हुए भारत सरकार ने संस्कृत शिक्षा की स्थिति को सुदृढ़ करने तथा जन–जन तक इसे पहुँचाने के उद्देश्य से **डॉ. सुनीतिकुमारचटर्जी** महोदय की अध्यक्षता में **१९५६–५७** में **प्रथम संस्कृतशिक्षाऽऽयोग** का गठन किया। आयोग के सदस्यों ने सम्पूर्ण भारत में संस्कृत शिक्षा की स्थिति का अवलोकन करते हुए अपने प्रतिवेदन में सरकार को सुझाव दिये कि–

● माध्यमिक स्तर पर भाषा के रूप में संस्कृत भाषा का स्थान निर्धारित हो।

● केन्द्र संस्कृतशिक्षा का पठन–पाठन आधुनिक पद्धति के साथ–साथ पारम्परिक पद्धति से भी हो।

● संस्कृताध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए शिक्षाशास्त्री पाठ्यक्रम का सञ्चालन हो।

● संस्कृतशिक्षा में होने वाले अनुसन्धानों के लिए केन्द्र सरकार अनुदान प्रदान करें।

परन्तु वर्तमान में संस्कृतशिक्षा की स्थिति पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि प्रथम संस्कृत शिक्षाऽऽयोग अपने उद्देश्यों को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर पाया। इस कारण संस्कृत शिक्षा का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाया। आज **संस्कृत शिक्षा के विकास में बाधाएँ चुनौतियों** के रूप में स्पष्ट नजर आती हैं जैसे–

वर्तमान युग में वैज्ञानिकता की प्रधानता होना।

माध्यमिक स्तरीय शिक्षा में संस्कृतभाषा के साथ वैकल्पिक रूप में विदेशी भाषाओं को अधिक महत्त्व देना।

● संस्कृतशिक्षा से सम्बद्ध पारम्परिक शिक्षा संस्थानों की न्यूनता।

● पारम्परिक संस्कृत प्रशिक्षण संस्थानों की न्यूनता।

● प्रतिष्ठित संस्कृतशिक्षा संस्थाओं में बालिकाओं तथा आरक्षित वर्ग के छात्र/छात्राओं को प्रवेशार्थ कम महत्त्व देना।

● संस्कृतशिक्षा के लिए केन्द्र व राज्य द्वारा घोषित बजट अनुपात से कम होना।

● सामान्य जन का मानना है कि संस्कृत सिर्फ कर्मकाण्ड की शिक्षा है।

● संस्कृत शिक्षा में मौलिक अनुसन्धान का अभाव।

● शिक्षित तथा सामान्यजन की बोलचाल में संस्कृत सम्भाषण का अभाव।

सुझाव–

सम्पूर्ण विश्व आज आधुनिकता की दौड़ में लगा हुआ है ऐसे समय में हम भारतवासी जनों को अपनी सभ्यता और सांस्कृतिक विरासत की रक्षक संस्कृत शिक्षा के विकास में आने वाली चुनौतियों का डटकर सामना करना है इसी ध्येय को आधार मानते हुए **भारत सरकार** ने अभी हाल ही में **प्रो. सत्यव्रत शास्त्री जी** की अध्यक्षता में **द्वितीय संस्कृतशिक्षाऽऽयोगः** (अमर उजाला समाचारपत्र-०७/०१/२०१४) का गठन किया गया है जो संस्कृत शिक्षा के विकास में एक मील का पत्थर साबित होगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संस्कृत आयोग को निम्न बिन्दुओं पर विचार करना चाहिए, जो अधोलिखित हैं–

● विद्यालयों में कक्षा तृतीय से १२वीं कक्षा तक अनिवार्य विषय के रूप में संस्कृत शिक्षा विषय के रूप में लागू होनी चाहिए।

● चूंकि आज का युग तकनीकी का युग है इसलिए संस्कृत शिक्षा को कम्प्यूटर शिक्षा से जोड़ा जाना चाहिए।

● सम्पूर्ण भारत में प्रत्येक तहसील व जिला स्तर पर प्रारम्भिक व माध्यमिक आदर्श पारम्परिक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की जानी

चाहिए।

● पारम्परिक विद्यालयों और महाविद्यालयों में किसी भी विषय में प्रवेशार्थ वर्ग विशेष की अनिवार्यता न हो।

● विज्ञान व तकनीकी के समकक्ष ही संस्कृत शिक्षा का बजट केन्द्र व राज्य सरकारें घोषित करें।

● संस्कृत शिक्षा में व्यवसायीकरण की प्रधानता के स्रोत खोजने हेतु अनुसन्धान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

● हिन्दी व अंग्रेजी की तरह शिक्षित व सामान्य जन संस्कृत भाषा में बोलचाल का प्रावधान रखें।

● पारम्परिक संस्कृत शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों का विकास किया जाना चाहिए।

● भारतवर्ष में संस्कृत शिक्षा का आदर्श विश्वविद्यालय अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर बनाया जाए।

● जब भारत में हिन्दी को प्रथम राज भाषा का दर्जा दिया है तो संस्कृत को हम द्वितीय राजभाषा के रूप में मान्यता दिलवाऐं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

१. भट्ट, पंडित रामेश्वर, "मनुस्मृति", चौखम्बा संस्कृत प्रतिस्ष्ठान, १९८५
२. शर्मा, पंडित श्री विश्वनाथ, श्री नारायणस्वामी विरचित, "हितोपदेश", मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००३
३. मिश्र, लोकमान्य, "आधुनिकी शिक्षा" मृगाक्षी प्रकाशनम्, ५/११३ गोमती नगर, लखनऊ, २०११
४. मित्तल, प्रो.सन्तोष, "संस्कृतशिक्षणम्" नवचेतना पब्लिकेशन, जयपुर २००६
५. श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर

उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर संस्कृत व्याकरण पाठ्यक्रम का अभिकल्प

संतोष कुमार झा
शोधछात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय
संस्कृत विद्यापीठम्, नवदेहली-1100016

भारतवर्ष में व्याकरण शिक्षा की परम्परा की जड़ें बहुत गहरी हैं। यहाँ पर व्याकरण की शिक्षा को सदा से ही प्रमुख स्थान मिलता रहा है। वेदाङ्ग छः माने गये हैं– शिक्षा, कल्प अर्थात् कर्मकाण्ड, व्याकरण, निरुक्त अर्थात् भाषाविज्ञान, छन्द और ज्योतिष। इन वेदाङ्गों में व्याकरण को प्रमुख स्थान पर दिया गया है– 'प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्।'

व्याकरण की शिक्षा के बिना बालक शुद्ध रूप से भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि व्याकरण द्वारा ही भाषा रचना का ज्ञान होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि व्याकरण की शिक्षा के बिना रचना एवं अनुवाद की शिक्षा अपूर्ण रहती है। वाक्य-रचना का आधार व्याकरण ही है। शब्द रचना भी व्याकरण द्वारा ही सम्भव है। अतः व्याकरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

व्याकरणसम्मत में पाणिनि का नाम महत्त्वपूर्ण है। यास्क के पश्चात् भाषा को सुसंस्कृत करने वालों में पाणिनि विशेष रूप से प्रसिद्ध है। चार हजार सूत्रों में भाषा को व्याकरण के नियमों में बाँधने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। 'अष्टाध्यायी' पाणिनि की ऐसी कृति है जिसको यदि भाषाविज्ञान के वैज्ञानिक विवेचन के लिए मेरुदण्ड की संज्ञा दी जाए तो अत्युक्ति न होगी। अपनी विशेषताओं के कारण आज भी इस क्षेत्र का यह अमूल्य रत्न है। पाणिनि की अपनी कुछ विशेषतायें हैं कि जिन्होंने सूत्र शैली में व्याकरण जैसे दुरुह और विस्तृत शास्त्र को सरल तथा संक्षिप्त बना दिया है।

अतः व्याकरण जैसे कठिन एवं दुरुह विषय को उच्च प्राथमिक

एवं माध्यमिक स्तर पर निम्नलिखित रूप में सम्मिलित करके उन्हें व्याकरण का ज्ञान कराया जा सकता है।

कक्षा ६ के लिए व्याकरण का पाठ्यक्रम

(क) संज्ञा – निम्नलिखित प्रकार के संज्ञा शब्दों के सभी व्यक्तियों में रूपों का ज्ञान।

अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द – बालक, नर, देव, इन्द्र, सेवक, पुत्र, पुरुष, अध्यापक, विद्यालय, छात्र, अवकाश, वानर, अश्व, गज, काक, शृगाल, दन्त, कण्ठ, पाद, हस्त, आम, वृक्ष, प्रान्त, मार्ग आदि।

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग – फलम्, कमलम्, पुस्तकम्, मित्रम्, वनम्, नीडम्, धनम्, दानम्, अन्नम्, मुखम्, चित्रम्, चन्दनम्।

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग – लता, बालिका, छात्रा, माला, शाखा, कन्या, पाठशाला, गंगा, नौका, बाला।

ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग – नदी, नारी, भगिनी, नगरी।

उकारान्त पुल्लिङ्ग – पशु, साधु, गुरु, बन्धु, शत्रु, वायु आदि।

(ख) सर्वनाम – तद्, यत्, किम्, अस्मद्, युष्मद्, इदम्, सर्व शब्दों का ज्ञान।

(ग) कारक – 'सह' के साथ तृतीया विभक्ति के प्रयोग का ज्ञान।

(घ) विशेषण शब्दों का बोध – रक्त, विशाल, उष्ण, आर्द्र, शीत, प्रमुख, बुभुक्षित, लालायित, शठ, सरस, मधुर, कृष्ण, मनोहर, पुलकित, लिप्त, रुचिकर, कुशल, शुक्ल आदि।

(ड.) संख्या – १ से १० तक संख्या का ज्ञान कराया जायेगा।

(च) अव्यय – अथ, अत्र, तत्र, यत्र, कुत्र, आम्, बाढम्, सर्वदा, एकदा, यदा, तदा, कदा, सदा, यथा, कथम्, किम्, शीघ्रम्, एवम्, पुनः, च, वा, न, हि, सह, अथवा इति।

(छ) धातु – निम्नलिखित धातुओं के एकवचन और बहुवचन

तथा तीनों पुरुषों में निम्नलिखित लकारों के रूप – लट्, लङ्, लृट् और लोट् लकार, पठ्, क्रीड्, लिख्, हस्, पत्, कस्, धाव्, खाद्, पच्, नम्, कूज्, नृत्, चर्, कृ, नी, त्रुट्, कथ्, गै, अर्पय, भू, पठ्, पिब्, वस्, भक्ष्, प्रच्छ्, क्षिप् आदि।

(ज) कृदन्त प्रत्यय – कृत्वा, ल्यप् तथा तुमुन् का सामान्य प्रयोग का ज्ञान कराना।

कक्षा ७ के लिये व्याकरण का पाठ्यक्रम

(क) संज्ञा – छठी कक्षा में प्रयुक्त शब्दावली के अतिरिक्त निम्नलिखित स्तर के संज्ञा शब्दों की तीनों वचनों की रूप रचना बोध–

अकारान्त पुल्लिङ्ग – छठी कक्षा में पढ़े शब्दों का प्रयोग करना सीखना।

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग – छठी कक्षा में शब्दों का प्रयोग सीखना।

इकारान्त पुल्लिङ्ग – मुनि, कवि, कपि, ऋषि, गिरि, हरि, रवि और नृपति।

ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग – मति, गति, रुचि, बुद्धि, भक्ति, स्थिति, प्रीति, रीति, कृति, नीति आदि।

उकारान्त पुल्लिङ्ग – तरु, रिपु, प्रभु, जन्तु आदि शब्दों की रूप रचना का बोध।

उकारान्त स्त्रीलिङ्ग – छठी कक्षा में दिये गये शब्दों का प्रयोग।

संख्या – १ से ५० तक का ज्ञान।

अव्यय – इव, चिरम्, ह्य, श्वः, इतः, यतः, कुतः, सर्वतः, अतः, पुरतः, पश्चात्, पुर, पृथक्, बहि, अन्तः, किञ्चित्, तु, इदानीम्, उपरि, अधः, अधुना, यत्, कृतम्।

धातु – भक्षय, जनय, श्रु, अस्, स्मृ, इप्, त्यज्, जीव्, दह्, धृ, रक्ष्, वस्, ह, नी, वि, स्पृश्, चुर्, चिन्त्, कथ्, रच् आदि।

प्रत्यय – तव्यत्, अनीयर्, यत् प्रत्ययों का परिचय।

सन्धि – दीर्घ, यण्, गुण और वृद्धि संधि का ज्ञान।

कक्षा ८ के लिए व्याकरण पाठ्यक्रम

अकारान्त पुल्लिङ्ग – अनिल, आश्रम, कपाल, कर्दम, कोष्ठ, कुबेर, गायक, दिवस, दिवाकर, दीप, द्वारपाल, प्रपात, पवन, प्रदीप, भ्रमर, चयन, विग्रह, व्याध, सैनिक आदि।

उकारान्त पुल्लिङ्ग – इक्षु, इन्दु, हेतु, सेतु, बिन्दु आदि।

ऋकारान्त पुल्लिङ्ग – पितृ, भ्रातृ, मातृ, दातृ, नेतृ, कर्तृ आदि।

व्यञ्जनान्त पुल्लिङ्ग – आत्मन्, राजन्, विद्वस्, चन्द्रमस्, भगवत्, धीमत्, धनिन्, स्वामिन्, हस्मिन्, विद्यार्थिन् आदि।

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग – दृष्टि, शक्ति, मुक्ति, सृष्टि, दृष्टि, सिद्धि, युक्ति आदि।

सर्वनाम – अदस्, अन्य, पर शब्द का ज्ञान।

संख्या – ५० से १०० तक संख्या का ज्ञान।

कारक – रुच्, धिक्, उभयतः, अधितः, परितः, प्रति, सर्वतः के योग में प्रयुक्त विभक्ति का ज्ञान।

प्रत्यय – क्त, क्तवतु और स्त्री प्रत्यय में से अक्, इका, आ, ई का ज्ञान।

संधि – पूर्वरूप तथा अयादि संधि का ज्ञान।

कक्षा ९ के लिये व्याकरण पाठ्यक्रम

(क) संज्ञा – पुल्लिङ्ग ओकारान्त – गो, ऋकारान्त – नृ

स्त्रीलिङ्ग इकारान्त – दधि

स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त – धी

व्यञ्जनान्त पुल्लिङ्ग – सम्राज्, दिवप्, युवन्, श्वन्

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग – अप्, वाच्, दिश्, विद्युत्, तडित् आदि।

व्यञ्जनान्त नपुंसकलिङ्ग – वपुष्, धनुष्।

(ख) सर्वनाम – पूर्व, पर, दक्षिण, उत्तर।

विशेषण – गच्छत् आदि।

कियापद – भ्वादि, तुदादि, दिवादि, स्वादि, तनादि च चुरादि गणों से निम्नलिखित – प्र + आप्, क्षिप्, ईक्ष्, कृ, घ्रा, जन्, तृप्, दिश्, नश्, भज्, भास्, मन्, मज्ज्, रम्, राज्, भाष्, वृत्, वृध्, शम्, स्था।

कारक – उपपद विभक्तियों का प्रयोग।

संख्या – एक से चतुर् तक का तीनों लिङ्गों तथा विभक्तियों में प्रयोग।

अव्यय – समम्, साकम्, सार्धम्, प्रभृति, हन्त।

प्रत्यय – णिजन्त, स्त्रीप्रत्यय, तरप्, तमप्।

संधि – विसर्ग संधि।

समास – द्वन्द्व, कर्मधारय, तत्पुरुष, द्विगु।

कक्षा १० के लिये व्याकरण पाठ्यक्रम

संज्ञा – पुल्लिङ्ग इकारान्त – पति, सखि।

पुल्लिङ्ग ओकारान्त – नो।

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग – अक्षि।

व्यञ्जनान्त पुल्लिङ्ग – पुस्, पथिन्।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग – अङ्गिरा।

इकारान्त स्त्रीलिङ्ग पुल्लिङ्ग शब्दों का प्रयोग।

सर्वनाम – अस्मद्, उभ, उभय, कतिपय, अदस्, ईदृश, यादृश, तादृश, कीदृश आदि।

कारक – भावे सप्तमी, अनादरे षष्ठी निर्धारणे षष्ठी, सप्ती का प्रयोग

संख्या – शतोपरि इयस्, इष्ठ

संधि – व्यञ्जन संधि के प्रमुख नियम

संस्कृत शिक्षा का प्रचार, प्रसार एवं चुनौतियाँ

सविता
शिक्षाचार्य छात्रा

संस्कृत भारतवर्ष की भाषा न होकर विश्व की भाषा मानी जाती है। संस्कृत का साहित्य अत्यन्त विशालतम है। तथा इसमें जीवन-मरण से संबंधित संपूर्ण ज्ञान निहित है एवं इससे परे पारलौकिक ज्ञान का भी इसमें अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण किया हुआ मिलता है।

संस्कृत के प्रमुख वेद हैं। जिनका न केवल भारत में अपितु संसार में एक विशिष्ट आदि साहित्य के रूप में स्वीकृत एवं आदृत हो रहा है। जिसमें हमारे ऋषियों द्वारा अनुभूत जीवनोपयोगी सभी प्रकार के ज्ञान सुरक्षित हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था UNESCO द्वारा ऋग्वेद को विश्व धरोहर (World Heritage) के रूप में स्वीकार किया गया है।

संस्कृत में भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही है, जो आज भी मानव-कल्याण के लिए नितान्त उपादेय है। संस्कृत शिक्षा की उत्कृष्टता को हम एक उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। जैसे–

(i) योग गुरु रामदेव जी। जिन्होंने संस्कृत में निहित केवल योग शिक्षा को लेकर न केवल अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाया अपितु अनेक लोगों में भी योग के प्रति अभिरुचि उत्पन्न कर उनके जीवन को भी स्वस्थ रखने में योगदान दिया है।

(ii) आज भी सभी बड़ी से बड़ी संस्थानों, विभागों का ध्येय वाक्य अर्थात् उद्देश्य वाक्य संस्कृत में ही लिया जाता है। जो संस्कृत शिक्षा की महानता को दर्शाता है। अतः संस्कृत भाषा की आवश्यकता अत्यधिक है, जिसकी आज के युग में अनेक स्थलों पर उपयोगिता को देखते हैं।

किन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है अनेक ऐसे छात्र भी देखे गये हैं जो उसी भाषा को पढ़ते हैं उसी पर असीमित टिप्पणियाँ देते हैं। अतः आज यह आवश्यक हो गया है कि हम संस्कृत शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं चुनौतियों के विषय में ध्यान दें। जिससे मानव सभ्यता का कल्याण हो सके।

संस्कृत शिक्षा का प्रचार-प्रसार

संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन में कुछ कठिनाइयाँ हैं जो सर्वविदित हैं। एक ओर संस्कृत के छात्रों की संख्या में ह्रास हो रहा है, दूसरी ओर संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक ह्रास हो रहा है। विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक संस्कृत पढ़ने पर भी प्रायः संस्कृत के छात्रों में अपेक्षित भाषा-दक्षता नहीं आ पाती। इस गुणात्मक ह्रास (Qualitative deterioration) के अनेक कारण हैं। अत एव संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन को प्रोन्नत करने के लिए हमें अवश्य कुछ करना चाहिए। संस्कृत को लोकप्रिय बनाने के लिए कुछ उपाय यहाँ प्रस्तुत हैं–

विद्यालय पाठ्यक्रम में यथोचित स्थान

(अ) त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत का स्थान– राष्ट्रीय शिक्षा नीति (१९८६ के अनुसार विद्यालय स्तर पर त्रिभाषा सूत्र का क्रियान्वयन भाषा-शिक्षण के लिए अनिवार्य है। इसके अनुसार तीन भाषाओं को पढ़ाया जाना है – हिन्दी, अंग्रेजी एवं एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा (MIL)। इसमें संस्कृत का समावेश नहीं है। उच्चतम न्यायालय के १७ मार्च १९८९ दिनाङ्कीय स्थगन आदेश से ही सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजुकेशन (CBSE) के पाठ्यक्रम में संस्कृत के अध्यापन का प्रावधान है।

इस सन्दर्भ में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा ४ अक्तूबर १९९४ को जो अन्तिम निर्णय दिया गया, उसका क्रियान्वयन CBSE द्वारा नहीं किया गया है, जिससे विद्यालयों में संस्कृत शिक्षण पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। उच्चतम न्यायालय का निर्देश था कि तीन माह के अन्दर

पाठ्यक्रम में संशोधन कर (त्रिभाषा सूत्र में) संस्कृत का एक ऐच्छिक विषय के रूप में समावेश किया जाय।

"In the aforesaid premises, we direct the Board (CBSE) to include Sanskrit as an elective subject in the syllabus under consideration. Necessary amendment in the syllabus shall be made within a period of three months from today." (14 Oct.1994)

अत एव इस सम्बन्ध में अवश्य कुछ किया जाना चाहिए ताकि विद्यालय स्तर के भाषाशिक्षण में त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत का समावेश हो सके।

(आ) केन्द्रीय विद्यालय (KVS) – केन्द्रीय विद्यालयों में संस्कृत का पठन-पाठन कक्षा छठी से कक्षा आठवीं तक सीमित कर दिया गया है। नवम एवं दशम कक्षा के छात्र संस्कृत के अध्ययन से वञ्चित कर दिये गये है। अत एव अग्रिम कक्षाओं (कक्षा ग्यारहवीं और बारहवीं) में संस्कृत का स्वत: विलुप्त होना स्वाभाविक है–

छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।

इतना ही नहीं, केन्द्रीय विद्यालय संगठन ने शैक्षणिक सत्र २०११-१२ से कक्षा ६ से ८ तक भी संस्कृत के विकल्प में जर्मन, फ्रेंच, चाइनीज, स्पेनिश – इन चार विदेशी भाषाओं को पढ़ाने का निर्देश जारी किया (KVS letter dated ०५.०१.२०११, ०७.०३.२०११, १६.०८.२०११, ०१. १२.२०११)। साथ ही संस्कृत के शिक्षकों (T.G.T., SKT.) को इन विदेशी भाषाओं में प्रशिक्षण लेने का निर्देश भी दिया गया, ताकि वे संस्कृत के स्थान पर इन भाषाओं का अध्यापन कर सकें।

संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के लिए यह गहरा कुठाराघात है। साथ ही त्रिभाषा सूत्र के सिद्धान्त का भी घोर उल्लंघन है। त्रिभाषा सूत्र में कहीं भी विदेशी भाषा के पढ़ाने का प्रावधान नहीं है।

(इ) नवोदय विद्यालय समिति (NVS) के विद्यालयों में संस्कृत का पठन-पाठन किसी भी कक्षा में नहीं है, यद्यपि वहाँ त्रिभाषा सूत्र का क्रियान्वयन अवश्य हो रहा है।

अतएव आज आवश्यकता है – विद्यालय स्तर पर संस्कृत शिक्षण एवं भाषा शिक्षण की सही नीतियाँ क्रियान्वित हों।

संस्कृत शिक्षकों का अभाव

बहुत से राज्यों में अनेक विद्यालयों में संस्कृत-शिक्षक न होने के कारण अन्य विषयों के शिक्षक ही संस्कृत भी पढ़ाते हैं (जैसे मध्यप्रदेश, झारखण्ड, गोवा आदि राज्यों में)। दिल्ली में दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा ऐसे विद्यालयों में संस्कृत-शिक्षक उपलब्ध कराये जाते हैं। राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार (राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान) द्वारा विभिन्न राज्यों में संस्कृत शिक्षकों के अभाव को दूर करने के लिए सक्रिय प्रयास किया जाना चाहिए।

योग्यता छात्रवृत्ति (Merit Scholarship) – विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के संस्कृत छात्रों के लिए योग्यता छात्रवृत्ति सुलभ करानी चाहिए।

संस्कृत प्रतियोगिता– छात्रों में संस्कृत को लोकप्रिय बनाने के लिए विभिन्न स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में संस्कृत प्रतियोगिता (Sanskrit Competition) का आयोजन किया जाना चाहिए।

संस्कृत पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में परिवर्तन– सम्प्रति विभिन्न राज्यों के विद्यालय स्तरीय पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में दो अभाव दृष्टिगत होते हैं–

(अ) संस्कृत भाषा के सामान्य ज्ञान का अभाव।

(आ) संस्कृत वाङ्मय में निहित ज्ञान-विज्ञान का अभाव।

अतएव संस्कृत भाषा के साथ विषय ज्ञान का सन्तुलन (Balance of Language and Content) अपेक्षित है।

प्राक्-शास्त्री (कक्षा ग्यारहवीं-बारहवीं) के स्तरपर विज्ञान एवं गणित के पठन-पाठन का प्रावधान किया जाना अपेक्षित है, जिसमें छात्र संस्कृत के साथ इन विषयों का अध्ययन कर सकें–

(अ) जीव विज्ञान (Biology Science)

(आ) भौतिकशास्त्र एवं रसायनशास्त्र (Physics and Chemistry)

(इ) गणित (Mathematics)

सम्प्रति संस्कृत छात्र विज्ञान पढ़ने के अभाव में आयुर्वेद के पाठ्यक्रम (BAMS) में प्रवेश नहीं पाते हैं। इसी प्रकार आधुनिक विद्यालयों में कक्षा ग्यारहवीं-बारहवीं में विज्ञान के छात्रों को संस्कृत पढ़ने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

व्यावसायिक प्रशिक्षण– एक समय में कहा जाता था **'सा विद्या या विमुक्तये'।** किन्तु आज विद्योपार्जन का एक प्रमुख लक्ष्य है– अर्थोपार्जन। अत एव आज कहा जाता है– **'सा विद्या या नियुक्तये।'**

अत एव संस्कृत को लोकप्रिय बनाने के लिए संस्कृत से सम्बद्ध निम्नलिखित व्यावसायिक विषयों में प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए–

१. छात्रों के लिए ज्योतिष, कर्मकाण्ड आदि व्यावसायिक विषयों में अंशकालिक डिप्लोमा पाठ्यक्रम चलाया जाना चाहिए।

२. आजकल अनुवादक की बहुत ही आवश्यकता रहती है। अतएव अनुवाद पाठ्यक्रम चलाया जाना चाहिए।

३. योग में अंशकालिक डिप्लोमा पाठ्यक्रम।

४. शास्त्री स्तर पर आधुनिक विषय के रूप में कम्प्यूटर पाठ्यक्रम को समायोजित किया जाना चाहिए। व्यावहारिक प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। अंशकालिक रूप में संस्कृत के साथ कम्प्यूटर का एक वर्ष का डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी चलाया जाना चाहिए, जिससे संस्कृत छात्रों को जीविका के अवसर सुलभ हो सकेंगे। (इस तरह के पाठ्यक्रम हिन्दी अकादमी (दिल्ली सरकार) द्वारा हिन्दी के छात्रों के लिए तथा Material Council for Promotion of Urdu (Govt. of India) द्वारा उर्दू के छात्रों के लिए चलाये जा रहे हैं।)

५. पुराण प्रवचनकर्ता (स्थानीय भाषा के माध्यम से) के रूप में कार्य करने के इच्छुक छात्रों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। इससे एक ओर जहाँ छात्रों का जीविकोपार्जन हो गया, वहाँ दूसरी ओर संस्कृत एवं पुराणों में निहित नैतिक शिक्षा का भी प्रचार-प्रसार होगा।

प्रशासनिक सेवा (IAS etc) परीक्षा हेतु अध्ययन केन्द्र (Coaching Centre)– संस्कृत छात्रों के लिए प्रशासनिक सेवा (IAS/IPS etc.) परीक्षार्थ अध्ययन केन्द्र (Coaching Centre) विभिन्न क्षेत्रों में अंशकालिक रूप में सञ्चालित किया जाना चाहिए। इस कार्यक्रम में दो बातों का ध्यान रखना चाहिए–

१. प्रशिक्षण के लिए छात्रों का चयन प्रवेश-परीक्षा द्वारा योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए।

२. प्रशिक्षण के लिए चुने गये छात्रों की योग्यतानुसार छात्रवृत्ति दी जानी चाहिए।

इस तरह की व्यवस्था मुस्लिम छात्रों के लिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया इस्लामिया एवं मौलाना आजाद उर्दू विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से दी जा रही है और १०० (एक सौ) छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं।

संस्कृत के प्रति उपेक्षाभाव दूर करने की चुनौतियाँ

संस्कृत की रक्षा एवं इसे लोकप्रिय बनाने के लिए जनजागरण आवश्यक है, जिसमें सरकारी तन्त्र द्वारा सहजभाव से इसकी उपेक्षा समाप्त हो सके। कुछ तथ्य यहाँ विचारणीय हैं–

(अ) संस्कृत के लिए स्वीकृत पदों का लोप– भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय में आज भी एक संस्कृत प्रभाग (Sanskrit Division) है, जो संस्कृत की सर्वाङ्गीण विकास सम्बन्धी कार्य करता है तथा संस्कृत के निम्नलिखित संस्थाओं की देख-रेख करता है–

१. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

२. श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

३. राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति, आन्ध्रप्रदेश (ये तीनों संस्थाएँ मानित विश्वविद्यालय (Deemed University) हैं।

४. महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

ऐसे महत्त्वपूर्ण संस्कृत प्रभाग में वर्षों से संस्कृत विशेषज्ञों के लिए चार स्वीकृत हैं, जिन पर संस्कृत के विशेषज्ञ कार्यरत थे। वे पद हैं–

सहायक शिक्षा अधिकारी (AEO) संस्कृत, शिक्षा अधिकारी (EO) संस्कृत, सहायक शिक्षा सलाहकार (AEA) संस्कृत एवं उप शिक्षा सलाहकार (DEA) संस्कृत। इन्हीं पदों पर नियुक्त डॉ. रामकरण शर्मा, संयुक्त शिक्षा सलाहकार (JEA) के रूप में प्रोन्नत हुए तथा डॉ. (श्रीमती) कपिला वात्स्यायन शिक्षा सलाहकार (शिक्षा सचिव के समकक्ष) तक प्रोन्नत हुई। आज सरकारी उपेक्षा एवं संस्कृत वालों के समुचित जागरण के अभाव में उन पदों पर संस्कृत का कोई विद्वान् नहीं है। परिणामतः प्रशासनिक अधिकारी उनका स्थान ग्रहण कर चुके हैं।

(आ) इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (IGNOU) नई दिल्ली एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का मुक्त विश्वविद्यालय है। यहाँ बी.ए., एम.ए., एवं बी.एड पाठ्यक्रमों में सभी विषयों का प्रावधान हैं, पर संस्कृत का अभाव है। ऐसे ही स्थिति नवीन केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की है, जहाँ संस्कृत का पाठ्यक्रम नहीं चलाया जा रहा है।

(इ) SCERT (राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्) नई दिल्ली में संस्कृत विशेषज्ञों का अभाव– राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण (SCERT) नई दिल्ली में प्रारम्भ से ही दो संस्कृत विशेषज्ञ हुआ करते थे। एक सेवानिवृत्त हो गये और दूसरे प्रोन्नत होकर दूसरी संस्था में १४ वर्ष पूर्व चले गये। लगभग १४ वर्षों से (प्रायः

जनवरी १९९८ से) वहाँ कोई संस्कृत विशेषज्ञ नियुक्त नहीं किये गये। स्वाभाविक है, दिल्ली के संस्कृत शिक्षकों के प्रशिक्षण पर इसका बुरा प्रभाव पड़ रहा है। अतएव दिल्ली सरकार के शिक्षा विभाग का ध्यान आकृष्ट कर इस कमी को शीघ्र दूर किया जाना चाहिए।

अधिकांश राज्य सरकारों द्वारा स्थापित एस.सी.ई.आर.टी. (SCERT) में प्राय: इसी प्रकार की स्थिति है।

संस्कृत शिक्षकों का प्रशिक्षण

संस्कृत अध्यापन, विशेषत: विद्यालय स्तर में गुणात्मक विकास के लिए (For Qualitative Improvement) संस्कृत अध्यापकों का प्रशिक्षण नितान्त अपेक्षित हैं, जिनमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर यथोचित ध्यान दिया जाए–

१. शिक्षण विधि में परिवर्तन, जिससे अध्यापन रोचक और प्रभावी हो सके।

२. मूल्यांकन विधि में परिवर्तन, जिससे वह सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का अभिन्न अङ्ग (Integral Part of Teaching Learning Process) बन सके।

३. संस्कृत अध्यापकों के लिए कम्प्यूटर प्रशिक्षण।

४. दृश्य-श्रव्य सामग्री (Audio-Visual Aids) का विकास विद्यालय स्तर के लिए जिससे शिक्षण रोचक एवं प्रभावी हो सके।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार में स्वामी श्रद्धानन्द जी का महत्वपूर्ण योगदान

उषा

स्वामी श्रद्धानन्द जी भारतदेश की महान विभूतियों में से एक थे। उनका जन्म २२ फरवरी १८५६ को पंजाब प्रान्त के जालन्धर जिले के तलवान ग्राम में हुआ था।[१] उनके पिता लाला नानक चन्द ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा शासित यूनाईटेड प्रोविन्स (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में पुलिस अधिकारी थे। स्वामी जी के बचपन का नाम वृहस्पति और मुंशीराम था, किन्तु मुंशीराम सरल होने के कारण अधिक प्रचलित हुआ।[२] उन्होंने सफल वकील के रूप में ख्याति प्राप्त की। स्वामी दयानन्द जी के तर्कों और आशीर्वाद ने मुंशीराम जी को दृढ़ ईश्वर विश्वासी तथा वैदिक धर्म का अनन्य भक्त बना दिया। सन् १९१७ में उन्होंने सन्यास धारण कर लिया और स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए।[३] उनका जीवन सदा मानव कल्याण तथा विकास के योगदान में प्रवृत रहा। देश के नवनिर्माण के साथ-साथ शिक्षा प्रसार, वैदिक धर्म, जन-जागरण, तथा समाज-सेवा आदि अनेक क्षेत्रों में उन्होंने भारतदेश का मार्ग प्रशस्त किया। स्वामी जी ने कार्यों की सीमा तय न करते आध्यात्मिक प्रचार, समाज-सुधार, नारी हितों की रक्षा व उनकी शिक्षा, दलितों का उद्धार, शिक्षा, पत्र-सम्पादन एवं राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

राष्ट्रीय शिक्षा क्षेत्र में उनका योगदान अतुलनीय था जैसा कि महान साहित्यकार प्रेमचन्द ने भी कहा है- "यों तो स्वामी जी प्राचीन आर्य आदर्शों के पूर्णरूप से प्रवर्तक थे, पर मेरे विचार में राष्ट्रीय शिक्षा

के पुनरुत्थान में उन्होंने जो कार्य किया है, उसकी कोई तुलना नहीं मिलती। ऐसे युग में जब अन्य बाजारी चीजों की तरह विद्या बिकती है, यह स्वामी जी का ही दिमाग था जिसने प्राचीन गुरुकुल प्रथा में भारत के उद्धार का तत्त्व समझा।"

गुरुकुल की स्थापना

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने शिक्षा, धर्म, समाज आदि क्षेत्रों में एक नई क्रान्ति का आरम्भ किया। वे प्राचीन भारतीय एवं वैदिक संस्कृति के प्रचारक के इच्छुक थे अतः भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए 'मैकाले' की विदेशी शिक्षा प्रणाली के दुष्प्रभाव को समाप्त करने हेतु गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पुनरुद्धार किया। स्वामी जी बिना किसी राजकीय सहायता को स्वीकार किये बिना गुरुकुल की स्थापना करना चाहते थे इसलिए उन पर अनेक व्यंग्यात्मक आक्षेप किये गये, फिर भी वह तटस्थ होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते चले गये और मार्च १९०२ में उन्होंने हरिद्वार के कांगड़ी गाँव में गुरुकुल विद्यालय खोला[४] और कुछ ही समय में यह नन्हा पौधा महावृक्ष के रूप में विकसित होकर विश्वविद्यालय की स्थिति में आ पहुँचा।

गुरुकुल में मातृभूमि से प्रेम, राष्ट्र-भक्ति तथा स्वदेश-गौरव का पाठ पढ़ाया जाता था। इसमें शिक्षा ग्रहण करने वाले सभी छात्र भिन्न-भिन्न जातियों से सम्बन्धित थे लेकिन उन सबका एक सा जीवन और एक सा रहन-सहन था। ये उस समय कि बहुत अद्‌भुत बात थी की ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सभी जातियों के बालक एक ही गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। उनका विचार था कि जाति के भेदभाव ने ही देश में अनेक जटिलताओं को जन्म दिया है। परन्तु गुरुकुल में इस भेदभाव को कोई स्थान नहीं दिया गया था। स्वामी दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा के सिद्धान्तों और आदर्शों को ही गुरुकुल में शिक्षण-क्रम में पढ़ाया जा रहा था। नियमित संध्योपासना तथा आध्यात्मिक प्रवचनों के द्वारा छात्रों में आस्तिकता तथा वैदिक सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा का भी बीजारोपण किया जाता था। भारतीय संस्कृति के प्राण वेद-वेदांगों के

अध्ययन को प्रमुखता देकर वैदिक शिक्षा का भी पुनरुद्धार किया गया। वेद-वेदांग, उपनिषद्, भारतीय-दर्शन, पाश्चात्य-दर्शन, गणित, जीव-विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि सभी विषय पढ़ाये जाते थे। विदेशी ज्ञान-विज्ञान को पढ़ाते हुए भी राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए संस्कृत को वरीयता दी गई और शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हिन्दी को रखा गया।

गुरुकुल में निःशुल्क शिक्षा पद्धति का भी प्रवर्तन किया गया था। शिक्षार्थियों के लिए ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन अनिवार्य बताकर मानो स्वामी श्रद्धानन्द जी ने भारतीय संस्कृति के मूल को पुनः प्रतिष्ठापित किया, ब्रह्मचर्य ही शिक्षा का प्रमुख आधार है, ब्रह्मचर्य के बिना शिक्षा आधार रहित भवन के समान खोखली है। स्वामी जी का अपने शिष्यों के साथ 'आचार्य' रूप में एक अटूट सम्बन्ध था, वह आज की शिक्षा प्रणाली में गुरु-शिष्य सम्बन्धों का आदर्श हो सकता है। वेद में कहा है-

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।[५]

अर्थात् "उपनयन संस्कार करता हुआ आचार्य ब्रह्मचारी को अपने आश्रम में उसी प्रकार धारण करता है जैसे माता गर्भस्थ शिशु को धारण करती है।" स्वामी श्रद्धानन्द वैदिक आदर्शों के मूर्तिमान आचार्य थे। उनका विचार था कि "जिस समाज और देश में शिक्षक स्वयं चरित्रवान् नहीं होते उसकी दशा अच्छी हो ही नहीं सकती। उनका कहना था कि हमारे यहाँ टीचर है, प्रोफेसर है, प्रिन्सिपल है, उस्ताद है, मौलवी है पर आचार्य नहीं है। आचार्य अर्थात् आचारवान् व्यक्ति, की महती आवश्यकता है। चरित्र चरित्रवान व्यक्तियों के अभाव में महान से महान धनवान् राष्ट्र भी समाप्त हो जाते हैं।"[६]

इस प्रकार स्वामी जी ने शिक्षा प्रणाली को एक नई दिशा दी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरुकुल स्वामी जी के आदर्शों को साकार करने वाली एक प्रयोगशाला बन गई थी। पंडित सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार-"गुरुकुल का स्वरूप मात्र एक शिक्षण संस्था न रहकर शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन व मौलिक आन्दोलन का हो गया था।"[७]

स्त्री शिक्षा का प्रचार

स्त्री शिक्षा के प्रसार में अभूतपूर्व कार्य किया। इसका आरम्भ उनके अपने घर से ही हुआ। वह अपनी पुत्री को ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित विद्यालय में भेजते थे लेकिन जब उन्होंने अपनी ही पुत्री के मुख से ईसा-ईसा का संकीर्तन सुना तो उन्होंने कन्या पाठशाला खोलने का निश्चय किया।[८] जिसमें न केवल भारत की नारी जाति का अपितु भावी सन्तति का भी कल्याण सुनिश्चित हो सके। इसी संकल्प से उन्होंने जालन्धर में कन्या विद्यालय का आरम्भ किया। इस विद्यालय की स्थापना गुरुकुल कांगड़ी से एक दशक पूर्व ही हो गई थी। इसके विकास एवं संचालन का प्रमुख दायित्व लाला देवराज ने निभाया, किन्तु प्रेरणा एवं परामर्श स्वामी जी के ही थे।

आरम्भ में जब कन्या विद्यालय खोला गया, तब लोग अपनी कन्याओं को प्रवेश करने से डरते थे। स्वामी जी और लाला देवराज घर-घर जाकर लोगों को समझाते थे और उन्हें अपनी कन्याओं को शिक्षित करने की प्रेरणा देते थे। उनकी इस तपस्या के कारण ही गुरुकुल कांगड़ी के अनुकरण पर देश के भिन्न-भिन्न भागों में अनेक गुरुकुल तो स्थापित हुए ही कन्याओं के लिए भी देहरादून में कांगड़ी की शाखारूप में ही कन्या गुरुकुल की स्थापना हुई, जो आज भी स्त्री शिक्षा के प्रचार में अपना अमूल्य योगदान दे रहा है। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी जी का ये एक साहसिक व क्रान्तिकारी कदम था जिसने उनको महान शिक्षा शास्त्री एवं स्त्री जाति के उद्धारक के रूप में अविस्मरणीय बना दिया।

पत्रकारिता और हिन्दी भाषा का प्रचार

स्वामी जी लेखन और पत्रकारिता में भी निपुण थे। उन्होंने अपना 'सद्धर्मप्रचारक' पत्र पहले उर्दू में ही आरम्भ किया था, किन्तु उन्होंने अनुभव किया कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को उसका समुचित स्थान मिलना चाहिए, सभी स्तरों पर हिन्दी के प्रचार और प्रयोग की आवश्यकता है अतः उन्होंने पत्र को हिन्दी में निकालना शुरू कर

दिया। इससे उनको आर्थिक नुकसान भी हुआ[९] परन्तु उन्होंने अपनी अधिकांश रचनायें हिन्दी में लिखी। गुरुकुल कांगड़ी में शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाकर मानों घोषित कर दिया था कि जब तक प्राथमिक और उच्च कक्षाओं की पढ़ाई के लिए हिन्दी को प्रयुक्त नहीं किया जायेगा, तब तक छात्रों को विषयों का ज्ञान सुगमता से नहीं हो सकेगा। उन्होंने गुरुकुल के विद्वान् आचार्यों को विज्ञान जैसे विषयों की उच्चकोटि की पाठ्यपुस्तकों को हिन्दी में लिखने की प्रेरणा दी और उन ग्रन्थों को गुरुकुल से ही प्रकाशित कराया जो उनके हिन्दी प्रेम को प्रकट करता है।

स्वामी जी की हिन्दी-सेवा को उस समय राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति एवं सम्मान प्राप्त हुआ जब वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (भागलपुर) में अध्यक्ष मनोनीत किये गये।[१०] उनका विचार था कि भारत को मातृभूमि मानने वाले सभी भारतीयों को हिन्दी को अपनी मातृभाषा मानना चाहिए। हिन्दी के प्रति उनकी भावना उनके निम्न पंक्तियों से व्यक्त होती है– "इस अभागे देश के अतिरिक्त सभ्य संसार में कोई और देश भी है जहाँ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा के अतिरिक्त कोई विदेशी भाषा हो? जब हमारे बालक पढ़ते अंग्रेजी में है, सोचते अंग्रेजी में, सभी विषय सीखते अंग्रेजी में तो इन सबमें मौलिक विचार की शक्ति कैसे जीवित रह सकती है? भारतवर्ष एक विचित्र देश है जहाँ हिन्दू बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनाने वालों को देश हितैषी और ज्ञानी समझा जाता है। उठो, हिन्दी भाषा का सारे देश में प्रचार करो, हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाओ और मातृभाषा की तन, मन, धन से सेवा करो। तब फिर से एक राष्ट्र का निर्माण होगा और पुनः ये भारत प्रगति को प्राप्त होगा।"

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी जी ने विदेशी शिक्षा पद्धति की त्रुटियों और अभिशापों के निराकरणार्थ तथा मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपनी राष्ट्रीयता, आदर्शों व परम्पराओं के प्रति प्रेम को उत्पन्न करने वाली गुरुकुल शिक्षा

प्रणाली का आरम्भ किया। उसे मूर्त रूप देने के लिए अपना सर्वस्व लगा दिया। हिन्दू जाति को स्वामी जी का कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि गुरुकुल से आरम्भ करते हुए, स्त्री शिक्षा, तथा राजनीति में भी देश के लिए महान प्रयत्न किये। उन्होंने अपने जीवन को हर क्षण मानव कल्याण को दिया जो एक सुनहरे युग के रूप में सामान्य जन को प्रगति की ओर अग्रसर करता रहा। मानव जीवन बहुत अमूल्य होता है और उसका हर पल अन्यों की सेवा में लगा देना ये ईश्वर तुल्य है।

संदर्भ :

१. कल्याण मार्ग पथिक।

२. कल्याण मार्ग पथिक।

३. वैदिक विमर्श।

* शोधच्छात्रा, सर्वदर्शन विभाग, दर्शन संकाय श्री ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली-१६

४. वैदिक विमर्श।

५. अथर्ववेद।

६. विकीपीडिया।

७. आर्य समाज का इतिहास।

८. वैदिक विमर्श।

९. विकीपीडिया।

१०. वैदिक विमर्श।

संस्कृत शिक्षा के सन्दर्भ में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चशिक्षा स्तरों के पाठ्यक्रमों का अभिकल्पन

सरिता

शोधछात्रा (शिक्षाशास्त्र)

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ नई दिल्ली-110016

शिक्षा के द्वारा बालकों में ज्ञान, भावनाओं और कार्यों का व्यवस्थीकरण करना चाहिए। जिस शिक्षा में इन तीनों में से किसी एक का विकास होता है, वह शिक्षा अधूरी रहती है। आज की शिक्षा इसीलिए अनुपयोगी हो रही है कि उससे ज्ञान का विंकास तो होता है पर भावनाओं तथा समाजोपयोगी कार्यों की ओर बालक प्रवृत्त नहीं होते है। नैतिकता के विकास के लिये यह आवश्यक है कि नैतिकता सम्बन्धी ज्ञान दिया जाये। पर केवल ज्ञान ही हमें नैतिक नहीं बना सकता है। अतः यह आवश्यक है कि ज्ञान बालक के मस्तिष्क व व्यवहार में दृढ हो यह तभी सम्भव है जब बालक को उचित वातावरण व उचित आदतों के विकास के द्वारा उसके आसपास नीव रखी जाये, इसके लिये आवश्यक है कि विद्यालयों में विश्वविद्यालयों में परोक्ष व प्रत्यक्ष रूप से पाठ्यक्रम में नीव को पुष्ट और सबल बनाया जाय।

आज के वैज्ञानिक तथा तकनीकीयुग में व्यक्ति का अवकाश का समय बढ रहा है तथा कार्य के घण्टे कम होते जा रहे हैं, विज्ञान ने उसके कार्य को सरलतम तथा एक-सा मशीनी बना दिया है। कार्य की इकाई सरलतम और सुविधाजनक तो अवश्य हो गई है, पर उसके कार्य के परिणाम अत्यन्त विस्तृत व विनाशक होने की सम्भावनायें भी निहित है। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति, नैतिक व

सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से काम करें। समाज पर विपरीत व हानिकारक प्रभाव न पड़े। यही कारण है कि आज समाज में विद्वान् ज्ञान तथा कौशल को नैतिक तथा आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्बन्धित करने पर अधिक बल दे रहे हैं। नैतिक व आध्यात्मिक तत्त्वों के अन्तर्गत स्वयं के सम्बन्ध में ज्ञान, जीवन का अर्थ, व्यक्ति के अन्य सदस्यों के साथ सम्बन्ध, सत्य आदि से सम्बन्धित बातें ही आती है। अतः इन बातों को हमारी शिक्षा योजना में सम्मिलित करना अति आवश्यक है।

प्राथमिक स्तर पर (नैतिक) संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य

1. छात्रों में यह क्षमता उत्पन्न करना कि वे सरल गद्य खण्डों को शुद्ध पढ सकें तथा अपने सहपाठी की सहायता करे, उच्चारण शुद्ध करने में।
2. उन्हें इस योग्य बनाना कि वे स्वयं सरल संस्कृत श्लोकों का शुद्ध उच्चारण कर सके व गलत उच्चारण करने वाले सहपाठी की सहायता करे।
3. संस्कृत के कठिन गद्य खण्डों एवं श्लोकों के मुद्रित रूप को देखकर उन्हें शुद्ध रूप में लिखने की क्षमता उत्पन्न करना व कठिनाई युक्त छात्रों की भी सहायता करना।
4. सरल श्लोकों को कण्ठस्थ करवाना व प्रेरणा देना गलत उच्चारण पर मित्रों का उपहास न करके उनकी सहायता करना।
5. कण्ठस्थ किये हुए श्लोकों को बिना देखे शुद्ध रूप में लिखने की प्रेरणा देना व प्रतिदिन नियमपूर्वक पढ़ना।
6. श्रुतलेख लिखने का अभ्यास कराना।
7. मातृभाषा के सरल वाक्यों शब्दों का संस्कृत में अनुवाद करने की क्षमता का विकास करना।
8. प्रारम्भिक व्याकरण का ज्ञान देना तथा सहपाठियों की सहायता करना।
9. संस्कृत भाषा के प्रति छात्रों की रुचि उत्पन्न करना।

माध्यमिक स्तर पर (नैतिक) संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य

1. संस्कृत श्लोकों को छन्द के अनुसार उचित ताल, लय में पढ़ने का अभ्यास डालना व प्रत्यक्ष करके दिखाना।
2. संस्कृत के महत्त्वपूर्ण श्लोकों एवं सूक्तियों को कण्ठस्थ करने की प्रेरणा देना जिससे कि वे उन्हें आवश्यकतानुसार उद्धरण के रूप में प्रयुक्त कर सकें व अर्थ व्यवहार में ला सकें।
3. कुछ कठिन गद्य खण्डों को उचित आरोहावरोह, विराम चिह्नों का ध्यान रखते हुए उचित गति से पढ़ने की क्षमता उत्पन्न करना।
4. संस्कृत में भाषण, कहानी, कथन आदि को सुनकर अर्थग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना तथा उन कथा से प्राप्त नैतिक मूल्यों को व्यवहार में लाना।
5. संस्कृत भाषा में अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की योग्यता का विकास करना।
6. हिन्दी भाषा के सरल खण्डों को संस्कृत में अनुवाद करने की क्षमता उत्पन्न करना तथा कठिनाईग्रस्त सहपाठी की सहायता करना।
7. छात्रों को संस्कृत साहित्य से परिचित कराना ताकि उनको पढ़ने की प्रेरणा मिलें।
8. संस्कृत भाषा में छोटे वाक्यों को लिखना कहानी लेखन पत्र इत्यादि व मधुर प्रियभाषी स्वच्छता सादगी समय की पाबन्दी निष्पक्षता।
9. निरन्तर अध्ययनशीलता अपने विषय में आस्था, आत्मविश्वास दृढ़निश्चयी बनाना।

उच्च स्तर पर (नैतिक) संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य

1. संस्कृत के श्लोकों का छन्द के अनुसार वाचन करने की योग्यता का विकास करना व आवश्यकता को जानकर समस्या का हल बताना।

2. संस्कृत भाषा के सरल व कठिन गद्य खण्डों को शुद्ध रूप में पढ़ने को योग्यता उत्पन्न करना।
3. संस्कृत साहित्य का मातृभाषा में अनुवाद करने की क्षमता का विकास।
4. संस्कृत साहित्य का विशद ज्ञान कराना।
5. उत्कृष्ट साहित्य संकलन की प्रेरणा देना।
6. अवसरानुकूल संस्कृत में भावाभिव्यक्त करने की कुशलता उत्पन्न करना अपने कार्य को पूर्ण करने तथा कुछ अच्छा बनाने की क्षमता।
7. संस्कृत भाषा व साहित्य से सम्बन्धित विषयों पर शोध कार्य करने की क्षमता उत्पन्न करना तथा विषय व साहित्य में आस्था रखना।
8. संस्कृत रचनाओं का समालोचनात्मक विवेचन करने की क्षमता का विकास निष्पक्षतापूर्ण करना।
9. संस्कृत भाषा में बोलने की क्षमता का विकास करना।

अर्थात् बालक शिक्षक, शैक्षिक अधिकारी निर्देशनकर्ताओं, शोधकर्ता आदि के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है। यह समस्त शैक्षिक प्रक्रिया सीखने की स्थिति व प्रत्येक स्तर पर आवश्यक है कि शिक्षा को उस बालक के स्तरानुसार प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा स्तर के रूप में संस्कृत शिक्षा प्रदान की जाये।

सन्दर्भग्रन्थ

संस्कृत शिक्षण, डा. नन्दराम शर्मा, साहित्य चन्द्रिका प्रकाश, (प्रथम संस्करण, 2007), 24, न्यू पिंकसिटी मार्केट, जयपुर

नैतिक शिक्षण, के. सी. मलैया, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

संस्कृत साहित्य में निहित मानवीय मूल्य

प्रतिभा गौतम
शोधार्थी, विभाग-पुराणेतिहास
श्रीलालबहादुर शास्त्रीराष्ट्रिय संस्कृतविद्यापीठ, नईदिल्ली-16

जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जिस पर संस्कृत साहित्य में दृष्टि न डाली गई हो। मानवीय मूल्य तो कूट-कूटकर संस्कृत साहित्य में भरे हैं। ''मूलेन आनाम्यम्'' इस विग्रह के अनुसार मूल्य वह है जिसके द्वारा किसी के महत्त्व का आकलन किया जाता है। अतः मानवीय मूल्य वह है जो मानव के महत्त्व का आकलन करते हैं तथा जहाँ मानवता जीवित रहती है। सत्य, अहिंसा, मानव प्रेम, विश्वबन्धुत्व, एकता, समानता, लोककल्याण की भावना आदि ऐसे ही मानवीय मूल्य हैं जिनकी रक्षा के लिए आज राज्य मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसी संस्थाऐं कार्य कर रही हैं। जिन्हें सामाजिक कार्यकर्ता अनेक मंचों के माध्यम से जोर-शोर से उठा रहे हैं। उन्हीं मानवीय मूल्यो को हमारे मनीषियों ने संस्कृत साहित्य में उपनिबद्ध किया है। इन मानवीय मूल्यों की व्यावहारिक शिक्षा बच्चों को बचपन में ही दी जाती थी क्योंकि बाल्यकाल में दिए गये संस्कारों का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इन्हीं मानवीय मूल्यों को मैंने अपने शोधालेख में उपनिबद्ध करने का प्रयास किया है।

मानवीय मूल्यों को प्राय दो भागों में बाँटकर देखा जाता है व्यक्तिगत मूल्य और सामाजिक मूल्य। दोनों में ही चोली-दामन का सम्बन्ध है। व्यक्तिगत मूल्यों के आधार पर ही मानव सामाजिक मूल्यों की तरफ अग्रसर होता है क्योंकि व्यक्ति अपने प्रति जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा समाज से रखता है उसी प्रकार का व्यवहार समाज के प्रति भी करता है।

१. सत्य-

मानव जीवन में सत्य का अत्यधिक महत्त्व है। जिसके प्रारम्भिक सूत्र ऋग्वेद में मिलते हैं। इन्हीं को आधार बनाकर परवर्ती तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने कथा कहानियों के माध्यम से जनजीवन को सत्य के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया।

ऋग्वेद में नैतिक आचरण के द्वारा सत्य की प्राप्ति का चित्रण किया है-

ऋतेन सत्यं ऋतसाप आयन्। (ऋग्वेद 8/62/12)

ऋग्वेद में कहा गया है कि अन्त में सत्य की विजय होती है और असत्य पराजित होता है-

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।

तपोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवतिहन्त्याऽसत्।।
(ऋग्वेद 7/104/12)

साथ ही यह भी प्रार्थना की गई है कि हमारा हृदय तथा विचार सत्य से युक्त हो-

आकूतिः सत्यामनसोमेऽस्तु। (ऋग्वेद 10/128/4)

सत्य धर्म का पालन करने से व्यक्ति संसार में प्रतिष्ठित होता है यही भाव व्यक्त करते हुये कहा है-

सत्यधर्माणा परमे व्योमनि। (ऋग्वेद 5/63/1)

इसी पर छान्दोग्योपनिषद्, शतपथब्राह्मण, मनुस्मृति, तथा वेदिकोत्तर साहित्य में भी इस पर व्यापक चर्चा मिलती है।

2. अहिंसा-

अहिंसा का संकुचित अर्थ हिंसा न करना है, जबकि व्यापक अर्थ में मन, वचन और कर्म से प्राणी मात्र के प्रति किसी तरह के द्वेष का भाव न लाना है। आज द्वेष की भावना सभी स्तरों पर अत्यधिक बढ़

रही है। जिस द्वेष, हिंसा रहित बुद्धि प्राप्ति की कामना जो ऋग्वेद में की गई है उसकी आज आवश्यकता है-

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम्।
(ऋग्वेद 7/67/5)

वेद में हिंसा के प्रति घृणा की भावना के दर्शन होते हैं। मन्त्रों में गौ के लिए 'अध्न्या' (न मारीजाने योग्य) तथा यज्ञ के लिंए 'अध्वर' (हिंसा से रहित) शब्दों का प्रयोग है। 'अहिंसा परमो धर्मः' का सिद्धान्त सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है।

3. मानव प्रेम व विश्वबन्धुत्व-

मानव मात्र को प्रेम की दृष्टि से देखने की भावना व्यक्त करते हुए कहा गया है-

प्रियंसर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये। (अथर्ववेद 19/62/1)

यजुर्वेद में सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखने की बात कही गई है-

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
(यजुर्वेद 36/18)

विशाल पृथिवी को ही बन्धु कहा गया है-

बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। (ऋग्वेद 1/164/33)

इसका तात्पर्य है कि पृथिवी पर रहने वाला प्राणी समुदाय ही बन्धु है। इसी से प्रेरणा लेकर हमारे संविधान निर्माताओं ने बन्धुत्व शब्द को हमारे संविधान की प्रस्तावना में जोड़ा।

4. एकता व समानता-

ऋग्वेद मन, वचन और कर्म से एकता की भावना पर बल देता है-

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
(ऋग्वेद 10/191/3)

इसके अलावा मानव की मन्त्रणाओं, समितियों, विचारों एवं अभिप्रायों में भी एकता एवं समानता लाने की प्रार्थना है-

समानो मन्त्रः समिति समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
(ऋग्वेद 10/191/4)

ऋग्वेद में कहा गया है कि न कोई छोटा है न कोई बड़ा है-

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते। (ऋग्वेद 5/60/5)

एकता, समानता एवं सहृदयता का यह वैदिक आदर्श ही संसार को एक परिवार की भावना में बांधने का मंगल सूत्र है-

समानी प्रपा वोऽन्नभागः। (अथर्ववेद 3/30/6)

5. लोक कल्याण की भावना-

सभी प्राणियों के हित की कामना लोक कल्याण की भावना है। मानव एवं पशु आदि सब प्राणियों के कल्याण की कामना की गई है-

शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे। (ऋग्वेद 7/54/1)

एक मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि वायु हम सब के लिए सुख स्वरूप हो कर बहे, सूर्य हमारे लिए सुखमय होकर तपे, अत्यन्त गरजने वाले मेघ भी हमारे लिए सुखमय वर्षा करे-

'शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः
कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु॥' (यजुर्वेद 36/10)

ऐसी बुद्धि एवं ऐसी संपदा का याचना की गई जो कि विश्वकल्याण एवं सार्वजनिक हित का सम्पादा न करने वाली हो-

तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो। वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम्।
(ऋग्वेद 3/57/6)

6. परोपकार की भावना-

दूसरों का उपकार करने की भावना का नाम परोपकार है। जो कोई भी कार्य परोपकार के लिए किया जाता है वह पुण्य है। परोपकार

के लिए प्रेरित करते हुए कहा गया है कि दान व परोपकार से सम्पति सुरक्षित रहती है, वह नष्ट नहीं होती-

न ता नशन्ति न दभाति तस्करः। ....याभिर्यजते ददाति च।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण 2/4/6/8)

इन्हीं वैदिक प्रसंगों से प्रेरणा ग्रहण कर परवर्ती विद्वानों ने महाकाव्यों, नाटकों, कथाओं में इन्हें सरल शैली में उपनिबद्ध किया है ताकि जनसाधारण भी इनको समझ सकें, अपने जीवन में उतार सकें। पञ्चतन्त्र, कथासरित्सागर, हितोपदेश आदि ग्रन्थों में सरल भाषा में गूढ़ रहस्य को कहानियों के माध्यम से उपनिबद्ध किया है जिन्हें बचपन में अनिवार्य रूप से बच्चों को पढ़ाया जाना चाहिए।

अगर हम हमारे तत्त्ववेत्ता ऋषियों की इस उदात्त दृष्टि को समाज की आने वाली पीढ़ी के सामने ला सकें तो मेरा मानना है कि हम न केवल मानवीय मूल्यो को बचा सकेंगे बल्कि एक सभ्य-सुसंस्कृत समाज का निर्माण भी कर सकेंगे जो युगों-युगों तक अनुकरणीय होगा।

संस्कृतशिक्षा एवं मूल्यांकन

सपना शाक्य
शिक्षा शास्त्र विभाग, शोधछात्रा
श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय

शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन का विशेष महत्व है। शिक्षण के माध्यम से अध्यापक बालकों में व्यवहारगत परिवर्तन लाना चाहता है। ये व्यवहारगत परिवर्तन व्यक्तित्व के ज्ञानात्मक पक्ष, भावनात्मक पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष में होते हैं परिवर्तन किस सीमा तक हो पाया? तथा उनका स्तर क्या रहा? इस सम्बन्ध में निर्णय मूल्यांकन द्वारा ही लिया जाता है। मूल्यांकन एक गुणात्मक प्रक्रिया है। जिसके माध्यम से अध्यापक के अध्यापन कार्य की सफलता तथा असफलता एवं बालक के अधिगम स्तर का ज्ञान हो जाता है। इसी कारण मूल्यांकन छात्र और अध्यापक के मध्य निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया होती है।

संस्कृत भाषा एक परिष्कृत भाषा है। जिसे शुद्ध तथा त्रुटिरहित ढंग से अध्ययन तथा अध्यापन छात्र तथा अध्यापक दोनों का ही कार्य है। किन्तु वर्तमान समय में संस्कृत भाषा की ओर बढ़ती हुई छात्रों की अरूचि अध्यापकों का नीरस स्वभाव संस्कृत भाषा के शिक्षण के साथ न्याय संगत नहीं है।

इसलिए संस्कृत शिक्षा का शिक्षण रुचिपूर्ण एवं निष्ठापूर्वक छात्रों को करवाना चाहिए तथा उनका नियमित रूप से मूल्यांकन करते रहना चाहिए। मूल्यांकन करने से छात्रों में संस्कृत शिक्षा के प्रति उत्साह और रोचकता विद्यमान रहेगी। संस्कृत शिक्षा के मूल्यांकन का उद्देश्य शुद्धता एवं स्पष्टता से लिखने की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना और बालक को शुद्ध रूप से परिचित कराना है, जिससे वह भविष्य में अशुद्धि का त्याग कर दे।

मूल्यांकन के सिद्धांत

अध्यापक को कुछ सामान्य मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षणिक सिद्धांतों का ध्यान रखना चाहिए-

1) नियमितता

2) तत्परता

3) रूचि

4) सोद्देश्य होना

5) अनुवर्ती कार्य का होना

6) छात्रों का सहयोग प्राप्त करना

7) सामूहिक मूल्यांकन से व्यक्तिगत मूल्यांकन अच्छा होता है।

8) यदा-कदा तत्काल जाँच

9) निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण

छात्र द्वारा कुछ सामान्य अशुद्धियाँ जैसे-श्रुतलेख, अनुलिपि तथा प्रतिलिपि को प्रत्येक अंश का प्रत्येक रचना का एवं अनुवाद के प्रत्येक कार्य का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। छात्र द्वारा लिखित कार्य में प्रायः निम्नलिखित प्रकार की अशुद्धियाँ हुआ करती है-

1) वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ

2) वचन सम्बन्धी त्रुटि

3) काल सम्बन्धी अशुद्धि

4) कारक सम्बन्धी अशुद्धि

5) प्रत्यय, उपसर्ग, विभक्ति सम्बन्धी अशुद्धियाँ

6) विराम सम्बन्धी अशुद्धि

7) सामान्य एवं अपवाद नियमों की अवहेलना

8) वाक्य में पदक्रम की भूल

9) अनुच्छेद में क्रमबद्धता का अभाव

10) शब्द रचना सम्बन्धी त्रुटि

11) लिंग सम्बन्धी त्रुटि

12) विशेषण-विशेष्य-समायोजन की भूल

13) सन्धि की त्रुटि

14) समास सम्बन्धी त्रुटि

कभी-कभी छात्र प्रमादवश ही त्रुटि कर बैठते हैं। कुछ त्रुटियाँ असावधानी के कारण हो जाती है यदि छात्र ही उनको पहचान ले तो त्रुटियाँ दूर हो सकती है। मूल्यांकन का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि मूल्यांकन के द्वारा छात्रों में स्वावलम्बन की भावना जाग्रत हो सके और प्रत्येक कार्य को करने के लिए अध्यापक पर आश्रित न रहे। उनमें ऐसी सोच विकसित नहीं होनी चाहिए कि वे ये सोचें की उन्हें त्रुटि करने का अधिकार है और अध्यापक मूल्यांकन करके अशुद्धि संशोधन कर ही देगा। मूल्यांकन से छात्रों में आत्मविश्वास की भावना का विकास होना चाहिए, जिससे कि वे भविष्य में शुद्ध लिखने एवं किसी शब्द का शुद्ध निर्णय करने में भ्रम व सन्देह से मुक्त हो सके।

मूल्यांकन कब करें

संस्कृत शिक्षण करवाते समय शिक्षक द्वारा मूल्यांकन होना आवश्यक है। जैसे ही छात्र कक्षा में रचना कार्य समाप्त करे, मूल्यांकन होना आवश्यक होता है। अन्यथा त्रुटियों का निराकरण भली प्रकार नहीं हो सकता और बाद में छात्र यह भूल जाते हैं कि उन्होंने अमुक शब्द किस प्रयोजन से लिखा था। अनुवाद के अभ्यास कार्य का मूल्यांकन भी तुरन्त बाद ही होना चाहिए।

रचना और अनुवाद का मूल्यांकन यथा संभव कक्षा में छात्रों के सम्मुख ही होना चाहिए जिससे छात्रों को अपनी त्रुटियों का पता लग जाए।

अशुद्धियों / त्रुटियों के कई रूप होते हैं। मूल्यांकन में छात्रों को यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि अमुक स्थान पर कौन सी त्रुटि है। इसके लिए हम निम्न चिन्हों का भी प्रयोग कर सकते हैं। जैसे-

- व्या = व्याकरण दोष
- व्या / का = कारक सम्बन्धी दोष
- व्या / व = वचन - दोष
- व्या / वा = वाच्य की त्रुटि
- व्या / लि = लिंग की भूल
- उप = उपसर्ग का भ्रम
- वि = विभक्ति दोष
- प्र = प्रत्यय सम्बन्धी भूल
- काल = काल सम्बन्धी भूल

0 व = वर्तनी दोष

0 श = शब्द-चयन सम्बन्धी भूल

\+ + = समास सम्बन्धी त्रुटि

\+ = सन्धि सम्बन्धी त्रुटि

मूल्यांकन कैसे करें

संस्कृत शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों में भाषा के चार कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) की योग्यता विकसित करना है इनमें से दो कौशल (सुनना, बोलना) का सम्बध मौखिक रूप से है। दो कौशलों (पढ़ना, लिखना) का सम्बन्ध लिखित रूप से है। अतएव संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन निम्नलिखित दो प्रकार की विधियों से किया जाता है-

1) मौखिक विधि
2) लिखित विधि
    i) वार्तालाप
    ii) शलाका
    iii) शास्त्रार्थ (तर्क-वितर्क)

iv) प्रश्नोत्तर

v) भाषण

vi) सस्वरवाचन

vii) अन्ताक्षरी

3) लिखित विधि

i) निबन्धात्मक

ii) श्रुत लेख

iii) वस्तुनिष्ठ

iv) लिखित प्रश्न पत्र

अशुद्धियाँ

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मूल्यांकन किसी एक विषय के लिए नहीं अथवा किसी एक वर्ग विशेष का ना होकर प्रत्येक विषय के लिए अपनाया जा सकता है। अर्थात् मूल्यांकन का शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्व है। जिससे एक उत्तम शिक्षण कार्य किया जा सके। अन्यथा इसके अभाव में शिक्षा का विस्तार व विकास दोनों ही असम्भव है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1) डॉ. नन्दराम शर्मा 'संस्कृत शिक्षण' साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2007

2) रीटा शर्मा, अमिता जैन 'संस्कृत शिक्षण' आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2005

3) आर.ए. शर्मा, 'पाठ्यक्रम विकास' इन्टनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, 2003

संस्कृत शिक्षा के प्रसार विकास एवं चुनौतियाँ

रोहित थपलियाल

विशिष्टाचार्य छात्र

प्रस्तावना–

"संस्कृतं नाम दैवी वाक् अन्वाख्याता महर्षिभि:" यह उक्ति हमें निश्चितरूप से संस्कृत के गौरवशाली स्थान को स्मरण कराती है। यही नहीं हमें उन ऋषियों, महर्षियों एवं महान् विद्वान विभूतियों की भी याद दिलाती है, जिन्होंने इसे संरक्षित किया व परिवर्धित भी। वस्तुत: संस्कृत शिक्षा वैदिक काल से चलती आ रही है। यह शिक्षा पहले से ही आश्रम पद्धति में अथवा गुरुकुलीय प्रणाली का एक अंग थी। उपनिषदों में भी आचार्य अन्तेवासी की बात हमें पढ़ते व सुनते रहते हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि हम इस पहलू पर विचार करते हैं तो बड़ी निराशा ही शायद दिखती है, कि यह सब कुछ महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं संस्कृताकादमियों तक ही सिमट के रह गयी।

संस्कृत भाषा तो उद्गम स्थल का स्रोत बना हुआ पानी शिलाओं को विदीर्ण करते हुये महानदी का आकार ले लेता है। अत: कहा जा सकता है कि तुलनात्मक नजरिये से संस्कृत भी कभी सीमित दायरे में नहीं थी, क्योंकि संस्कृत भाषा का मनुष्य के जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक की सभी क्रियाओं से सम्बन्ध होता है। यह उपासना स्थलों पर हमेशा गूंजती रहती है, अत: इसके केवल लोकोन्मुखी, जनोपदायी पहलूओं को भी यदि संस्कृत भाषा उजागर कर दे तो नई सदी के भारत का रूप बदल सकती है।

संस्कृत शिक्षा एवं संस्कृत भाषा को लोग प्राय: मृतभाषा के रूप में मानते हैं क्योंकि यह आम जन से दूर है। ऐसी उलाहना तमिलनाडू कि द्रविड मुनेत्र कडगम सरकार ने १९९७ में चेन्नई उच्च न्यायालय में अपनी प्रति याचिका में दिया था। जिस पर न्यायमूर्ति श्री रंग नाथ मूर्ति

ने ऐतिहासिक निर्णय सुनाते हुये ०२/०१/१९९९ को कहा था कि "संस्कृत एक जीवंत भाषा है।" इसे मृत भाषा इस आधार पर नहीं कहा जा सकता कि यह आम बोलचाल की भाषा नहीं है। न्यायालय का यह तर्क उचित है क्योंकि अंग्रेजी से कई गुना अधिक संस्कृत जानने वाले लोग भारत में है। यदि १८६१ में हुई जनगणना के आंकडे देखे तो पायेंगे कि हिन्दी और उत्तर भारतीय लोगों ने अपनी मातृ भाषा संस्कृत ही बतलायी थी।

संस्कृत भाषा का महत्त्व हमारे लिये इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह भाषा अपने आपमें पूर्ण एवं जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित है जैसे – शुक्रनीति, विदुरनीति, पंचतन्त्र, हितोपदेश और कौटिल्य का अर्थशास्त्र इत्यादि ग्रन्थों से प्राप्त हो सकता है जिनका आधुनिक भवन निर्माण संस्कृत साहित्य के अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिनका आधुनिक भवन निर्माण विशेषज्ञ "आर्किटेक्ट" भी अनुसरण करते हैं। इस प्रकार से धार्मिक और न्याय क्षेत्र में हमारी याज्ञवल्क्य स्मृति, गौतम धर्मसूत्र, मनुस्मृति आदि अनेक ग्रन्थ हैं। जो कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें चरित्र और आचरण की महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्रदान करते हैं।

वस्तुतः संस्कृत शिक्षा की वर्तमान परिस्थिति को यदि आंका जाय तो आज भी आंग्ल भाषायी बाहुल्य देश में यह हमारे सामने असहाय प्रतीत होती है। इस भाषा के लिये कुछ ही गिने चुने प्रयास दृष्टिगोचर होते हैं।

संस्कृत शिक्षा का प्रचार, प्रसार, विकास एवं चुनौतियाँ–

संस्कृत शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार का जब प्रश्न हमारे सामने आता है तो वास्तव में ही हम अपने चिन्तन को इस बिन्दु पर केन्द्रित करने में असफल रहते हैं, कि यदि यह सभी भाषाओं की जननी है तो हम कर्मकाण्ड तक ही सीमित क्यों हैं? संस्कृत में लिखे गये ग्रन्थ वेद पुराण महाभारत गद्य पद्य किस काम के हैं? क्या ये केवल गिने चुने महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय तक ही सीमित रहेंगे? वास्तव में ही यह संस्कृत भारती एवं संस्कृत अकादमी के चन्द कार्य कर्ताओं तक ही

सीमित है। उनके द्वारा संचालित शिविरों में भी संस्कृत पढ़ने वालों को सम्भाषणार्थ जोर देकर प्रेरित करना पड़ता है, अर्थात इसका प्रसार एवं प्रचार सभी चाहते हैं लेकिन इसके लिये मनसा वाचा कर्मणा कार्य करने वाले लोगों की संख्या नाम मात्र की है।

अत्यधिक क्या कहे विश्वविद्यालयों में शोध छात्रों द्वारा किये गये शोध भी पुस्तकालय की चार दीवारी के अन्दर समेटे रह जाते हैं। यह भी धारणा है कि संस्कृत पढ़ने वाले छात्र मध्यम वर्गीय होते हैं। जिसके कारण संकुचित विचारधारा समाज को गलत संदेश प्रेषित करती हैं।

ऐसी परिस्थिति में संस्कृत शिक्षा को प्रचारित एवं प्रसारित करने की अत्यन्त आवश्यकता महसूस होती है। अतः इसे बढ़ावा देने एवं वर्तमानिक युग में स्थान देने के लिये आधुनिकता के साथ जोड़ा जाना चाहिये। विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषयों को संस्कृत के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिये, चाहे वे विषय विज्ञान से सम्बन्ध रखते हों या गणित विषय से। अधिक से अधिक संस्कृत के कोष ग्रन्थों का प्रयोग किया जाये जिससे आम छात्र भी संस्कृत भाषा से रुबरु हो सके। पत्र पत्रिकाओं का कार्य भी सभी विद्यालयों महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालय स्तर पर सरकार द्वारा अनिवार्य किया जाय।

शोधकर्त्ताओं के भी शोध "सा विद्या या नियुक्तये" प्रणाली पर आधारित न होकर मौलिक हों। केवल डिग्री तक लेने मात्र से काम नहीं चलेगा अपितु भाविनि पीढी के लिये भी प्रेरणाप्रद हो, उन्नति प्रद हो। इतोऽपि इसके लिये सभी संस्कृतज्ञ एवं शिक्षकों को मिलकर नई पीढ़ी को भी प्रेरित करना चाहिये ताकि वे भी संस्कृत के प्रति जागरूक बनें व इसे सुसमृद्ध बनायें।

वस्तुतः मेरी दृष्टि में संस्कृत के प्रसार एवं विकास की दृष्टि में दो ही पक्ष अथवा मार्ग हो सकते हैं– पहला जो उपनिषदों में भी प्रतिपादित है, सत्यं वद धर्मं चर। अर्थात् प्रत्येक छात्र अपने गुरु के साथ चरणों में सदा सत्य का अनुशीलन करने पर कटिबद्ध हो जिससे छात्र का नैतिक विकास हो, और प्रत्येक शिक्षक एवं छात्र संस्कृत शिक्षा के

ग्रन्थों को अपने वास्तविक जीवन से जोड़कर सम्पूर्ण संसार को संस्कृतग्राम बना दे।

इसका दूसरा पक्ष यद्यपि पूर्व में भी चर्चित है तथापि समरण दिलाना चाहता हूँ कि संस्कृत के विद्यालयों की अत्यधिक संख्या न बढ़ाकर केवल अत्याधुनिक विषयों को जो उपयोगी हों सम्मिलित किये जायें। जिस प्रकार स्वर्ण तपाकर और भी कान्तिमान हो जाता है, ठीक उसी प्रकार उस संस्था से निकला छात्र सर्वांग विकसित हो और समाज के अन्य लोगों के लिये प्रेरणा प्रद हो।

अतएव संस्कृत के स्वर्णिम भविष्य हेतु विद्यालयों, महाविद्यालयों का पाठ्यक्रम अविलम्ब आधुनिकीकरण किया जाना चाहिये। इस भाषा की पुस्तकों को सामान्य जन तक पहुँचाया जाना चाहिए। दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा विभिन्न समाचार पत्रों द्वारा यद्यपि यह भाषा पहुँचायी तो जा रही है, किन्तु अभी बहुत किया जाना बाकी है।

संस्कृत भाषा के प्रसार न होने के वस्तुत: कई कारण हो सकते हैं, जो मेरी दृष्टि में निम्न हो सकते हैं–

* संस्कृत पढ़ने वालों के लिये रोजगार की कमी।
* पश्चात्य संस्कृति का अधिक प्रभाव एवं अन्धानुकरण।
* संस्कृत के प्रति शिक्षेच्छुओं की उदासीनता।
* समाज के लोगों का उपेक्षा भाव।

निष्कर्ष–

अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि संस्कृत शिक्षा को सशक्त बनाने के लिये विशेष तौर पर कदम उठाये जायें। आज देश भर में चलने वाले संस्कृत विश्वविद्यालयों का यह उत्तरदायित्व बना जाता है, कि वे इसके पाठ्यक्रम पर ध्यान दें। वे इसमें ऐसे विषयों का समायोजन करें जिससे रोजगार के अवसर भी बनें।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा भी इसके लिये प्रयास किये जा रहे हैं, परन्तु वे इतने उपयोगी सिद्ध नहीं हो रहे जितनी आवश्यकता है।

यानि विकास प्रसार नाम मात्र का ही दीख रहा है। इसे सशक्त बनाने के लिये सर्वकार पक्ष से भी कदम उठाये जाने चाहिये। प्रत्येक शिक्षक एवं छात्र की जिम्मेदारी बनती है, कि वह इसके विकास की दिशा में सहयोग करें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

१. कीथ बी ए संस्कृत साहित्य का इतिहास १९६७ मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, मुम्बई। अनुवादित डॉ. मंगलदेव शास्त्री।

२. गंगन्ना जि, जयन्ती (नवम पुष्पम्) २०१२ रा. सं.सं. जयपुर परिसर :

३. उपाध्याय बलदेव, २००१, संस्कृत साहित्य का इतिहास, खण्डेलवाल प्रैस एण्ड पब्लिकेशंस मान मन्दिर वाराणसी।

संस्कृत शिक्षा : मुद्दे एवं चुनौतियाँ- स्त्री शिक्षा के विशेष संदर्भ में

सविता राय[1]
विद्यावारिधि छात्रा

"व्यक्तिगत रूप में मेरा यह मत है कि संस्कृत इस देश की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। यदि लोग अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को सीख सकते हैं, तो वे संस्कृत क्यों नहीं सीख सकते, जो हमारी प्राचीन भाषा है।" **–डॉ. संपूर्णानंद**

देववाणी संस्कृत भारत की संस्कृति एवं परंपरा की वाणी है। यह कहना अन्यथा नहीं होगा कि भारतीय संस्कृति जितनी पुरानी है संस्कृत भाषा भी उतनी ही पुरानी है। प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि हमारे धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक, राजनीतिक सभी ग्रन्थ संस्कृत में ही रचे गये हैं। मानव जीवन के चार स्तम्भ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के संबंध में अपने विचारों के प्रस्फुटन का माध्यम हमारे साहित्यकारों ने संस्कृत भाषा को ही बनाया है। संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। 'लौकिक अभ्युदय एवं पारलौकिक निःश्रेयश की सिद्धी के साधन जितने भी ज्ञान एवं विज्ञान हैं, जितने कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड हैं, जितने शास्त्र और पुराण हैं, उन सबको अवगत करने का उपाय यही संस्कृत भाषा है।'[2] परन्तु आज इस प्राचीनतम भाषा का अध्ययन-अध्यापन अत्यन्त सीमित होता जा रहा है। यद्यपि संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न संस्कृत संस्थानों द्वारा अनेक कार्यक्रमों एवं योजनाओं को समय-समय पर क्रियान्वित किया जाता रहा है तथापि व्यापक एवं ठोस दृष्टिकोण को अपनाकर कार्य

---

1 सहायक अनुसंधानकर्त्री, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नयी दिल्ली- 110016

2 संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 8

करने की आवश्यकता है जिससे संस्कृत पठन-पाठन की दशा में सुधार के साथ-साथ इसका अध्ययन करने वालों के भविष्य को एक निश्चित दिशा भी प्रदान की जा सके। अतः वर्तमान में उन बिन्दुओं पर विचार करने की आवश्यकता है जिनके कारण संस्कृत के पठन-पाठन में कमी आ रही है। संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में चुनौतियों को अधोलिखित बिन्दुओं के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

शिक्षा के उद्देश्य–शिक्षा के उद्देश्य समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखकर निर्धारित किए जाते हैं। संस्कृत का एक भाषा के रूप में अध्ययन इसके अध्ययन के उद्देश्य की व्यापकता को सीमित कर देता है। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर संस्कृत शिक्षा के उद्देश्य को भाषा शिक्षा के उद्देश्य तक सीमित रखना तो समीचीन प्रतीत होता है। परन्तु उच्च स्तर पर ऐसे उद्देश्यों को निर्मित करने की आवश्यकता है, जो समाज एवं व्यक्ति की आवश्यकताओं से जुड़े हों। हमें यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि संस्कृत शिक्षा का उद्देश्य केवल शुद्धोच्चारण करने वाले पण्डित अथवा शिक्षक समाज को देना है या ऐसे नागरिक, जो आज के प्रतिस्पर्धी युग में स्वयं को किसी भी क्षेत्र में कमजोर अनुभव न करें अपितु सशक्त रूप में समाज के अन्य लोगों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकें। ऐसे उद्देश्य निर्धारित करने की आवश्यकता है जिससे परंपरागत विद्यालयों या गुरूकुलों में छात्रों को पवित्र संस्कृतमय वातावरण में आधुनिक विषयों यथा कम्प्यूटर, अंग्रेजी, गणित इत्यादि की शिक्षा प्रदान की जा सके। अंग्रेजी विषय को यहाँ जोड़ने की बात इसलिए की जा रही है क्योंकि आज भारत के शैक्षिक-व्यावसायिक किसी भी क्षेत्र की बात करें अंग्रेजी का वर्चस्व छाया हुआ है ऐसे में यदि संस्कृत का ज्ञान रखने वाला अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञाता है तो वह संस्कृत के ज्ञान को अन्य भाषाओं के माध्यम से लोगों के समक्ष उपस्थित कर सकता है। संक्षेप में उद्देश्यों को पुनर्मूल्यांकित कर व्यावहारिक उद्देश्यों का निर्माण करना संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रमुख मुद्दा है।

विद्यालयीय शिक्षा- विद्यालयीय स्तर पर भी संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में अनेक ऐसे मुद्दे हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है।

परंपरागत विद्यालयों में तो संस्कृत का पठन-पाठन प्रारंभ से ही कराया जाता है एवं शिक्षण का माध्यम संस्कृत ही होती है परन्तु आधुनिक विद्यालयों में कक्षा छः से संस्कृत का अध्ययन मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में कराया जाता है। यदि कुछ राज्यों को छोड़ दिया जाए तो परंपरागत विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या बहुत ही कम है। वर्तमान आधुनिक विद्यालयों (पब्लिक स्कूलों) में संस्कृत के साथ-साथ विदेशी भाषाओं को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाने लगा है जिससे संस्कृत पढ़ने वालों की संख्या आधुनिक विद्यालयों में और भी कम होने लगी है। यह अत्यन्त दुःखद एवं ध्यातव्य तथ्य है कि आज आधुनिक विद्यालयों (पब्लिक एवं सरकारी) में संस्कृत भाषा को पाठ्यक्रम से ही निष्काषित किया जा रहा है। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के इस युग में यदि हम संस्कृत के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देना चाहते हैं, इसकी शिक्षा को अपनी भावी पीढ़ी के संस्कारों में जीवित रखना चाहते हैं तो विद्यालयीय शिक्षा में संस्कृत भाषा की शिक्षा को सम्मिलित करना आवश्यक है जिससे इसके अध्ययन अध्यापन को सरिता की जल की भांति निरंतर गतिमय एवं प्रवाहमय रखा जा सके। ऐसे में संस्कृत विद्वानों का यह दायित्व हो जाता है कि वे संस्कृत भाषा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता सिद्ध करें। गौरवमयी संस्कृत भाषा को विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में पुनः स्थापित करवाने के दायित्व का निर्वाह करें।

विश्वविद्यालयीय शिक्षा–विश्वविद्यालयीय स्तर पर संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में अनेक चुनौतियाँ हैं। सर्वप्रथम चुनौती उच्चशिक्षा को गुणवत्तापूर्ण बनाने एवं गुणवत्तापूर्ण शोधकार्यों को प्रस्तुत करने की है। उच्च स्तर के शिक्षण में चिन्तन की प्रधानता होती है परन्तु शिक्षण के इस स्तर पर भी छात्र केवल अनुवादकार्य तक ही अपनी योग्यता को सीमित रखते हैं तो यह बड़े ही दुःख एवं चिन्ता का विषय है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में आधुनिक शिक्षण संस्थानों में संस्कृत का अध्ययन केवल भाषा अथवा साहित्य की दृष्टि से किया जा रहा है। ऐसे में संस्कृत साहित्य में वर्णित सभी विषयों या ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं का अध्ययन एक अलग विषय या विज्ञान के रूप में करना वर्तमान में एक बहुत बड़ी चुनौती है। परंपरागत उच्चशिक्षण संस्थान संस्कृत शिक्षण के

क्षेत्र में इस पद्धति के अनुसार ही कार्य कर रहे हैं परन्तु आधुनिक शिक्षण संस्थानों द्वारा भी संस्कृत के व्यापक क्षेत्र को समझते हुए इस पद्धति को अपनाने की आवश्यकता है। संस्कृत साहित्य में गणित, चिकित्सा विज्ञान, शल्य चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष, यन्त्र विज्ञान, खगोल-भूगोल विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र इत्यादि अनेक विषयों का वर्णन मिलता है। हमारे ऋषियों द्वारा प्रस्तुत इन सभी विषयों को वर्तमान समाज से जोड़ते हुए पुन: विवेचित करने की आवश्यकता है। इस तरह के शोधकार्य करने की आवश्यकता है जिससे हमारे समृद्ध अतीत की उपलब्धियों को वर्तमान वैज्ञानिक युग एवं इसकी सोच से जोड़ा जा सके। ऐसे शोध कार्य किए जाए जिससे संस्कृत भाषा एवं साहित्य में निहित तथ्यों का परिशीलन एवं परीक्षण करके इसकी वैज्ञानिकता को तथ्यों एवं साक्ष्यों के साथ सिद्ध करके संपूर्ण विश्व को इससे अवगत कराया जा सके। इस व्यापक दृष्टिकोण को अपनाकर अपने शोधकार्यो को संस्कृत भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं अर्थात् दुनिया जिस भाषा में समझे उस भाषा में भी प्रस्तुत करना संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र की एक प्रमुख चुनौती है ।

विज्ञान एवं संस्कृत–21वीं सदी को सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का युग कहा जा सकता है। इस वैज्ञानिक युग ने वर्चुवल कक्षाएं, ई-पुस्तकालय, ई-पुस्तकें, ऑन-लाइन अध्ययन-अध्यापन एवं इन्टरनेट इत्यादि सुविधाओं के द्वारा 'यत्र विश्वं भवेत्येक नीडम्' की संकल्पना को हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। ऐसी स्थिति में संस्कृत को भी विज्ञान के साथ जुड़ना पड़ेगा। प्राय: यह सुनने में आता है कि संस्कृत कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा है। परन्तु इस दिशा में प्रयासों की कमी प्रतीत हो रही है। यद्यपि कुछ संस्थाएं संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए वैज्ञानिक साधनों का आश्रय ले रहीं हैं। यथा राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान द्वारा ई-ग्रन्थालय का प्रारंभ किया गया है। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान एवं संस्कृत भारती द्वारा ऑन-लाइन (यू-ट्यूब इत्यादि के द्वारा) संस्कृत संभाषण कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए जाते हैं। परन्तु यह प्रयास केवल उपलब्ध वैज्ञानिक सुविधाओं का प्रयोग है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में यह एक बहुत बड़ी

चुनौती है कि इसके अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाए। आज भी हजारों पाण्डुलिपियाँ हैं जिनके संबंध में कार्य करने की आवश्यकता है। पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन करके उन्हें दुनिया के समक्ष लाने का दायित्व संस्कृत शिक्षा से जुड़े लोगों का ही है। आज के परिप्रेक्ष्य में उसे लाभदायक बनाने, नवीनतम चिन्तन, नवीन खोज पर बल देने के लिए यह आवश्यक है कि संस्कृत के क्षेत्र में भी अधिकाधिक अनुसंधान किए जाए।

समाज एवं संस्कृत–प्राय: संस्कृत अध्ययन-अध्यापन करने वाले लोगों के प्रति समाज का दृष्टिकोण संकुचित है। भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन के वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन के सभी अंगों में संगठन एवं सामंजस्य सथापित करने के लिए तथा उसके पोषण एवं परिष्करण के लिए जो पद्धति एवं संस्कार प्रक्रिया तथा जीवन की अभीष्टतम उपलब्धि निर्धारित की वही भारतीय संस्कृति है जिसका मुख्य वाहन संस्कृत भाषा है। इन संस्कारों को समाज के एक वर्ग विशेष द्वारा कराया जाता है। अत: समाज में यह धारणा है कि संस्कृत धार्मिक अनुष्ठानों की भाषा है, पाठ्यक्रम के रूप में इसका अध्ययन अनुचित एवं अनावश्यक है। यह सोचना गलत है कि वेदों में केवल स्रोत हैं जिनका धार्मिक अनुष्ठानों के समय पाठ किया जाता है और ये केवल अतीत के धार्मिक अनुष्ठानों के गूढ़ार्थों और मिथकों को स्पष्ट करने वाले विद्वानों के लिए ही उपयोगी है।[3] संस्कृत साहित्य का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी विषय-वस्तु का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है तथा इनका अध्ययन मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से संबंधित अनिवार्य ज्ञान प्रदान करता है। वेदों की महत्ता को स्पष्ट करते हुए एस.सी.विलियम जोंस ने कहा है कि " वेदों से हमें शल्य क्रिया, औषधि, संगीत, धनुर्विद्या, तथा भवन निर्माण का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। वे जीवन के प्रत्येक पहलू जैसे कि संस्कृति, धर्म, विज्ञान, रहस्यवाद, नीतिशास्त्र, विधि, ब्रह्मण्ड विज्ञान एवं मौसम विज्ञान आदि के विश्वकोष हैं।"[4] लोगों की सोच में परिवर्तन कर यह स्थापित करना भी

---

3 भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, पृ. 4

एक चुनौती है कि संस्कृत भारतीय समाज एवं भारतीय संस्कृति की भाषा है। यह भाषा हमारे संस्कारों की संवाहिका है अतः इसका ज्ञान प्रत्येक भारतीय के लिए अमूल्य निधि के संग्रह के समान है।

जीविकोपार्जन के अवसर- वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में रोजगारोन्मुख उच्च शिक्षा के प्रति लोगों की रूचि है और जो शिक्षा जीविकोपार्जन के साधन नहीं प्रदान कर सकती उसे व्यर्थ माना जा रहा है। संस्कृत के क्षेत्र में जीविकोपार्जन के अवसर बहुत ही कम है। इस क्षेत्र में संस्कृत अध्यापक या अध्यापिका बनना ही ऐसा विकल्प है जिसमें रोजगार के व्यापक अवसर मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कोई ऐसा क्षेत्र विशेष नहीं है जिसमें व्यापक स्तर पर संस्कृत के विद्यार्थी अपना भविष्य संवारने की योजना बना सकें। परन्तु संस्कृत पढ़ने वालों की कम होती संख्या एवं वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत शिक्षा के लिए संकुचित होते स्थान के कारण आजीविका के इस क्षेत्र का भविष्य भी अंधकार में ही प्रतीत हो रहा है। इस तथ्य को निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि रोजगार पैदा करना शिक्षाविदों का कार्य नहीं है। यह कार्य आर्थिक एवं प्रशासनिक प्रणाली का है परन्तु इसके लिए सबको मिल-जुलकर प्रयास करना पड़ेगा।

मूल्य शिक्षा एवं संस्कृत- शिक्षा के दो पक्ष हैं। इसका एक पक्ष वह है जिससे व्यक्ति जीवन के मूल्यों को ग्रहण करता है, इन मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात करता है। इसका दूसरा पक्ष अर्थोपार्जन का है। यह बहुत ही दुःख का विषय है कि जिस भारतीय संस्कृति का आधार ही मानवीय मूल्य रहें हैं, जिसकी संस्कृति नैतिक एवं चारित्रिक गुणों के उत्थान का संदेश देती है, उस भारतीय समाज की शिक्षा व्यवस्था में मूल्य शिक्षा को विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर विचार किया जा रहा है। यदि हमने पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का अंधानुकरण नहीं किया होता, ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त नहीं किया होता तो स्थिति ऐसी नहीं होती। संस्कृत शिक्षा का सशक्त एवं सकारामत्क पक्ष यह है कि इससे हमें अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान होता है। यह ज्ञान

हमारे व्यवहार में मानवीय मूल्यों एवं संस्कारों की सरिता को प्रवाहित करता है। अतः यदि संस्कृत को प्राथमिक स्तर से ही अनिवार्य विषय के रूप में रखा जाए तो हमें पृथक् रूप से मूल्य शिक्षा की आवश्यकता नहीं होगी। संक्षेप में यदि कहा जाए तो संस्कृत भाषा को वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की मुख्य धारा में सम्मिलित करना मुख्य चुनौती है। यदि ऐसा हो जाता है तो भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन को रोका जा सकता है।

संस्कृत शिक्षा एवं स्त्री- संस्कृत साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। 'गृहिणी गृहमुच्यते'[5], 'न स्त्रीरत्नसम रत्नम्'[6], 'कन्येय कुलजीवितम्'[7] इत्यादि के द्वारा जहाँ समाज में नारी के गरिमामयी स्थान को दर्शाया गया है वहीं 'नापमान्याः स्त्रियः सद्भिः', 'योषितो नावमन्यते'[8] कहकर लोगों को यह संदेश दिया गया है कि स्त्रियों का अपमान नहीं करना चाहिए। 'यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा'[9] कहकर मनु ने पुत्र एवं पुत्री की समानता को दर्शाने का प्रयत्न किया है परन्तु वर्तमान

4 वही, पृ. 4

5 महाभारत, 12.145.6

6. 1. "आत्मकथा" (महात्मागॉधी) पृष्ठ संख्या, 27

2. "संसार" 2 नवम्बर 1948

3. "दैनिक हिन्दुस्तान" 26 अगस्त 2008

4. "दैनिक जागरण" 25 मार्च 2012

5. "दैनिक जागरण" 31 दिसम्बर 2013

6. "कठोपनिषद्" वल्ली-2

7. "मनुस्मृति"1-20 चाण्क्य सूत्र, 312

1. "आत्मकथा" (महात्मागॉधी) पृष्ठ संख्या, 27

2. "संसार" 2 नवम्बर 1948

3. "दैनिक हिन्दुस्तान" 26 अगस्त 2008

4. "दैनिक जागरण" 25 मार्च 2012

5. "दैनिक जागरण" 31 दिसम्बर 2013

6. "कठोपनिषद्" वल्ली-2

7. "मनुस्मृति"1-20 कुमारसंभव, 6.63

8. विष्णुपुराण, 3.12.30

समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं है। संसार की आधी आबादी आज भी स्वयं को मानवी के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्ष कर रही है। जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्री को सशक्त बनाने के लिए सरकार एवं समाज द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहे हैं परन्तु स्थिति अभी भी शोचनीय बनी हुई है।

संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में भी शिक्षा के समग्र स्तर की भांति विद्यालयीय शिक्षा हो या उच्च शिक्षा, प्रत्येक स्तर पर पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या अत्यन्त कम है। परन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था ने विद्वानों के साथ-साथ अनेक विदुषी स्त्रियां को भी समान रूप से अवसर दिया है।[10]

परंपरागत धारा के अन्तर्गत संस्कृत अध्ययनरत अधिकांश स्त्रियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि संस्कृत अध्ययन-अध्यापन की होती है। ऐसे में आधुनिक धारा के लोगों को संस्कृत शिक्षा से जोड़ना वर्तमान में एक प्रमुख चुनौती है। आधुनिक शिक्षा पद्धति से शिक्षा प्राप्त जो स्त्रियाँ उच्च शिक्षा हेतु संस्कृत विषय का चयन करती हैं उनमें से अधिकांश के समक्ष अन्य विषयों में उच्च प्रतिशतांक पर प्रवेश होने के कारण वांछित विषय में प्रवेश न मिलने की समस्या मूलरूप से होती है। यह समस्या जहाँ विवशतावश संस्कृत अध्ययन की परिस्थिति को दिखाती है वहीं वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत शिक्षा की स्थिति को भी दर्शा रही है।

संस्कृत में वेद, पौरोहित्य, ज्योतिष आदि कुछ विषय ऐसे हैं

---

9. मनुस्मृति, 9.130
10. घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपन्निषत्।
ब्रह्मजाया जुहूर्नामअगस्त्यस्य स्वसादिति।
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रामशोर्वशी।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती।
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मावादिन्या ईरिता:।।- बृहद्देवता 2.82-84

जिन पर केवल पुरुष वर्ग का ही अधिपत्य है। दक्षिण भारत के कुछ स्थानों पर महिलाओं द्वारा पूजा-पाठ कराए जाने को अपवाद स्वीकार कर लें तो प्राय: यह क्षेत्र महिलाओं द्वारा अछूता ही है या सामान्यत: स्त्रियों द्वारा इस कार्य को कराये जाने को हमारा समाज स्वीकार नहीं करता। अत: इस क्षेत्र में महिलाओं के लिए अवसर और भी कम हो जाते हैं। वर्तमान में ज्योतिष, वास्तुशास्त्र इत्यादि कुछ क्षेत्रों में स्त्रियाँ अपने कदम रख रहीं हैं परन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम है।

प्राय: यह माना जाता है कि संस्कृत अध्ययनरत स्त्रियाँ अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित होने के कारण भविष्य में अपनी संतानों को भी सुसंस्कृत बना सकेंगी। संस्कृत शिक्षा में संलग्न स्त्रियों के प्रति समाज का यह दृष्टिकोण अत्यन्त ही संकुचित है क्योंकि स्त्रियों को शिक्षित करने का उद्देश्य घर की चारदीवारी तक ही सीमित नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। इस दृष्टि से स्त्रियों को दी जाने वाली शिक्षा का उद्देश्य भी उनके व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास ही होना चाहिए, केवल मातृत्व की शिक्षा देना नहीं। अत: इस प्रकार की रणनीति बनाने की आवश्यकता है जिससे संस्कृत शिक्षा के द्वारा स्त्रियों के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास करते हुए उन्हें आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाया जा सके । तभी समाज में स्त्री-पुरुष समानता को स्थापित किया जा सकता है एवं समाज के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन किया जा सकता है।

सुझाव- वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में जो समस्याएं या चुनौतियाँ है उनके समाधान हेतु अधोलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखा जा सकता है-

* वर्तमान वैज्ञानिक युग में संस्कृत भाषा के शिक्षण को रूचिकर बनाने के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अन्तर्गत छात्रध्यापकों को सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी(ICT) का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था हो। जिससे कि विभिन्न दृश्य एवं श्रव्य साधनों का प्रयोग करके शिक्षक संस्कृत की विषय वस्तु को सरल एवं रूचिकर बनाए तथा छात्रें में संस्कृत के अध्ययन के प्रति रूचि उत्पन्न

कर सकें।

* संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति एवं परंपरा को अपने भीतर समेटे हुए है। अतः भारतीय संस्कृति के मानवीय मूल्यों एवं परंपराओं को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए संस्कृत भाषा को प्राथमिक स्तर से विशेषकर पहली कक्षा से प्रारंभ किया जाना चाहिए। इससे प्रथम तो हिन्दी एवं अंग्रेजी की भांति संस्कृत भाषा का विस्तार होगा दूसरे बालकों के अबोध मन एवं मस्तिष्क पर संस्कृत की शिक्षा के द्वारा अपने सांस्कृतिक मूल्यों एवं परंपराओं को अंकित कर मूल्यों के अवमूल्यन की समस्या को भी समाप्त किया जा सकेगा।

* संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। संस्कृत के विद्यार्थियों विशेषकर बालिकाओं के लिए शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर विशेष छात्रवृत्ति की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे अधिक से अधिक बालिकाएं संस्कृत शिक्षा की ओर आकृष्ट हों।

* संस्कृत के क्षेत्र में कार्यरत सभी संस्थाओं को मिलकर ऐसे नवीनतम साफ्टवेयर विकसित करने का प्रयास करना चाहिए जिससे संस्कृत को संगणक के साथ जोड़कर पढ़ाया जाए। इसके अतिरिक्त संस्कृत की पुस्तकों, संस्कृत के क्षेत्र में हो रहे शोधकार्यों, पूर्व में हो चुके शोधकार्यों के प्रतिवेदन एवं शोधग्रन्थों की जानकारी ऑन-लाइन उपलब्ध करवायी जानी चाहिए।

* वर्तमान भौतिकता के युग में रोजगारोन्मुख शिक्षा को ही विशेष महत्व दिया जा रहा है। शिक्षा के जिस क्षेत्र में जीविकोपार्जन के ज्यादा अवसर होते हैं वह क्षेत्र विशेष अधिक लोगों द्वारा अपनाया जाता है। संस्कृत के क्षेत्र में जीविकोपार्जन के अवसर अत्यन्त अल्प हैं। यदि इस क्षेत्र में जीविकोपार्जन के अधिक अवसर उपलब्ध कराएं जाएं तो इस विषय के पढ़ने की वालों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

* अग्रवाल, जे.सी., भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, शिप्रा पब्लिकेशन, दिल्ली, (2007)

* उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, (2001)

* चतुर्वेदी, रश्मि, खण्डाई, हेमन्त, मूल्य शिक्षा , ए.पी. एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन (2011)

* चाँद किरण, शिक्षा, समाज एवं विकास, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रिब्यूटर्स, नयी दिल्ली, (2004)

* पण्डा, प्रमोदिनी, वेदकालीन नारी शिक्षा, ओरिएण्टल बुक सेंटर, (1998)

* पाण्डेय, रामशकल, शैक्षिक परिवर्तन, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, (2005)

* मिश्र, भास्कर, शिक्षा एवं संस्कृतिः नये संदर्भ, भावना प्रकाशन, दिल्ली (1995)

संस्कृत शिक्षा के प्रचार एवं विकास में आने वाली चुनौतियाँ तथा समाधान

दयानिधि तिवारी
शोध छात्र

प्रस्तावना–

संस्कृत भारतीय परम्परा के नस नस में भरी हुई है। संस्कृत के प्रचारन प्रसार में भारत का हरेक वर्ग अपना योगदान देकर अपने भारतीय होने का परिचय प्रदान करता है। संस्कृत भारत के संस्कृति से जुड़ी हुई एक आधारशिला है। जिसके बारे में भारतीय वाङ्मय स्वयं कहता है

"सा संस्कृति प्रथमा विश्ववारा"[१]

यह गुण गान संस्कृत में है जिससे यह ज्ञात हो जाता कि भारतीय संस्कृति संस्कृत से ही है।

संस्कृत में जितने भी वाङ्मय मिलते हैं उनका यदि शिक्षा के क्षेत्र में उपयोग होता है तो वह संस्कृत शिक्षा से व्यवहृत किया जाता है। इस दृष्टि से संस्कृत शिक्षा को निम्न रूप से देखते हैं–

प्राचीन संस्कृत शिक्षा

अर्वाचीन संस्कृत शिक्षा

प्राचीन संस्कृत शिक्षा

इस संस्कृत शिक्षा में प्राचीन वाङ्मय को पाठ्यक्रम के माध्यम से व्यवहार किया जाने लगा। जिसमें

वैदिक संस्कृत साहित्य

- वेद
- ब्राह्मण

- आरण्यक
- उपवेद
- वेदाङ्ग
- उपनिषद्

दर्शन संस्कृत साहित्य

- दर्शन
- सांख्य दर्शन
- योग दर्शन
- न्याय दर्शन वेदान्त
- वैशेषिक दर्शन

लौकिक संस्कृत साहित्य

- वाल्मीकि रामायण
- व्यास महाभारत

इस प्रकार से प्राचीन संस्कृत शिक्षा के अन्तर्गत पाठ्यक्रम को शामिल किया गया है।

अर्वाचीन संस्कृत शिक्षा

इस संस्कृत शिक्षा में अर्वाचीन संस्कृत को पाठ्यक्रम के रूप में शामिल किया गया है।

- संस्कृत महाकाव्य
- संस्कृत गद्य काव्य
- संस्कृत पद्य काव्य
- संस्कृत आधुनिक काव्य

इस प्रकार से प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृत को पाठ्यक्रम के रूप में ग्रहण किया गया और इसे संस्कृत शिक्षा के नाम से व्यवहार किया गया।

संस्कृत शिक्षा के साधन

संस्कृत को शिक्षा के रूप में व्यवहार हुआ तो इसे जन मानस तक पहुँचाने का कार्य अध्ययन एवं अध्यापन के माध्यम से होने लगा जिससे संस्कृत शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होना स्वाभाविक था। जिसके लिए अनेक साधन अपनाए गए।

प्राचीन साधन

- आश्रम
- आचार्य कुल
- गुरुकुल
- पाठशाला

अर्वाचीन साधन

- विद्यालय
- महाविद्यालय
- विश्वविद्यालय
- विभिन्न शैक्षणिक संस्थान

आधुनिक साधन

- पत्र एवं पत्रिकाएँ
- आकाशवाणी
- दूरदर्शन
- कार्यशालाएँ
- सभा एवं संगोष्ठी
- सम्मेलन

इस प्रकार के अनेकों साधन सामने आते रहे जिनके माध्यम से संस्कृत शिक्षा का प्रचार हुआ जब प्रचार होने प्रारम्भ हुए तो चुनौतियाँ भी सामने आयी जिनका समाधान खोजा गया।

संदर्भ :

१. सुक्ति संग्रह

विषय विवेचन

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।[१]
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः॥

उपरोक्त कथन से हमें संस्कृत शिक्षा का एक स्वरूप देखने को मिलता है।

संस्कृत शिक्षा का स्वरूप

संस्कृत शिक्षा को जीवन के साथ जोड़कर देखा जाता है। भारतीय परम्परा में संस्कृत शिक्षा जीवन जीने की कला सीखाती है।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।[२]

यह श्लोक प्रमाण है इस बात का कि संस्कृत शिक्षा विद्या के रूप में व्यवहृत थी।

सवित्रीमप्यधीत गत्वारण्यं समाहितः।[३]

सवित्री के अध्ययन की चर्चा इस उद्धरण में किया गया है।

आचार्य आदेश देता है कि शिष्य तुम अध्ययन के विषय के रूप में चयन किये गये विषय के प्रति जागरूक रहो।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥[४]

संस्कृत शिक्षा अनिवार्य रूप से पाँच वर्ष से ही बालक एवं बालिकाओं प्रदान करने का विधान था।

आचार्य कुल में शिष्य अध्ययन करता था जहाँ आचार्य यह शिक्षा देते थे।

विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परा सुव। यदभद्रं तन्न आ सुव॥[५]

इस मंत्र में आचार्य शिष्य को यही संकेत कर रहे हैं कि पहले अपने बुराईयों को समाप्त करो फिर अच्छे कार्यों के प्रति सजग रहो।

इस तरह से संस्कृत शिक्षा का स्वरूप प्राचीन काल से चली आ रही है और आज भी यही अवधारणा प्रायः सभी भारतीय परम्परा में जी रहे लोगों का है। संस्कृत शिक्षा हमें स्वाभिमानि बनाती है।

संस्कृत शिक्षा के प्रचार के साधन

संस्कृत शिक्षा की अवधारणा अत्यन्त ही प्राचीन होने से यह पहले आश्रमों के माध्यम से अध्ययन एवं अध्यापन के माध्यम से प्रचारित होता रहा है।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्य्यं गुरौ त्रैवैदिकं व्रतम्।
तदधिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा।।१

इस कथन से यह अभिलक्षित होता है कि अधिक से अधिक चौवालिस और कम से कम छब्बिस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपने विद्या काल को पूरा करे।

प्राचीन काल में संस्कृत के प्रचार हेतु

- वाद विवाद

जिसमें अनेक विषय विशेषज्ञ विद्वानों को आवाहन किया जाता था और उनके साथ किसी विषय पर वाद विवाद किया जाता था। इस तरह संस्कृत के विभिन्न विषयों का आदान प्रदान होता था।

शास्त्रार्थ

जिसमें अनेक विद्वानों के द्वारा किसी एक विषय पर प्रमाण तर्क के आधार पर चर्चा किया जाता था जिसमें अनेक राज्यों में जाने का अवसर मिलता था जो प्रचार के लिए सहयोगि था।

शास्त्रपरि चर्चा

इसमें अनेक विद्वान् अपनी बुद्धि का परिचय प्रदान करते हैं जिसका निर्णय निर्णायक मण्डल के द्वारा होता था।

ग्रन्थ लेखन

इसमें विद्वान् अपनी विद्वत्ता को जन सामान्य तक किसी ग्रन्थ के रचना के माध्यम से दर्शाता है।

इस तरह से प्राचीन समय में संस्कृत शिक्षा का प्रचार होता रहा।

अद्यतनीय संस्कृत शिक्षा के प्रचार के साधन

पहले की भाँति आज भी संस्कृत के प्रचार के नये तरीके खोजे गये हैं।

पत्र एवं पत्रिकाएँ

जिनमें संस्कृत के अनेकों लेख के माध्यम से प्रचार का कार्य किया जा रहा है।

आकाशवाणी

जिसमें दैनिक समाचार संस्कृत भाषा के माध्यम से वाचन किया जाता है।

संस्कृत सम्भाषण शिविर

जिसमें संस्कृत के विषयों को सरल बनाकर सिखाया जाता है।

संस्कृत संगोष्ठि आयोजन

जिसमें संस्कृत के विषय में चर्चा के माध्यम से प्रचार होता है। इस प्रकार अद्यतन समय में भी संस्कृत के प्रचार के कार्य हो रहे हैं।

संस्कृत शिक्षा में आने वाली चुनौतियाँ

पहले से ही संस्कृत शिक्षा में चुनौतियाँ आनी प्रारम्भ हो चुकी थी जैसे–

पक्षपात

जो निर्णायक होता था वही पक्षपात कर जाता था जिससे सभा का निर्णय सही नहीं हो पाता था।

आलस्यं मद मोहौ च चापल्यं गोष्ठिरेव च।[७]

इनसे बचने के लिए

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रविद्येनेज्यया सुतैः।[८]

अनेक प्रकार से चुनौतियाँ सामने आती रही हैं और उनका समाधान भी होता रहा है।

आज की चुनौतियों में

- संस्कृत के प्रति रुचि का न होना।

- संस्कृत के प्रति नई पीढ़ी का अभाव।
- संस्कृत का केवल ऐतिहासिकता का बखान।

संस्कृत के विद्यार्थियों में अपने विषय से बढ़ के और विषय को आकना।

संस्कृत को केवल कर्मकाण्ड से जोड़ना।

संस्कृत के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित होना।

संस्कृत के पाठकों की कमी।

संस्कृत को आधुनिकता के साथ लेके चलना।

संस्कृत आज खुद एक चुनौति बन चुकी है।

इस तरह से अनेक चुनौतियाँ हमारे सामने हैं जिनसे हम सबको एक साथ मिलके सामना करना है।

चुनौतियों से सामना

आचार्य का वह वाक्य

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च।[९]

आचार्य कहते हैं कि प्रत्येक कार्य को करे परन्तु स्वाध्याय का त्याग कदापि न करे।

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।।[१०]

आचार्य कहना चाहते हैं कि हम अपने पूर्वजों के अच्छे कार्यो को अपनाए।

संस्कृत में रुचि उत्पादन करे।

संस्कृत के अध्येताओं का भविष्य सुरक्षित करे।

संस्कृत को प्रयोगात्मक बनाए।

इस तरह के कई उपायों को अपनाना पड़ेगा तब कहीं संस्कृत के प्रचार एवं विकास में आने वाली चुनौतियों से सामना कर पायेंगे।

संदर्भ :

१. मनुस्मृति
२. मनुस्मृति
३. मनुस्मृति
४. याज्ञवल्क्य स्मृति
५. यजुर्वेद
६. मनुस्मृति
७. सुक्ति संग्रह
८. मनुस्मृति
९. सत्यार्थप्रकाश
१०. ऐतरेयोपनिषद

संदर्भ ग्रन्थः

ऋग्वेद
मनुस्मृति
सत्यार्थप्रकाश
उपनिषद संग्रह
संस्कृत सुक्ति संग्रह
सामान्य पत्र पत्रिका

संस्कृतशिक्षा के प्रसार एवं विकास में चुनौतियाँ तथा उपाय

प्रेमप्रकाश नैनवाल

"संस्कृतशिक्षा" दो शब्दों से मिलाकर बना है जिसका अर्थ है संस्कृत की शिक्षा। संस्कृतभाषा सर्वप्राचीन सुरम्य, मधुर, गीर्वाणवाणी तथा देववाणी इत्यादि नामों से प्रचलित है। संस्कृतशब्द का अर्थ–परिंकृत, परिमार्जित संस्कारित इत्यादि है। अर्थात् जो भाषा हम सभी को संस्कारित, परिमार्जित और परिस्कृत करती है वह है संस्कृत।

भारतसरकार द्वारा स्थापित संस्कृत आयोग ने यह स्वीकार किया है कि संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है जो कि सभी को एक साथ माला की भाँति जोड़कर रख सकती है। अतः संस्कृतशिक्षा तथा संस्कृतभाषा को पूर्ण रूप से बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

सन् १९९४ में सुप्रीमकोर्ट ने निर्णय दिया था कि "संस्कृत" शिक्षा का एक भाग होना चाहिए, लेकिन वो बात वहीं तक सीमित रह गई तथा आज अपने ही देश में अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संस्कृत को याचना करनी पड़ रही है "सृष्टि के प्रारम्भ में जो वेदपुराणादि का ज्ञान हमें प्राप्त हुआ वह आज भी विश्व में स्वीकृत आदिम ज्ञान ग्रन्थ है। ब्राह्मण ग्रन्थ गृहस्थ जीवन और समस्त संस्कारों का आधार ग्रन्थ है। दर्शनशास्त्र तर्कज्ञान एवं सत्यासत्य का निर्णायक है, व्याकरणशास्त्र सम्यक् भाषा व्यवहार और शब्द राशियों का बृहद् कोश है। रामायण भारतीय संस्कारों रीतिरिवाजों तथा मर्यादाओं का प्रतिक है। गीताशास्त्र कर्म, ज्ञान, भक्ति, योग इत्यादि का विशालतम समुद्र है, स्मृति ग्रन्थों में श्रेष्ठ "मनुस्मृति" व्यवस्थित शासन तथा आत्मानुशासन का स्थापक है। आयुर्वेद समस्त प्राणियों को आरोग्य एवं पुष्टि प्रदान करने वाला है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजसत्ता को विधियश सम्मत बनाया है,

कल्हण विरचित "राजतरंगिणी" राजनीति के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करती है। अत: भारत का सारा अमृतत्त्व जिस भाषा में व्यक्त है वह है संस्कृत।

जहाँ विश्व के दूसरे देश भारत के इस अमरत्व को जानन्ने के लिए संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं वहीं अपने देश में संस्कृत को अस्तित्व बचाने के लिए अत्याधिक संघर्ष करना पड़ रहा है।

२०वीं सदी के बाद संस्कृत के अध्येताओं में कमी आई है। २०११ की गणना के अनुसार १४१३५ व्यक्तियों ने संस्कृत को अपनी मातृभाषा के रूप में स्वीकार किया था जबकि १९९१ में ४९,७३६ लोगों ने संस्कृत को अपनी मातृभाषा माना था। १९९१ से २००१ के बीच ऐसे लोगों की संख्या में ७१,५८ फीसदी कमी आई है।

१९९१ में संविधान द्वारा स्वीकृत २२ भाषाओं में संस्कृत २०वें स्थान पर थी जबकि २००१ में २२ वें स्थान पर रही यह संस्कृत के प्रति उपेक्षा भाव का ही परिणाम है।

संस्कृतभाषा भले ही २२वें पायदान पर हो, पर उसी महत्ता और शक्ति को सम्पूर्ण देश भलीभाँति जानता है, वरना वह संस्कृत की उक्तियों को अपना ध्येयवाक्य नहीं बनाते। उदाहरण के लिए भारतीय गणराज्य–"सत्यमेव जयते" भारतीय जीवन बीमा निगम–"नभ: स्पृशं दीप्तमै्", इण्डियन नेवी–"शं नो वरूण:", ऑल इण्डिया रेडियो–"बहुजन हिताय बहुजन सुखाय"

भारत में ही नहीं इण्डोनेशिया–"पञ्चचित्त", इण्डोनेशिया नेवी–"जलेष्वेव जयामहे", नेपाल–"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी", इत्यादि वाक्यांशों का अपना आदर्श वाक्य मानते हैं। जो भी संस्था जिस ध्येयवाक्य को मानती है वह निश्चय ही उनके कार्य से सम्बन्धित तथा उनके उत्तरोत्तर उन्नति के सन्दर्भ में ही होना है। इससे संस्कृत की श्रेष्ठता स्वत: ही झलकती है। अत: संस्कृत न केवल देववाणी अपितु कल्याणमयी भी है। संस्कृत के विषय में कहा गया है–

वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृताधार्यते।। इति।।

वर्तमान में संस्कृतशिक्षा की स्थिति–

वर्तमान में संस्कृतशिक्षा की स्थिति बहुत ही चिन्तनीय तथा दयनीय बनी हुई है। जो भी हो वह संस्कृतभाषा, संस्कृतशिक्षा का उपेक्षा की दृष्टि से देखना है, इसके निम्न कारण हो सकते हैं–

संस्कृतभाषा के जानकार काफी कम होते जा रहे हैं, यह इसलिए क्योंकि जो आंग्लभाषा का अध्ययन अध्यापन है वह आंग्लमाध्यम से, हिन्दी भाषा का हिन्दी माध्यम से होता है जबकि संस्कृतभाषा का अध्ययन अध्यापन हिन्दी तथा अन्य मातृभाषाओं के माध्यम से किया कराया जाता है, जिसके फलस्वरूप पाठक या छात्र उसके मूल को जानने का प्रयास ही नहीं करता है। और संस्कृतभाषा हिन्दी या विभिन्न मातृभाषाओं के माध्यम से जीवित है, जबकि सबके मूल में संस्कृत भाषा है।

संस्कृत का नाम सुनते ही लोग मुँह फेर लेते हैं, शायद उन्हें यह जानकारी नहीं कि जिस भाषा ने हमें संसार में स्थान दिया है वह संस्कृत भाषा ही है। और जिन शब्दों का नित्यप्रति प्रयोग करते हैं जैसे– mother, father, brother इत्यादि ये सभी मातरः, पितरः, भ्रातरः संस्कृत मूल से ही लिए गये हैं।

जिस प्रकार समाज में आज कई लोग अपने बुजुर्ग माता-पिता को अपने से अलग कर वृद्धाश्रम में भेज देते हैं, ठीक उसी प्रकार अन्य भाषाएँ भी अपनी जननी संस्कृत को छोड़ रहे हैं। जिस संस्कृत ने भारत को विश्वगुरु होने का सम्मान दिया, अवसर दिया, वही आज अपने अस्तित्व को खोज रही है।

संस्कृतशिक्षा से सम्बन्धित संस्थाओं को धन के अभाव में उच्च्च स्थान प्राप्त नहीं हो पाता है, संस्कृतशिक्षकों का वेतन रोक दिया जाता है, संस्कृतशिक्षा केन्द्र बन्द करवा दिये जाते हैं, संस्कृत के प्रबुद्धछात्रों को छात्रवृत्ति समय पर नहीं दी जाती है। जिसके अभाव में वो अपने अध्ययन को नियमित रूप से जारी नहीं रख पाते हैं। इतना ही नहीं मेरठ

विश्वविद्यालय को संस्कृतविभाग एकमात्र आचार्य के सेवानिवृत्त होने पर इस विभाग को बन्द करने का आदेश देना पड़ा।

संस्कृतशिक्षा संरक्षण के उपाय–

संस्कृतभाषा अतीव मधुर भाषा है, इसको बचाने पर ही हमारे संस्कार तथा संस्कृति इत्यादि संरक्षित हो सकते हैं। कहा भी गया है–

"भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृत संस्कृतिस्तथा"।।

हमारे नीति निर्माताओं की दृष्टि और सोच इस ओर क्यों नहीं जाती कि जहाँ एक समय में मुकदमें भी संस्कृत में लड़े जाते थे, जहाँ पक्षी संस्कृत का पाठ किया करते थे–उदाहरणार्थ–

"स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं, कीरांगनाः यत्र गिरोः गिरन्ति।
द्वारस्य नीडान्तर सन्निरुद्धः, जानीहि तन्मन्डनमिश्रधामः।।"

उसी देश में संस्कृत को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

संस्कृत के महत्व को बताते हुए नासा की बेवसाइट पर लिखा है। कि संस्कृत कम्प्यूटर के लिए एक अच्छी भाषा है, इसे प्रोग्रामिंग के लिए आर्टिफिसिएल इंटेलीजेंस के तौर पर प्रयोग किया जा रहा है। आज संस्कृत की जो समस्या है वह पुराने ज्ञान को बचाने की है।

"संस्कृतशिक्षा" संरक्षण की दृष्टि से सर्वप्रथम प्राथमिक शिक्षा से ही संस्कृत को अनिवार्यरूप से पढ़ाया जाना चाहिए, एवं संस्कृत को प्रायः सभी स्तरों पर संस्कृत माध्यम से ही पढ़ाया जाना चाहिए। विद्यालय का वातावरण अनुकूल बनाने के लिए विविध प्रकार की सूक्तियों तथा ध्येयवाक्यों को विद्यालय की दीवारों अथवा बोर्डों पर लिखा जाना चाहिए। जिससे उनको पढ़ने पर बच्चों के मन में विचार उत्पन्न हो अथवा अन्तर्मन प्रभावित हो।

संस्कृतविद्यापीठों की तरह प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री आचार्य, इत्यादि श्रेणियाँ उत्तीर्ण की जाय, पाठ्यक्रम का निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि छात्रों की रुचि निरन्तर विषय के प्रति बनी रहे।

प्राइमरी स्तर से संस्कृत सीखने की संस्थाएँ स्थापित की जानी चाहिए। संस्थाएँ अच्छी तरह से कार्य कर पाएँ इसके लिए कुछ अतिरिक्त धन पाण्डुलिपियों के प्रकाशन, संस्कृत पुस्तकों के प्रकाशन इत्यादि के लिए दिया जाना चाहिए। संस्कृतानुवादकों को विशेष सम्मान तथा सहयोग प्रदान करना चाहिए, संस्कृतशिविरों का आयोजन करवाना चाहिए, तथा विभिन्न पत्रिकाओं का सम्पादन करवाना चाहिए।

संस्कृतभाषा को केवल संस्कृतपाठशालाओं एवं संस्कृतमहाविद्यालयों तक ही सीमित न करके सभी स्कूलों, विश्वविद्यालयो, शिक्षणकेन्द्रों तक अनिवार्यरूप से इसका विस्तार करना चाहिए। संस्कृतछात्रों की छात्रवृत्ति समय पर उपलब्ध कराई जाये। एवं संस्कृत भाषा को सभी राज्यों में उत्तराखण्ड की भाँति द्वितीय राजभाषा घोषित की जानी चाहिए। संस्कृत भाषा सभी स्कूलों, प्राविधिक संस्थानों आदि में इस तरह पढ़ाई जाय जिससे अच्छे शिक्षक तैयार हो सकें। इसके अतिरिक्त सरकार को चाहिए कि वह संस्कृतशिक्षकों की सभी रिक्तियाँ तत्काल पूर्ण करे जिससे रोजगार सम्बन्धी समस्या का भी समाधान हो जाय।

उपसंहार–

सभी भाषाओं में श्रेष्ठ संस्कृत भाषा आज अपने अस्तित्व को बचाने के लिए याचना कर रही है, इसका कारण हमारा संस्कृत के प्रति तटस्य होना, जिस भाषा ने हमें विभिन्न साहित्यों का ज्ञान, विभिन्न कलाओं का ज्ञान दिया हम आज उसी को भूलते जा रहे हैं। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में लिखा है–

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्, सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयः – रसानाथर्वणदपि।। इति।।

अर्थात् हमारे चारों वेदों से – ऋग्वेद से पाठ्य सामग्री, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा रस आदि अथर्ववेद से लिये गये हैं।

आज सम्पूर्ण विश्व में हमारे शास्त्रों में वर्णित सभी कुछ विश्व में फैल रहा है तथा हम अपने मूल को ही नहीं जान पा रहे हैं।

अतः संस्कृत के संरक्षण से ही हम सब संरक्षित हो सकते हैं

अन्यथा संस्कृत के अभाव में यहाँ रहने वाले सभी संस्कृति तथा संस्कार भूल जायेंगे। इसलिए–

भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृत संस्कृतिस्तथा।।

संस्कृत भाषा में सभी तत्व निहित हैं–

संस्कृते संस्कृतिर्ज्ञेया, संस्कृते सकला कला।
संस्कृते सकलं ज्ञानं, संस्कृते किन्न विद्यते।।

"इतिशम्"

संस्कृत शिक्षा के प्रसार, विकास एवं चुनौतियाँ

आशा, शोधछात्रा

भारत एक लोकतांत्रिक एवं प्रभुता सम्पन्न देश है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ बहुत से धर्मो संस्कृतियों के लोग रहते हैं। भारत की संस्कृति, सभ्यता केवल भारत में नहीं अपितु पूरे विश्व में गौरवपूर्ण स्थान रखती है, भारत में अनेक धर्मों, संस्कृतियों के लोग रहते हैं, जिनकी अपनी भाषाएँ उपभाषाएँ हैं। जैसे हिन्दी, पंजाबी, उडिया, बंगाली, उर्दू इत्यादि। इन भाषाओं में संस्कृत भाषा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। संस्कृत भाषा को देववाणी, गीर्वाणवाणी भी कहा जाता है। प्राचीन काल में संस्कृत भाषा लोगों की व्यवहारिक भाषा थी जन साधारण इस भाषा में ही बात करते थे। प्राचीन काल में बहुत सी प्रान्तीय भाषा का भी व्यवहार था। परन्तु संस्कृत भाषा को ही प्रधानता दी जाती थी। जैसे माता दूध पिलाकर अपनी संतान का पालन पोषण करती थी। उसी प्रकार संस्कृत भाषा भी शब्द दान करके सभी भाषाओं को पोषित करती थी। माना जाता है कि विश्व की अधिकतर भाषाओं को उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई है।

संस्कृत भाषा केवल व्यवहारिक भाषा नहीं अपितु पठन पाठन की भाषा थी। प्राचीन काल में संस्कृत शिक्षा का बहुत प्रसार था। वैदिक काल में शिक्षा व्यवस्था गुरुकुल पद्धति पर आधारित थी। छात्र गुरु के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करता था। वैदिक काल में संस्कृत शिक्षा का अत्यधिक विकास था। आश्रम के संयमित वातावरण में ऋषियों एवं आचार्यों द्वारा संस्कृत शिक्षा दी जाती थी। उस समय गुरु शिष्य संबंध पिता पुत्र जैसे थे। पूर्व वैदिक युग में वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, अरयण्क जैसे विषयो को पढ़ाया जाता था। ये सभी विषय संस्कृत भाषा में थे। वैदिक काल प्राय शिक्षा मौखिक होती थी। शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा था। इस काल में रामायण, महाभारत, अभिज्ञानशाकुन्तल,

अष्टाध्यायी, मेघदूत जैसे अनेक की रचना हुई। संस्कृत साहित्य में कालिदास भास, भवभूति, माघ जैसे विद्वान हुए उन्होंने संस्कृत साहित्य को चार चांद लगा दिए। वैदिक काल में संस्कृत शिक्षा का प्रसार एवं विकास उन्नत स्तर पर था। गुप्त काल में भी संस्कृत शिक्षा अपने भाषा से विशेष अनुराग था। गुप्त काल के सभी शिलालेख एवं मुद्र संस्कृत भाषा में थी। गुप्तकाल के बाद राजपूत काल में संस्कृत शिक्षा का अत्याधिक प्रसार था। छात्रों को वर्णमाला के ज्ञान के बाद अष्टाध्यायी ग्रन्थ को पढ़ाकर प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। उच्चस्तर पर धर्मशास्त्र-साहित्य-ज्योतिष जैसे विषय पढ़ाएँ जाते थे। इस काल में भी शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा था। प्राय: ज्ञात होता है इस काल में संस्कृत शिक्षा का प्रसार उन्नत स्थिति पर था। मुस्लिम एवं ब्रिटिश काल में संस्कृत शिक्षा का प्रसार पतन की ओर था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास में भारत सरकार एवं अनेक आयोगों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई जिससे संस्कृत साहित्य शिक्षा जो मुस्लिम एवं ब्रिटिश काल में अपना अस्तित्व खो चुकी थी उसे एक बार फिर विकास की ओर उन्मुख हुई।

१९५६ ई. में सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में संस्कृत आयोग की स्थापना हुई। इस आयोग ने संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस आयोग ने संस्कृत शिक्षा में विकास के लिए कई संस्तुतियाँ प्रस्तुत की जिनमें से कुछ निम्नलिखित है।

१. संस्कृत को माध्यमिक विद्यालयों के पाठयक्रम में अनिवार्य स्थान हो।

२. संस्कृत को त्रिभाषा सूत्र में अर्थात् हिन्दी, भारतीय भाषा के साथ संस्कृत को अनिवार्य रूप में पढ़ाया जाए।

३. भारत वर्ष के सभी मानवों को संस्कृत के अध्ययन का अवसर मिले।

४. विषयों एवं वर्गों को विभक्त करना जिससे जो छात्र संस्कृत पढ़ना चाहते हैं वह संस्कृत के अध्ययन से वंचित न हो इत्यादि।

१९६४ डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग बना इस आयोग ने राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में संस्कृत को विशिष्ट दिया परन्तु त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत को पृथक स्थान नहीं दिया। तथा महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय शिक्षा में संस्कृत को वैकल्पिक रूप में रखा गया। १९८६ की नई शिक्षा नीति एवं १९९० राममूर्ति आयोग ने संस्कृत शिक्षा को महत्त्व दे दिया परंतु संस्कृत शिक्षा का प्रसार मंद गति से चलता रहा। आज संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान प्रान्त है। जहाँ संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास में विशिष्ट कार्य हुए हैं, आज संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास में अनेक प्रयत्न किए जा रहग है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, राष्ट्रीय संस्थान एवं मानित संस्कृत विद्यापीठ ऐसी संस्थाएँ हैं जो संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। यह संस्थाएँ आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके संस्कृत शिक्षा के विकास में सतत् प्रयत्नशील है। देश के विभिन्न राज्यों में इनसे संबंधित संस्थाओं का जाल फैला हुआ है। वर्तमान समय में संस्कृत शिक्षा के विकास में संलग्न निम्नलिखित संस्थाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली– केन्द्रीय संस्कृत परिषद की संस्तुति पर भारत सरकार ने १९७० में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की स्थापना नई दिल्ली में की थी। यह राष्ट्रीय स्तर की संस्था है जो संस्कृत शिक्षा के विकास के लिए आधुनिक तरीकों को उपयोग में लाकर इसके प्रचार प्रसार एवं संवर्धन में तत्पर है।

उद्देश्य-इसकी स्थापना के निम्नलिखित उद्देश्य है। इसमें से कुछ निम्नलिखित है–

- संस्कृत आयोग द्वारा कृत संस्तुतियों को क्रियान्वित करना।
- संस्कृत में नूतन शीघ्र कार्यों को सम्पन्न कराना।
- संस्कृत अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
- संस्कृत भाषा तथा उसके साहित्य का संरक्षण करना, उसे प्रोत्साहित करना तथा उसका करना।

● संस्कृत के उच्च अध्ययन के निर्मित निर्दिष्ट अवधि के लिए सुविधाएँ एवं आर्थिक सहायता प्रदान करना इत्यादि।

संस्थान में सम्बद्ध संस्थायें– इस समय संस्थान से सम्बन्धित संस्थाएँ सम्पूर्ण भारत में कार्य कर रही हैं। जिनमें निम्नलिखित संस्थाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं–

१. श्री गंगानाथ झा परिसर इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश)

२. श्री सदाशिव परिसर, पुरी उडीसा,

३. श्री रणवीर परिसर, जम्मू कश्मीर

४. गुरवायुर परिसर, केरल

५. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान जयपुर परिसर

६. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान लखनऊ

७. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान श्रृंगेरीर

८. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान भोपाल

९. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान गरली परिसर

१०. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के.जी. सोमय्या परिसर मुम्बई

अन्य मानित विश्वविद्यालय हैं।

१. श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

२. राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति

३. स्वामी जयेन्द्र सरस्वती-संस्कृत विश्वविद्यालय काञ्चीपुर, तमिलनाडू।

भारत में स्थित अन्य संस्कृत विश्वविद्यालय–

१. सम्पूर्णानंद-संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी उत्तरप्रदेश।

२. कामेश्वर सिंह-दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार प्रदेश

३. जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय पुरी, उडीसा

४. जगद्गुरु श्री रामानंदाचार्य-संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर,

५. श्री शंकराचार्य-संस्कृत विश्वविद्यालय कालडी, केरल

यह हर्ष का विषय है कि आधुनिक काल में संस्कृत शिक्षा के प्रति कई प्रान्तों में ध्यान दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भी संस्कृत शिक्षा के विकास एवं प्रसार में विशेष योगदान दे रहा है। संस्कृत में मौलिक अनुसंधान के लिए छात्रवृत्तियाँ प्रदान कर रहा है। संस्कृत शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए अनुदान देता है। हाल में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को संस्कृत शिक्षा के उन्नयन के लिए ९ करोड रुपये का अनुदान दिया है। संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास में जहाँ इन आयोगों एवं संस्थानों ने योगदान दिया है। वहाद्ध प्रौद्योगिकी युग में अनेक यंत्रों, उपकरणों का आविष्कार हुआ है। जिन्होंने संस्कृत शिक्षा के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इन यंत्रों एवं उपकरणों से मानव जीवन के सम्पूर्ण पक्ष को भी प्रभावित किया है, इन उपकरणों के माध्यम से मानव का कार्य एवं जीवन दोनों सरल हो गया। शिक्षा के क्षेत्र भी इन उपकरणों के प्रभाव से अछूता नहीं रहा। आज संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में इन उपकरणों एवं यंत्रों का प्रयोग किया जा रहा है जिससे संस्कृत शिक्षा को रूचिकर एवं प्रभावी बनाया जा रहा है। आज संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक अपने शिक्षण को प्रभावकारी बनाने के लिए इन यंत्रों का उपयोग कर रहा है। जैसे दूरदर्शन, प्रक्षेपण यंत्र, श्यामपट्ट, भाषापञ्जिका, सङ्गणक, अन्तर्जाल भाषा प्रयोगशाला इत्यादि, इस यंत्रों के माध्यम से संस्कृत शिक्षा के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संस्कृत शिक्षक को अपने शिक्षण को रुचिकर बनाने के लिए इन उपकरणों का ज्ञान होना आवश्यक है। कम्प्यूटर के माध्यम से व्याकरण के सूत्रों को नियमबद्ध करवाया जाता है। जिससे छात्र रुचि लेकर व्याकरण विषय को पढ़ते हैं। संस्कृत शिक्षाके प्रसार एवं विकास में इंटरनेट की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संस्कृत शिक्षा के विकास में देश स्थित विभिन्न विश्वविद्यालयों में कार्य हो रहे हैं। यह अन्तर्जाल के माध्यम से छात्र आसानी से घर बैठे ही जान सकते हैं। दूर बैठे प्रोफेसर विद्यार्थी, शोधार्थी अपने विचारों का आदान प्रदान इंटरनेट के जरिए कर

सकते हैं। तथा नए शोध ज्ञान से परिचित हो सकते हैं।

वर्तमान युग में जहाँ संस्कृत शिक्षा का प्रसार एवं विकास हो रहा है। वहीं दूसरी तरफ संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास मं अनेक चुनौतियाँ सामने उभरकर आ रही हैं। इन चुनौतियों अर्थात् समस्याओं के समाधान के बिना संस्कृत शिक्षा अपने गौरवमयी रूप को प्राप्त नहीं कर सकती। संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली कुछ चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं–

- आज के तकनीकी युग में छात्र तकनीकी विषयों के प्रति अधिक रुचि रखते हैं। इन विषयों में अधिक रुचि देने के कारण छात्र संस्कृत जैसे विषयों के प्रति उदासीन होते हैं।
- संस्कृत महाविद्यालयों एवं संस्थानों में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रम में आधुनिक विषयों को कम महत्त्वता देना।
- संस्कृत संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदान प्रमाण पत्र को अन्य विश्वविद्यालयों के द्वारा मान्यता न देना।
- संस्कृत संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों से उत्तीर्ण छात्रों को अन्य विशविद्यालयों में प्रवेश न मिल पाना।
- संस्कृत शिक्षा का दो भागों में विभाजित होना परम्परागत एवं आधुनिक।
- संस्कृत का वैकल्पिक विषय के रूप में होना।
- संस्कृत भाषा के प्रति लोगों का संकीर्ण भाव।
- जनसाधारण का संस्कृत भाषा का ज्ञान न होना।
- अंग्रेजी भाषा की महत्त्वता।

संस्कृत शिक्षाके विकास एवं प्रसार के लिए इन चुनौतियों को हल करना आवश्यक है। तभी संस्कृत शिक्षा का उन्नयन होगा।

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि संस्कृत भाषा का प्रसार एवं विकास वैदिक काल से चलता आ रहा है और वर्तमान युग में संस्कृत शिक्षा का विकास एवं प्रसार हो रहा है। वर्तमान युग में भारत सरकार बहुत से संस्कृत संस्थान एवं गुरुकुल है जिन्होंने संस्कृत शिक्षा

एवं संस्कृति को जीवित रखा हुआ है। एवं संस्कृत शिक्षा के प्रसार एवं विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वर्तमान समय में संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में अनेक चुनौतियाँ उभरकर सामने आई हैं। भारत सरकार एवं अनेक संस्कृत संस्थान इन चुनौतियों का समाधान करने का प्रयत्न कर रहे हैं। ताकि संस्कृत शिक्षा का प्रसार एवं विकास हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

१. झा. उदय शंकर, संस्कृत शिक्षण, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, प्रकाशन। २००८
२. मित्तल, संतोष, भाषा शिक्षण में नवाचार, नवचेतना पब्लिकेशन्स, जयपुर २००६
३. शर्मा नंदराम, संस्कृत शिक्षण, साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन जयपुर, २००७
४. शर्मा, उषा, संस्कृत शिक्षण, स्वाति पब्लिकेशन्स जयपुर
५. इंटरनेट

महाकवि कालिदास की कृतियों में शिक्षा एवं शैक्षिक प्रबन्धन

हर्षवर्धन वशिष्ठ एवं कुलभूषण
शोधच्छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली

महाकवि कालिदास अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। उनकी कृतियों में अनेक ज्ञान-विद्याओं का समावेश है। अपने देश की तत्कालीन संस्कृति का चित्रण उनकी रचनाओं में स्पष्ट अंकित है। महाकवि ने अपनी रचनाओं में सांस्कृतिक मान्यताओं, धर्म-दर्शन-कला-शिक्षा आदि की चर्चा तो की ही है। साथ ही साथ शिक्षा एवं शैक्षिक प्रबन्धन के सम्बन्ध में भी उनके विचार सुस्पष्ट है। शिक्षा का उद्देश्य क्या हो, शिक्षक का व्यक्तित्व कैसा हो शिक्षक और छात्रों के सम्बन्धों का स्वरूप कैसा हो, शिक्षा-संस्थाओं में अनुशासन की अपरिहार्यता है या नहीं, शिक्षा के प्रतिप्रबंध शासन की नीति क्या हो, लोक का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण किस प्रकार का हो, शिक्षा में परीक्षा तथा उपाधि का क्या सम्बन्ध हो आदि प्रश्नों का उत्तर हमें महाकवि कालिदास की कृतियों में मिलता है।

महाकवि ने किसी शिक्षण-संस्था में अध्यापन भले ही न किया हो, किंतु शिक्षा के सम्बन्ध उन्होने जो अपने विचार रखे हैं, उनसे उनकी इस राष्ट्रिय समस्या के प्रति पूर्ण सजगता का संकेत मिलता है। शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए महाकवि कहते हैं कि कोरे पुस्तकीय ज्ञान को प्राप्त कर लेना अपने में कोई अर्थ नही रखता। विद्या-अर्जन के पश्चात् सतत् अभ्यास की आवश्यकता होती है। **'विद्यामभ्यसनेन'**[1]। हमारें अर्जित ज्ञान की लोक में सार्थकता तभी है, जब वह व्यवहार में ही उतना खरा उतरे।

शिक्षक के गुण

एक अच्छे शिक्षक के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हुए महाकवि ने कहा है कि श्रेष्ठ शिक्षक वही है, जिसकी अपने विषय में गहरी पैठ हो। उसका अपने विषय पर तो पूर्ण अधिकार होना चाहिये, अध्यापन-क्षमता भी उसकी उत्कृष्ट कोटि कि होनी ही चाहिये, जिससे छात्रों को श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ मिल सके--

श्लिष्टाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्स्य विशेषयुक्ता[2]।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥
सुसिक्खिदोवि सव्वो उवदेसदंसणे णिण्णातो होदि।

(सुशिक्षतोऽपि सर्वः उपदेशदर्शनं निष्णातो भवति[2]।)

ऐसा अध्यापक ही समाज में अपना स्थान बना पाता है। महाकवि ने ऐसे अध्यापक को ही 'सुतीर्थ' की संज्ञा दी है, किंतु अध्यापक यदि अपने उत्तरदायित्व का सही निर्वाह नही करता तो कालिदास की लेखनी उसे क्षमा भी नही करती। मालविकाग्निमित्र में ऐसे शिक्षकों के सम्बन्ध में उन्होने स्पष्ट रूप से कहा है कि जिसका शास्त्र ज्ञान केवल जीविका निर्वाह के लिये है, वह तो ज्ञान को बेचनेवाला वणिक् है[3]। कालिदास की मान्यता है कि उत्तम पात्र को दी गई शिक्षा अवश्य उत्कर्ष प्रकट करती है-

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः[4]।

किंतु उत्तम पात्र का चयन भी उत्तम अध्यापक ही कर सकता है। राग-द्वेष से लिप्त अथवा पूर्वाग्रह ग्रस्त अध्यापक इस कार्य को करने में असफल रहेगा और वह उसकी अयोग्यता का सूचक होगा-

विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति[6]।

यदि सही शिष्य को सही अध्यापक के द्वारा शिक्षा प्रदान की गयी है तो कोई कारण नही है कि उसका परिणाम भी सही न निकले।

शिक्षक-छात्र सम्बन्ध

अध्यापक एवं छात्रों के बीच के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए कालिदास ने कहा है कि शिक्षण-अवधि में आचार्य छात्रों के लिये अध्यापक भी है और अभिभावक भी । छात्र के सर्वांगीण कल्याण को दृष्टि में रखते हुए वे उसे विद्या प्रदान करते है । आश्रम में सभी छात्र समान होते है । सभी को आचार्य से समान व्यवहार और एक सा स्नेह मिलता है, चाहे वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश हों अथवा वरतन्तु के आश्रम में कौत्स । गुरु के यहाँ छात्रों को पुत्रवत् प्रेम मिलता है । छात्र के व्यक्तित्व का आश्रम में सम्यक् विकास होता है । आचार्य को इसीलिये शिष्य पर पूर्ण अधिकार प्राप्त रहता है-

पभवदि आआअरिओ सिस्सजणस्स (प्रभवत्याचार्यः शिष्यजनस्य)[7], जिससे अपने छात्र के व्यक्तित्व को वह सही रूप से सँवार सके । अतः यह स्वाभाविक है कि छात्रों से भी आचार्य को अटूट सम्मान प्राप्त हो । कालिदास की कृतियों में यह मान्यता स्थापित मिलती है । इससे संकेत मिलता है कि कालिदास के युग में अध्यापकों और छात्रों के बीच के सम्बन्ध अपेक्षा के अनुरूप प्रियकर थे ।

अनुशासन

कालिदास की रचनाओं में इस तथ्य के भी पर्याप्त संकेत मिलते है कि शिक्षण-संस्थाओं मे अनुशासन सम्बन्धी कोई समस्या नही थी । उसके विपरीत आश्रमों में अनुशासन का पालन कड़ाई से होता था । वहाँ सबसे अपेक्षित था कि अनुशासन के नियमों का सभी लोग समान रूप से पालन करे । इसके लिये कोई अपवाद रूप नही था । आश्रम के प्रध ान के आदेश का कोई भी उल्लंघन नही कर सकता था । फिर चाहे वह राजपुत्र ही क्यों न हो? यदि कोई राजकुमार आश्रम के नियमों का उल्लंघ करता तो उसे भी क्षमा नही किया जाता था । उसे भी दण्डित होना पड़ता था । महर्षि च्यवन के आश्रम में महाराज पुरूरवा के पुत्र कुमार आयु के आश्रम विरुद्ध आचरण करने पर आश्रम में एक पक्षी को बाण से मारने पर उसे आश्रम से तत्काल निष्कासित कर दिया गया

था[8] । शासन भी आश्रम के नियमों का पूर्ण सम्मान करता था ।

विद्यालय व्यवस्था

कालिदास की कृतियों में ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं मिलता जहाँ आश्रम के नियमों को शिथिल करने के लिये शासन के द्वारा अपने प्रभाव का उपयोग किया हो । स्पष्ट है कि आश्रम के कुलपति अपने कार्यक्षेत्र में छात्रों के हित में यथोचित निर्णय लेने के लिए पूर्ण सक्षम एवं स्वतंत्र थे । शिक्षा के क्षेत्र में नीति विषयक निर्णय लेने का अधिकार किसी वसिष्ठ अथवा वरतन्तु, कण्व अथवा च्यवन का ही होता था । शासन इस क्षेत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था । उस युग में शासन की तरह प्रजावर्ग भी आश्रमों अथवा शिक्षा-संस्थाओं का आदरपूर्ण दृष्टि से देखता था । कुलपति का पद सर्वत्र सम्मानित था । आश्रम की मर्यादा के परिपालन में सबका पूर्ण विश्वास था । उच्चवर्ग और सामान्यवर्ग सभी अपने पुत्रों को आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने के लिये भेजते थे । महर्षि कण्व के आश्रम में शाङ्र्गरव और शारद्वत समाज के सामान्य वर्ग से आने वाले छात्र प्रतीत होते है ।

रघुवंश में वरतन्तु का शिष्य कौत्स भी सामान्य श्रेणी से आनेवाला छात्र है । इन छात्रों के विवरण से ज्ञात होता है कि इस वर्ग के छात्र भी पूर्ण निष्ठा से श्रद्धापूर्वक ज्ञान प्राप्त करते थे, एवं अपने आचार्य का आशीर्वाद और स्नेह प्राप्त करते थे । ऐसा कही कोई उल्लेख नही मिलता जहाँ इस वर्ग के छात्रों ने आश्रम के अनुशासन को उल्लंघित करने का कभी प्रयास किया हो ।

परीक्षा-प्रणाली

शिक्षा-पद्धति के समान परीक्षा के सम्बन्ध में भी कालिदास के विचार स्पष्ट है । सही शिक्षा परीक्षित होने पर उसी प्रकार खरी उतरती है, जिस प्रकार अग्नि में डाला हुआ सोना । वह कभी मलिनता को प्राप्त को प्राप्त नही होता[9] । परीक्षा में उत्तीर्ण होने न पर केवल शिष्य की प्रशंसा होती है, अपितु अपने उपदेष्टा को भी वह गौरव प्राप्त कराता है । मालविकाग्निमित्र नाटक में आयोजित नृत्यस्पर्धा में मालविका के

उत्कृष्ट नृत्य-प्रदर्शन के लिये देवी धारिणी ने नृत्याचार्य गणदास की प्रशंसा की थी ।

कालिदास की मान्यता रही है कि प्राप्त किये हुए ज्ञान की परीक्षा के लिये कोई निश्चित समय नही रहता । शिष्य को अपने ज्ञान की परीक्षा देने के लिए सदा तैयार रहना चाहिये । उसकी परीक्षा कहीं भी और किसी भी समय ली जा सकती है । यदि छात्र को सही मार्गदर्शन मिला है और यदि उसने अपने आचार्य के बतलाये मार्ग पर चलते हुए शिक्षा ग्रहण की है, तो कोई कारण नहीं कि किसी भी समय परीक्षा देने में उसे कोई हिचक हो । छात्र को अपने आचार्य की योग्यता पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये और अपने ऊपर आत्मविश्वास भी । ऐसा छात्र अवसर आने पर सदा सफल ही रहता है। महर्षि वाल्मीकी से विद्या प्राप्त कर बालक लव-कुश ने अपने मौखिक रामायण पाठ से अयोध्या में सारी राज्यसभा को मन्त्रमुग्ध कर दिया था ।

उपाधि

कालिदास ने आचार्य से प्राप्त की हुई विद्या के प्रमाणस्वरूप किसी उपाधि अथवा प्रमाणपत्र को कभी आवश्यक नही ठहराया । उनकी स्पष्ट मान्यता रही है कि यदि सम्यक् रूप से प्रदत्त सम्यक् रूप से ग्रहण की गयी है तो वह फलवती अवश्य होगी । यदि आचार्य को विश्वास हो जाता है कि छात्र ने पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर ली है, तो उनका छात्र को प्रसन्नतापूर्वक प्रदान किया गया आशीर्वाद ही अपने-आप में सबसे बड़ी उपाधि होती थी । फिर तो शिष्य कहीं भी जाकर अपनी योग्यता के आधार पर अपना स्थान बना लेता था ।

श्यामायते न विद्वत्सु यः कांचनमिवाग्निषु।।(मालविकाग्निमित्र 2/9)।

रघुवंश में आचार्य वरतन्तु ने अपने शिष्य कौत्स के विद्याध्ययन के प्रति अपना पूर्ण संतोष व्यक्त किया[10] । छात्र कौत्स के लिये गुरु-प्रतोष ही सर्वोच्च उपाधि थी ।

कालिदास ने योग्यता का मापदण्ड गुरु से प्राप्त ज्ञान को माना है न कि मात्र उपाधि-पत्र को । उस युग में छात्रों के बीच स्पर्धा ज्ञान प्राप्ति के लिये होती थी, उपाधि प्राप्ति के लिये नहीं । यही कारण था कि कोई भी योग्य छात्र अपनी उपाधि लेकर काम के लिये यत्र-तत्र भटकता हुआ कालिदास के साहित्य में नही मिलता । इस प्रकार महाकवि ने अपनी कृतियों में शिक्षा सम्बन्धी कतिपय ज्वलन्त प्रश्नों को उठाया है और उन प्रश्नों का अपने ढंग से समाधान भी रखा है । महाकवि कालिदास एक महान् दूरद्रष्टा थे । महाकवि की और उनके विचारों की आज भी प्रासंगिकता है । आज के संदर्भ में भी उनकी अवधारणाऐं मननीय एवं विचारणीय है ।

सन्दर्भ

1. रघुवंश 1/88
2. मालविकाग्निमित्र 1/16
3. मालविकाग्निमित्र 1/16
4. मालविकाग्निमित्र 1/16
5. मालविकाग्निमित्र ।
6. विक्रमोर्वशीर्यम् ।
7. मालविकाग्निमित्र ।
8. विक्रमोर्वशीर्यम् ।
9. उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।
10. समाप्तविद्येन मया महर्षिर्विज्ञापितोऽभूद् गुरुदक्षिणायै ।
    स मे चिरायास्खलितोपचारां तां भक्तिमेवागणयत् पुरस्तात्।। (रघुवंश 1/88)

संस्कृत शिक्षा का सशक्तीकरण : मुद्दे एवं चुनौतियाँ

दीपक कुमार कोठारी

सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्त प्रत्यय करने पवर संस्कृत शब्द निष्पन्न होता है। संस्कृत शब्द से हम संस्कृत भाषा संस्कृत वाङ्मय को ले सकते हैं। इसी प्रकार शिक्ष् धातु से निष्पन्न शिक्ष् धातु से और टाप् प्रत्यय करने पर शिक्षा शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है **विद्योपादान**, अर्थात् विद्या ग्रहण करना। इस प्रकार संस्कृत शिक्षा से तात्पर्य हुआ **संस्कृत भाषा के माध्यम से दी जाने वाली अथवा संस्कृत वाङ्मयोपनिबद्ध शिक्षा**। कहते हैं कि ज्ञान का प्रथम आलोक हमारे देश में ही फूटा जिसको तत्कालीन समाज में आर्यावर्त कहते थे, आर्य शब्द पर जब भी हम विचार करने चलते हैं तो पाते हैं कि आर्य शब्द की निष्पत्ति ऋ धातु से हुई है जिसका अर्थ है गति अर्थात् ऊर्ध्वगमन। इस प्रकार ऊर्ध्वगमनशील जो हुए वे आर्य कहलाये। आर्यों का जहाँ वर्त्तन हुआ, निवास हुआ वह आर्यावर्त्त कहलाया। एवं यही वह भू-भाग है जिसको आज हम भारतादि के नाम से जानते हैं। उपर्युक्त आर्य शब्द श्रेष्ठता का ही प्रतीक है, शायद इसी बात को मनु से लेकर भगवान श्रीकृष्ण तक वे अपनी गीता में लिखा है **'यद्यदाचरति श्रेष्ठः"**।[1] मनु अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं कि–

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥'[2]

अर्थात् इस आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए श्रेष्ठ जनों के श्रेष्ठ चरित्र से ही समस्त संसार अपने अपने चरित्र को सीखे। अब यहाँ पर महर्षि मनु की अथवा भगवान् कृष्ण की वाणी पर विचार करें एवं सोचें कि आखिर उन्होंने विश्व के लिए आदर्श के रूप में यहाँ के लोगों को क्यों रखा? तो उत्तर होगा क्योंकि वह आर्य थे। वह विश्व में सर्वश्रेष्ठ थे, विश्वगुरु थे। अब यहाँ हम यह विचार करते हैं कि आखिर वह कौन

सी चीज इस राष्ट्र के निवासियों के पास थी जिस कारण वह विश्वगुरु हुए। तो उत्तर होगा उनका जीव ब्रह्मैक्य का बोध कराने वाला औपनिषद् ज्ञान अथवा **'ब्रह्मज्ञान'** जिसको प्राप्त करने के बाद फिर वह कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रहता। इसी कारण वे आर्य श्रेष्ठ, जगद्वन्दनीय हुए एवं वह ज्ञान जिस भाषा में निबद्ध था उसका नाम है 'संस्कृत'। इसीलिये इसको देववाणी भी कहा जाता है क्योंकि इस भाषा में निबद्ध ज्ञान को अपने जीवन में उतारने वाला ब्रह्म ही कहा जाता है **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'** यह महिमा थी संस्कृत भाषा की। एक समय था जब न केवल मनुष्य ही अपितु पक्षी भी इस भाषा में ईश्वर विषयक वाद किया करते थे–

स्वतः प्रमाणं, परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।

आदि अनेक प्रमाण इस विषय पर प्राप्त किये जा सकते हैं। किन्तु कालान्तर में यह भाषा ह्रास को पाती गयी एवं आज इस भाषा को एंव इस भाषा में निहित ज्ञान को जानने वाले विरले ही दिखलाई पड़ते हैं। कारण कालचक्र की महिमा ही कहा जा सकता है, लेकिन पुनः आज इस भाषा में निहित ज्ञान के प्रसार की आवश्यकता अत्यन्त ही आवश्यक रूप से आन पड़ रही है। क्योंकि सम्प्रति अनार्यवर्त बन चुके इस राष्ट्र को पुनः आर्यावर्त्त बनाने का एकमात्र उपाय मुझे यह ही दिखलाई पड़ रहा है।

एक समय था जब संस्कृत अपनी सशक्ततम अवस्था में थी, तब संस्कृत वाङ्मय में (वैदिक वाङ्मय) में निहित ज्ञान का प्रचार-प्रसार पूरे राष्ट्र में था। उस वैदिक कालीन शिक्षा की एक विशेषता थी कि वह भौतिकवस्तु परक न होकर आत्मपरक थी। वैदिककालीन जीवन पद्धति की ओर यदि हम दृष्टिपात करें तो हमें एक बात स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि तब मानव-जीवन का उद्देश्य भौतिकसुख न होकर आत्मानन्द की प्राप्ति था। और उसकी प्राप्ति का बड़ा ही सुन्दर विवेचन हमारे उपनिषदों में प्राप्त होता है, उपनिषदों का मुख्य वर्ण्य विषय ब्रह्म ही है। जिसकी प्राप्ति को पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्ष के नाम से भी कहा गया है। जब तक यह ही जीवनदृष्टि हमारी थी तब तक संस्कृत की भी

सशक्तता थी क्योंकि तद्विषयक वर्णन उपनिषदों में संस्कृत भाषा में ही था। अत: प्रत्येक प्राणी जो भाषा लिख-पढ़ नहीं भी सकता था, वह भी स्वाभाविक रूप से संस्कृत का ज्ञान रखता था। अत: संस्कृत संशक्ततम अवस्था में थी। किसी भी भाषा के सशक्ततम होने के यही प्रमाण हैं कि वह भाषा सर्वत्र बोली जाती हो, उस भाषा में पर्याप्त साहित्य हो एवं नवीन साहित्य सृजन भी उसी भाषा में हो आदि, यह सारी ही बातें वैदिककालीन समाज में संस्कृत के साथ देखने को हमें मिलती हैं, इसके अतिरिक्त वैदिक काल में इस भाषा के सशक्त होने का कारण उस काल में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त और कोई दूसरी भाषा का न होना भी है, जैसा कि भाषोत्पत्ति के विषय में अनेक सिद्धान्त माने जाते हैं एवं इसी प्रकार एक सिद्धान्त दिव्योत्पत्ति सिद्धान्त भी है जिसके अनुसार सृष्टि के आदि में जैसे ईश्वर ने प्राणियों की रचना की, उसी प्रकार उनके परस्पर व्यवहार के लिए एक भाषा का भी सृजन किया जिसको तत्कालीन समाज में वैदिकसंस्कृत के नाम से जाना गया। अत: उस काल में परस्पर व्यवहार का एकमात्र माध्यम संस्कृत भाषा ही थी।

वैदिककाल में बोलचाल की भाषा संस्कृत ही थी, वैदिक-कालीन सम्पूर्ण साहित्य तो इस भाषा में था ही इसके उत्तर काल में भी इसी भाषा में पर्याप्त साहित्य सृजित हुआ, जिसको हम लौकिक संस्कृत के नाम से जानते हैं। लौकिक संस्कृत में यद्यपि असंख्य काव्यों का सृजन हुआ तथापि उसका एक ही महाकाव्य ऐसा है जो संसार भर के समस्त विषयों को अपने में समेट कर उनका युक्तियुक्त विवेचन प्रस्तुत कर देता है। अत एव उसके बारे में कहा जाता है **'यन्न भारते तन्न भारते।'** अर्थात् जो भारत में नहीं है वह भारत में नहीं है, उस ग्रन्थ को हम महाभारत के नाम से जानते हैं। इसी प्रकार अन्य महाकाव्य रामायण आदि भी हैं। संस्कृत बोलचाल की भाषा थी इसके भी अनेक प्रमाण हमें प्राप्त होते हैं। इसका एक बड़ा ही सुन्दर विवेचन एक भारवाहक का एक राजा के साथ संवा के रूप में दिया जाता है। एक बार मार्ग में जाते हुए एक भारवाहक को एक राजा पूछता है– हे भारवाहक! क्या तुमको यह भार कष्ट नहीं दे रहा है? **किं भारो न बाधति?** राजा संस्कृत में वाक्य बोलता है। तब वह जो उत्तर उसको देता है वह इस बात का

प्रमाण है कि संस्कृत बोलचाल की भाषा थी वह कहता है– **न भारो बाधते राजन्! यथा बाधति बाधते।** अर्थात् मुझे भार उतना कष्ट नहीं देता जितना तुम्हारे द्वारा बोला गया **बाधति** यह पद कष्ट देता है। क्योंकि शुद्ध रूप **बाधते** होता है, बाधति नहीं। यहाँ भारवाहक के इस सूक्ष्म ज्ञान से यह प्रमाणित होता है कि संस्कृत सामान्य बोलचाल की भाषा थी। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक प्रमाण इस विषय में हमें प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि वैदिक-काल में संस्कृत भाषा अपनी सशक्ततम अवस्था में थी किन्तु आज नहीं। उसका कारण मैंने काल-प्रभाव बताया। काल का ही यह प्रभाव है जिस कारण संस्कृत भाषा की यह स्थिति आज है।

वैदिकोत्तर काल में भी संस्कृत की स्थिति ठीक थी किन्तु पूर्णावस्था वैदिककाल में ही थी। क्योंकि वैदिककालीन जीवन त्यागप्रधान था एवं संस्कृतभाषा भी त्यागप्रधान ही है। उसमें सर्वत्र (उपनिषदों के सन्दर्भ में)

त्याग की ही महिमा है क्योंकि उसका जो प्राप्य है वह आत्मा है, ब्रह्म है। एवं आत्मा की प्राप्ति त्याग से ही हो सकती है–

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेनामृतत्वमाशुः[3]

अर्थात् त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। इसी बात को भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं– **त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।**[4] अर्थात् त्याग से ही शान्ति की प्राप्ति होती है और यह शान्ति ही प्राणिमात्र का प्राप्तव्य है किन्तु आज हम इस शान्ति की प्राप्ति हेतु बनाये गये त्यागप्रधान वैदिक-मार्ग को भूलकर उपभोग प्रधान मार्गान्तर से गमन कर रहे हैं, जिसके परिणाम में हमें दुःख ही मिल रहा है। और यह उपभोग-प्रधान जीवनपद्धति हमें संस्कृतभाषा नहीं देती अतः हमारी दृष्टि में उस भाषा का उस भाषा में निहित ज्ञान का कोई मूल्य नहीं है। इसी कारण आज संस्कृत अपनी निम्नावस्था में है। किन्तु कालक्रमेण पुनः हम इस बात को समझेंगे और हमें यह ज्ञान होगा कि हमारा वह त्यागप्रधान वैदिक-मार्ग ही सही था। उसी मार्ग से चलकर हम अपने

दु:खों से एकान्तिक एवं आत्यन्तिक रूप से निवृत्ति पा सकते हैं तभी हम संस्कृत भाषा की शरण में जायेंगे, एवं संस्कृत अपनी सशक्ततम अवस्था को प्राप्त होगी।

यहाँ बात की जा रही है संस्कृत शिक्षा के सशक्तीकरण की। तो मेरे विचार से यहाँ पर यह प्रश्न खड़ा होता है कि कौन सी संस्कृत शिक्षा? लौकिक अथवा अलौकिक? क्योंकि संस्कृत वाङ्मय को हम दो भागों में विभाजित करते हैं, जिसमें लौकिक वाङ्मय में हम काव्य आदि को रखते हैं एवं अलौकिक संस्कृत में वेदों को। तो यहाँ प्रश्न होता है कि कौन सी शिक्षा की बात की जा रही है? वह शिक्षा जो वर्तमान समय में दी जा रही है महाकवि कालिदास प्रभृति कवियों का साहित्य अथवा हमारा औपनिषद् ज्ञान? यदि इस प्रश्न का उत्तर लौकिक संस्कृत से है तो काफी हद तक ठीक है लेकिन हमें विशेष रूप से वैदिक शिक्षा के सशक्तीकरण के बारे में सोचना चाहिए क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है एवं शिक्षा का उद्देश्य मानव का सर्वाङ्गीण विकास करना है जिसमें पूर्णरूपेण केवल हमारा औपनिषद् ज्ञान ही समर्थ है। उपनिषदुक्त ज्ञान से युक्त होकर ही हम पूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक साहित्य भी यद्यपि वैदिक ज्ञान से ही नि:सृत है तथापि तत्तत्कवि विशेष की कल्पना से प्रसूत होने के कारण उसमें वह सामर्थ्य नहीं रह पाया है। नहीं वह मानव के सम्पूर्ण विकास में समर्थ ही है। अत: हमें वैदिक शिक्षा के सशक्तीकरण की ही बात करनी चाहिये। एवं सम्प्रति समाज में व्याप्त समस्त बुराईयों का समाधान भी वैदिक वाङ्मय की वह त्यागपरक शिक्षा ही दिखलाई पड़ रही है। उपभोगवाद शिक्षा से हमेशा विनाश ही हुआ है इसका प्रत्यक्ष साक्षी हमारा यह देश भी हो रहा है, और इस कार्य में महनीय योगदान संस्कृतज्ञ ही दे सकते हैं, क्योंकि वे इस विषय को ज्यादा अच्छे ढंग से समझ सकते हैं। एवं अपने जीवन में उस शिक्षा को उतारकर समाज के समक्ष एक जीवंत उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं। वर्तमान समय से जोड़कर देखें तो आज की संस्कृत शिक्षा मुझे पूर्णरूपेण संस्कृत वाङ्मय की दृष्टि से प्रासंगिक नजर नहीं आती है। क्योंकि उस शिक्षा में ऐसा कुछ विशेष नहीं नजर आता जो आत्मकल्याणकारी हो एवं समाजोपयोगी हो। किसी शास्त्र विशेष में

किसी विद्वान विशेष के द्वारा किये गये चिन्तन में ही जीवन लगा देना एवं अपने मूल उद्देश्य को छूना तक नहीं। मुझे अत्यन्त ही अप्रासंगिक प्रतीत होता है। अतः हमें वैदिक शिक्षा के ही पठन-पाठन पर अधिक जोर देना चाहिये, एवं उसमें सहायक जो जहाँ तक हो वहाँ तक उसको स्वीकार किया जा सकता है।

सन्दर्भ :

१. भ.गी.अ.
२. मनुस्मृति २.२०
३. महा.नारायणोपनिषद्
४. भ.गी.अ. १२.१२

संस्कृत शिक्षा एवं अनुसंधान

सोनम जैन, शोध छात्रा

अयं निजं परोवेति गणनालघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैवकुटुम्बकम्॥

उपरोक्त कथन संस्कृत वाङ्मय की विचारधारा से ओतप्रोत है, जिसके माध्यम से यह अभिप्रेरित होता है कि संस्कृत वाङ्मय इस तरह के सारगर्भित विचारों से भरा हुआ है।

प्रस्तुत विषय का मुख्य उद्देश्य संस्कृत वाङ्मय में निहित विचारों को अनुसंधानिक दृष्टि से सामाजिक जन चेतना को परिलक्षित करने वाले तत्वों का परिदर्शन कराना है। जैसे– संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान का क्या योगदान था? संस्कृत शिक्षा की विभिन्न शाखाओं में अनुसंधान का क्या महत्त्व था? संस्कृत शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु अनुसंधान के विभिन्न रूपों का प्रादुर्भाव हुआ था? भारत में संस्कृत शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर प्रसारित करने के लिये तत्कालीन समाज के द्वारा अनुसंधानिक दृष्टि से नवीन साहित्य का निर्माण किया गया।

• वेद को जन सामान्य तक लाने के लिए महर्षियों ने अनुसंधान किया, जिसके परिणामस्वरूप हमें ब्राह्मण, उपनिषद, आरण्यक आदि प्राप्त होते हैं।

• अनुसंधान के परिणामस्वरूप ही संस्कृत साहित्य का हमें परिवर्तित स्वरूप प्राप्त होता है। जैसे कालिदास के द्वारा महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत के आदि पर्व में शकुन्तलोपाख्यान भाग को अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के रूप में नवीनता प्रदान करना।

• संस्कृत भाषा को परिष्कृत रूप प्रदान करने हेतु व्याकरण की रचना करना तत्कालीन अनुसंधान के स्वरूप को दर्शाता है। यथा पाणिनी द्वारा अष्टाध्यायी की रचना करना।

• भाषा विज्ञान के द्वारा संस्कृत भाषा को श्लिष्ट, प्रश्लिष्ट तथा अश्लिष्ट तीन भागों में विभक्त करना अनुसंधानिक दृष्टि से ही संभव हो सका।

• काल की दृष्टि से संस्कृत भाषा को श्लिष्ट, प्रश्लिष्ट तथा अश्लिष्ट तीन भागों में विभक्त करना अनुसंधानिक दृष्टि से ही संभव हो सका।

काल की दृष्टि से संस्कृत शिक्षा का वैदिक, उत्तर वैदिक तथा आधुनिक काल निर्धारण भी अनुसंधान की ही देन है।

उपरोक्त पंक्तियों पर दृष्टि डालने से हमें यह ज्ञात होता है कि संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान की संकल्पना नवीन नहीं है अपितु अनुसंधान का यह स्वरूप तो संस्कृत शिक्षा में प्राचीन काल से ही प्रस्तुत था किन्तु इस बात को प्रमाणित तथ्यों द्वारा पुष्ट करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को उल्लेखित करना आवश्यक प्रतीत होता है।

• संस्कृत में शिक्षा की अवधारणा
• संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान की अवधारणा
• संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान की अवधारणा
• अनुसंधान का संस्कृत साहित्य क्षेत्र में विकासक्रम
• आधुनिक संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान की आवश्यकता

उपरोक्त बिन्दुओं स्पष्ट करते हुए प्रस्तुत शोधपत्र में संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों के बारे में बताया जाएगा।

१. संस्कृत में शिक्षा की अवधारणा

यह तो सर्वविदित है कि प्राचीन काल में संस्कृत शिक्षा के प्रसार की परम्परा मौखिक थी। यह शिक्षा परम्परा सोलह संस्कार से शुरू होकर चारों आश्रमों पर समाप्त होती थी। अर्थात् प्राचीन काल में भी शिक्षा को आधुनिक काल की तरह सर्वांगीण विकास में सहायक और आजीवन चलने वाली प्रक्रिया माना जाता था। यानी शिक्षा की यह अवधारणा भी प्राचीन है। ठीक इसी तरह एडम्स के द्वारा प्रतिपादित

शिक्षा के प्रमुख अंगों की अवधारणा भी संस्कृत शिक्षा में शुरू से ही निहित थी।

शिक्षक 'आचार्यवान्पुरुषो वेद'[१] इस स्मृतिवाक्य के अनुसार समस्त वैदिक-वाङ्मय में इष्टप्राप्ति-अनिष्ट परिहार के मार्ग प्रशस्तिकरण का एकमात्र साधन गुरु ही है। **कविकुलगुरुकालिदास** ने भी शिक्षक की योग्यता बताते हुए कहा है कि–

शिलष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।[२]

विद्यार्थी विद्यार्थी के सम्बन्ध निरुक्त में महत्त्वपूर्ण चर्चा प्राप्त होती है। महर्षि यास्क ने विद्यासूक्त में विद्यार्थी के स्वरूप और उसकी पात्रता का विश्लेषण करते हुए कहा– "जो शिष्य विद्या को घृणा की दृष्टि से देखता है तथा कुटिल और असंयमी है, ऐसे शिष्य को विद्यादान नहीं देना चाहिए किन्तु जो पवित्र, ध्यानमग्न, बुद्धिमान, ब्रह्मचारी, गुरु के प्रति सत्यभाषी और गुरु सान्निध्य में प्राप्त ज्ञान का संरक्षण और संवर्धन संग्रहित धन की भाँति करे, उसे ही शिक्षा प्रदान करनी चाहिए"[३] **पाठ्यक्रम** के संदर्भ में वेद-वेदांगों के पर्यालोचन से हमें ज्ञात होता है कि शिक्षाभ्यास की प्रक्रिया पर अनादिकाल से ही विशेष बल दिया जाता रहा है। छन्दोग्योपनिषद् में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और इतिहासपुराण का वर्णन मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि उपनिषद्काल में इन विषयों के अध्ययन-अध्यापन की विशेष व्यवस्था थी। महाकविकालिदास के **'समाप्त विद्येन'**[४] इस पद्य से स्पष्ट होता है कि विद्या का कोई पाठ्यक्रम रहा होगा, उसको शिष्य ने गुरु के सान्निध्य में अर्जित किया होगा।

२. संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान की अवधारणा

अंग्रेजी में अनुसंधान शब्द के लिए रिसर्च शब्द का प्रयोग किया जाता है और हिन्दी में शोध, गवेषणा, अन्वेषणा, अनुसंधान शब्द प्रयोग में लिए जाते हैं, जबकि संस्कृत शिक्षा की प्राचीन परम्परा में अनुसंधान शब्द का प्रयोग संधान, प्रणिधान, सूक्ष्मनिरीक्षण, विचार, गवेषणा, अनुसरण आदि अर्थों में प्रयोग हुआ।

विचार अर्थ में अनुसंधान शब्द का प्रयोग– **यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः।**[५] (मनुस्मृति)

प्रणिधान अर्थ में अनुसंधान शब्द का प्रयोग–

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्नान्यायान्ति वै बलात्।
अनुसंधानराहित्यमालस्यं भोगलालसम्।।[६] (तेजोबिन्दूपनिषद्)

ध्यान अर्थ में अनुसंधान शब्द का प्रयोग–

सर्वचिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः।
नादमेवानुसंदध्यान्नाद चितं विलियत।।[७] (नादबिन्दूपनिषद्)

गवेषणा अर्थ में अनुसंधान शब्द का प्रयोग–

"पुरा इतिवृतकथाऽनुसंधेया।"[८] (कुमारसम्भवम्)

प्राचीन काल में अनुसंधान के लिए प्रयुक्त गवेषणा शब्द गुरु के द्वारा गौशाला में गाय को न देखकर शिष्य को गौओं को खोजने के लिए भेजना इस अर्थ में प्रयुक्त होता था। संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान का प्रकृष्ट रूप तो वैदिककाल के वेदों में दिखाई देता है। जो प्राचीन काल में भी प्रामाण्य थे, आज भी प्रामाण्य हैं तथा भविष्य में भी प्रामाण्य रहेंगे। जैसा कि कहा भी गया है– **"वेद त्रयो विद्या तथ्यों सार संग्रहे गण्यते"**[९] वेद त्रय ही हैं, जिनको आधार मानकर संस्कृत शिक्षा में व्यवहार होता रहा है। ऐसे में विभिन्न विषयों को जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता हुई और जिसके परिणामस्वरूप उत्तरवैदिक काल की नवीन अवधारणा प्रस्तुत हुई, जिसमें तीनों वेदों में एक वेद और जुड़ा तत्पश्चात् चार वेद प्रमाण्य के रूप में स्वीकार किए गए।

ऋग्वेद – ज्ञान विषयक – अग्नि ऋषि

यजुर्वेद – कर्म विषयक – वायु ऋषि

सामवेद – उपासना विषयक – आदित्य ऋषि

अथर्ववेद – विज्ञान विषयक – अंगिरा ऋषि

संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान का मतलब पूर्व प्रदत्त विषयों में बौद्धिक क्षमताओं के आधार पर नवीन विचार प्रदान करना था एवं पूर्व प्रदत्त संदर्भित सिद्धान्तों में नवीनतम विचारदृष्टि से प्रेरित होकर नई धाराओं के आधार पर पुनः सिद्धान्त का स्थापन करना था। जब हम प्राचीन संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान का इतिहास देखते हैं तो हमें निम्नलिखित अनुसंधान प्राप्त होते हैं–

- सांस्कृतिक अनुसंधान
- ऐतिहासिक अनुसंधान
- सामाजिक अनुसंधान
- वैज्ञानिक अनुसंधान
- चिकित्सकीय अनुसंधान

३. संस्कृत शिक्षा में अनुसंधाता की अवधारणा

प्राचीन काल में अनुसंधाता के लिए अनेक प्रकार की अवधारणा रही। जैसे कि भगवद्गीता में कहा गया है–

• **विमूढ़ा नानुपश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः**[१०] अर्थात् अनुसंधान के लिए मूर्ख व्यक्ति अनाधिकारी तथा ज्ञानवान व्यक्ति अधिकारी होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उस विषय से संबन्धित विषय विशेषज्ञ ही अनुसंधान करने का अधिकारी होता है।

• **समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः**[११] अर्थात् जो व्यक्ति सुख-दुख में, स्वर्ण और पत्थर में, लोक में विद्यमान प्रिय-अप्रिय विषय में समान दृष्टि रखता है और वह अरोग्य तथा बुद्धिमान है वह शोधकार्य के लिए उपयुक्त है।

• **ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः बभूविथः**[१२] इस अवधारणा के अनुसार संस्कृत शिक्षा में अनुसंधाता मन्त्रों का साक्षात्कार करने वाले ऋषि और ऋषिकाएँ हुईं।

• **“मन्त्रो वै विचारसर्कीतनम्”**[१३] उक्तकथन के अनुसार ऋषि और ऋषिकाओं के विचारों को मन्त्र कहा। जिसे ऋषि और ऋषिकाओं

ने अपने अन्तः प्रकाश अर्थात् आन्तरिक प्रेरणा अनुसंधान के आधार पर प्रस्तुत किया।

इस प्रकार संस्कृत शिक्षा में अनुसंधाता की संकल्पना दिखाई देती है।

४. अनुसंधान का संस्कृत साहित्य क्षेत्र में विकासक्रम

संस्कृत शिक्षा के साहित्य में अनुसंधान का विषय अपने आपमें इतनी गहनता और विशालता रखता है कि यह ही अनुसंधान का विषय हो सकता है इसलिए इस शोधपत्र में प्रस्तुत उपविषय का सार प्रस्तुत किया जा रहा है।

वैदिक एवं उत्तर वैदिक

वैदिक काल से यदि उत्तर वैदिक काल की ओर बढ़ें तो अनुसंधान का विशिष्ट रूप दिखाई देता है।

- **वेद त्रय** (ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद) यह तीनों वेद प्राचीन काल के प्रामाणिक अनुसंधान रहे।

- **अथर्ववेद** यह अनुसंधान भी एक अनोखा तत्कालीन उदाहरण रहा। जिसमें महर्षि "अंगिरा" ने अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से जन सामान्य को यह नवीन दृष्टि प्रदान की।

- **ब्राह्मण ग्रन्थ** यहाँ पर अनुसंधान का एक विस्तृत रूप दिखाई देता है, जिसमें आचार्यों ने प्रत्येक वेद पर और उनके एक-एक मंत्र पर अपने विचार खुलकर अभिव्यक्त किए।

- **आरण्यक ग्रन्थ** यह अनुसंधान की गहनतम पराकाष्ठा रही है, जिसमें महर्षि ने आरण्यों में रहकर अनुसंधान की नई प्रणाली शुरू की।

- **उपनिषद ग्रन्थ** इन ग्रन्थों में अनुसंधान की सरलतम अवधारणा तत्कालीन समाज के समक्ष प्रस्तुत हुई। यदि विचारों को सरलतम बना दिया जाए तो जन सामान्य को गहनतम विषयों का अध्ययन करने में सुविधा रहेगी।

• **वेदांग ग्रन्थ** यह एक ऐसी परम्परा आई, जिसने अनुसंधान की परिभाषा ही बदल दी। अब तक पूरे विषय पर अपने विचार रखते हुए सिद्धान्त बनाते थे, परन्तु इस विद्या ने कुछ मूलभूत विषयों को लिया, जिससे मूल ग्रन्थ को समझने का मौका मिला।

लौकिक संस्कृत

इस परम्परा में अनुसंधान ने अपना रुख बदला और एक ऐसी विद्या का उद्‌भव हुआ, जो तत्कालिक समाज की विचारधारा से ओतप्रोत थी, जिसके द्वारा अनुसंधाता अपने शोध की दिशा परिवर्तित करते हुए मन्त्र से काव्य तक के रास्ते से होकर कवि के रूप में विख्यात हुए।

• **आदिकाव्य रामायण** यह ऐसा अनुसंधान रहा, जिसने तत्कालीन समाज के समक्ष आदर्श सामाजिक व्यवस्था प्रस्तुत की और कालान्तर में यह अनेक काव्यों का उपजीव्य काव्य बना।

• **महाभारत** इस अनुसंधान के द्वारा साम-दाम-दण्ड-भेद चारां नीतियों क बड़ा ही रोचक ढंग से वर्णन किया हैं और कालान्तर में विभिन्न काव्यों के द्वारा इसका विश्लेषणात्मक वर्णन हुआ।

• **व्याख्यात्मकता** यह अनुसंधान की वह परम्परा बनी, जिससे अनेक काव्यों एवं ग्रन्थों पर व्याख्यात्मक सिद्धान्तों के विचारों की रूपरेखा बनी।

• **टीकात्मकता** इस अनुसंधान परम्परा में अनेक भाष्यों पर कार्य हुआ।

इस तरह परम्परागत संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान का स्वरूप दृष्टिगत होता है, जिसके परिणामस्वरूप हम कह सकते हैं कि संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान की अवधारणा नवीन नहीं है।

५. आधुनिक संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान की आवश्यकता

वैसे तो संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान प्राचीन काल से अपने गहनतम विस्तृत स्वरूप के साथ अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त था और इसीलिए तत्कालिक भारतवर्ष विश्वगुरु के रूप में विख्यात था तो यह

अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि हम बात वर्तमान समय की करते हैं तो संस्कृत शिक्षा की स्थिति बहुत खराब है। ऐसे में संस्कृत में अनुसंधान के विषय पर कुछ भी कहना बेमानी होगी। आज इसी चिन्तात्मक विषय को ध्यान में रखते हुए संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान को एक नई राह प्रशस्त करानी होगी, जिसके द्वारा संस्कृत शिक्षा को नया आयाम प्राप्त हो। हमें हमारे समक्ष प्रस्तुत समस्याओं पर अनुसंधान करके उनका निवारण करना होगा।

• हमारे देश में भाषाओं की विभिन्नता के कारण भी संस्कृत शिक्षा का ह्रास हुआ है, किन्तु बहुभाषिकता के अध्ययन से संज्ञानात्मकता, सामाजिक सहिष्णुता, चिन्तन शक्ति और बौद्धिकोपलब्धि का स्तर बढ़ता है। यह सर्वविदित है। राष्ट्रीयपाठचर्या रूपरेखा २००५ में इस विषय पर कहा गया कि बहुभाषिकता सामाजिक स्तर पर तथा राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा साधन है, जिसकी अन्य राष्ट्रीय संसाधनों के साथ तुलना कर सकते हैं। अब प्रश्न यह है कि इस बहुभाषिकता रूपी अवसर का लाभ संस्कृत शिक्षा में कैसे लिया जा सकता है?

• भाषाविज्ञान के द्वारा यह तो सिद्ध हो चुका है कि संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है, लेकिन संस्कृत का ह्रास हो रहा है। इस समस्या से निदान पाने के लिए हमें अनुसंधान के द्वारा ऐसी नवीन संस्कृत शिक्षा की संकल्पना स्थापित करनी होगी, जो राज्यों की स्थानीय भाषा के अत्यधिक समीप हो।

• विद्यालयों में पढ़ाने वाले अध्यापकगण, जो संस्कृत शिक्षण में आने वाली समस्याओं का सामना करते हैं, वह तो अनुसंधान कर नहीं पाते हैं। इसके अलावा जो अनुसंधान करते हैं, वे उन समस्याओं से रूबरू नहीं हो पाते हैं। इस विसंगति के निवारण हेतु भी अनुसंधान आवश्यक है।

• यदि हम आज के समय को देखें तो हम पायेंगे कि पूरे विश्व में अन्तर्जाल के द्वारा शिक्षा की संकल्पना का विस्तार हुआ है और इसके द्वारा ही संस्कृत शिक्षा का प्रसार हो सकता है इसलिए E-class,

E-teacher, E-slaybus के निर्माण सम्बद्ध कार्य संस्कृत अनुसंधान में अनिवार्य रूप से करना चाहिए।

आज संस्कृत विश्वविद्यालयों, पाठशालाओं में साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन आदि विषयों का अध्यापन अत्यधिक हो रहा है और संस्कृत शिक्षा में उद्योगमूलक विषय दूर हो गए हैं। अब ऐसे अनुसंधानों की आवश्यकता है, जिसके द्वारा संस्कृत शिक्षा में प्राचीन विज्ञान, प्राचीन गणित, प्राचीन प्रबन्धन, प्राचीन चिकित्सा का समावेश हो सके।

यह सत्य है कि अनुसंधान के कारण ही संस्कृत शिक्षा का पूरे विश्व लोहा माना जाता था। आज भी संस्कृत शिक्षा के उन्नयन में नवीन अनुसंधानों की महत्त्वपूर्णता को झुठलाया नहीं जा सकता है। इसलिए कह सकते हैं कि संस्कृत शिक्षा का साहित्य यदि समृद्ध है तो वह अनुसंधान की ही देन है। संस्कृत शिक्षा के विकासक्रम में अनुसंधान का व्यवस्थित रूप दिखाई देता है। इस तरह संस्कृत शिक्षा में अनुसंधान ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिसके कारण संस्कृत शिक्षा प्रबुद्ध रही है और आगे भी रहेगी।

संदर्भ :

१. छन्दोग्योपनिषद् – ६/१४/२
२. मालविकाग्निमित्रम् १/१६
३. निरुक्त २/१/४
४. रघुवंश महाकाव्य – ५/२०
५. मनुस्मृति १२.१०६
६. तेजोबिन्दूपनिषद् १.४०
७. नादबिन्दूपनिषद् ४१
८. कुमारसम्भवम् १.२१
९. वृहदारण्यकोपनिषद्
१०. भगवद् गीता १५.२०
११. भगवद् गीता १४.२४.२५
१२. शतपथ ब्राह्मण
१३. गोपद ब्राह्मण

संदर्भ सूची :

१. झा, डॉ. नागेंद्र, वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति, वेंकटेश प्रकाशन, नई दिल्ली।

२. तिवारी, नीलाभ, संस्कृतशिक्षाऽनुसंधाने विषयाणां प्राथमिकता, शास्त्रमीमांसा, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् भोपाल, प्रष्ठ संख्या ९१
३. पाण्डेय, प्रोफेसर रमेश कुमार, अनुसंधानं नाम...., शोधविद्याविज्ञानम्, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली।
४. मिश्र, डॉ. भास्कर, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।
५. शास्त्री, डॉ. अमीर चंद, अनुसंधानसूत्रम्, शोधविद्याविज्ञानम्, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली।

संस्कृत शिक्षा का प्रसार, विकास एवं चुनौतियाँ

राकेश गौतम
विद्यावारिधि (शिक्षाशास्त्र)
श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली-16

प्रस्तावना-

"भारतस्य प्रतिष्ठिते द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा" भारत का अस्तित्व है तो वह केवल संस्कृत तथा संस्कृति पर। यदि देखा जाये तो संस्कृत शिक्षा में दो धारायें प्रवाहित है एक तो परम्परागत शास्त्रादि पद्धति तथा दूसरी आधुनिक पद्धति।

समय तथा स्थिति के अनुसार ये दोनों ही पद्धतियॉ उपयोगी है यदि संस्कृत को एक भाषा तक ही सीमित रख दिया जाये तो निश्चित ही हमारी शास्त्र पद्धति का ह्रास होगा, यदि हम शास्त्र पद्धति को आधुनिक के साथ समायोजन नहीं करेंगे तो निश्चित ही पूर्वस्थान पर ही स्थित होंगे।

संस्कृत वाङ्मय में अगाध ज्ञान विद्यमान है तथा यह ज्ञान भारतीय मनीषियों के द्वारा आज भी सुरक्षित है वे संस्कृत रूपी धरोहर को आज भी सजोये हुये है। संस्कृत भाषा के प्रति अनेक विद्वानों ने अपने-अपने विचार रखे जो संस्कृत के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

महात्मा गॉधी-संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसमें भारतीय संस्कृति का चिरसंचित ज्ञान भरा है। बिना संस्कृत पढे कोई अपने को पूर्ण भारतीय और विद्वान नहीं बना सकता।[1]

डॉ सम्पूर्णानन्द-जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत भाषा का

---

1. "आत्मकथा" (महात्मागॉधी) पृष्ठ संख्या, 27

समय बीत गया वे गलती करते हैं। संस्कृत न केवल भारत में बल्कि समस्त संसार में व्याप्त है। जो सन्देश इस भाषा में है वे अन्यत्र नही है। संस्कृत में बहुमूल्य विभूतियाँ पड़ी हुयी हैं। जो यह लाञ्छन लगाते है कि संस्कृत मृतभाषा है वे गलत सोचते हैं। संस्कृत जीवित ही नही बल्कि मुर्दो के लिये संजीवनी है। हम चाहते हैं कि संसार में काफी लोग संस्कृत जानने वाले हो।[2]

यदि देखा जाये कि संस्कृत के प्रसार तथा विकास में अनेक सरकारी संस्थायें गैर-सरकारी संस्थायें मुख्य भूमिका निभा रही हैं जब इक्कीसवीं सदी में भौतिक ज्ञान का महत्व होने के कारण मूल्यों का ह्रास हो रहा है जिससे शिक्षा जगत् में खलबली मची हुयी है उस स्थिति में **"विश्वविद्यालय अनुदान आयोग"** (यू.जी.सी.) का संस्कृत विश्वविद्यालयों की ओर ध्यान केन्द्रित हो गया है जो भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों को सुरक्षित रखने में सक्षम है।

संस्कृत का प्रचार एवं विकास-

उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी की अपेक्षा इक्कीसवीं सदी में संस्कृत का प्रसार एवं विकास राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी हुआ है जिसमें भारत के लगभग सत्रह संस्कृत विश्वविद्यालय-

-सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

-राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली

-राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति

-श्री ला. ब. शा. राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

-महर्षि सांदीपनि वैदिक संस्थान, उज्जैन

-गुरुकुल कॉगड़ी संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार

-कामेश्वर सिंह दरभंगा विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

-सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, सौराष्ट्र

---

2. "संसार" 2 नवम्बर 1948

कुछ विश्वविद्यालय अन्य विषयों के साथ संस्कृत को प्रधानता प्रदान करते हैं जो निम्न है-

-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

-दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

-जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

-महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

यदि देखा जाये तो आधुनिक जनसामान्य तक संस्कृत का प्रचार तथा विकास करने में "संस्कृत भारती" की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जो निरन्तर प्रयासरत है।

"इसके अलावा संस्कृत के विकास में दूसरे विश्वविद्यालय भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है अभी इसी का उदाहरण-अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ है जहॉ इस भाषा को 60% मुस्लिम छात्र सीख रहे हैं। विश्वविद्यालय के संस्थापक सर सैयद अहमद खॉ ने "मोहम्डन एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना के समय जिन भाषाओं को अत्यधिक महत्व दिया था उनमें फारसी, अरबी के साथ संस्कृत भी शामिल थी क्योंकि सर सैयद इस भाषा के बृहद् इतिहास एवं उपयोगिता से वाकिफ थे। सर सैयद ने जहॉ अरबी फारसी विद्यार्थियों क़े लिए एक रुपये मासिक वजीफा घोषित किया था वहीं संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए दो रुपये का। शायद उन्हें अनुमान था कि इस प्राचीनतम भाषा को जाने बगैर न इतिहास से भलीभॉंति परिचित हुआ जा सकता है न ही विज्ञान से।

संस्कृत विभाग के कुल छात्रों में 60% मुस्लिम है व 40% अन्य इस प्रकार विश्वविद्यालय में संस्कृत की उपयोगिता समय के साथ बढ़ी है, घटी नहीं। तिबिया कॉलेज में जिस प्रकार अरबीफारसी के ज्ञान के बिना पुराने नुस्खों को कोई चिकित्सक नही पढ़ सकता उसी प्रकार आयुर्वेद में चरकसंहिता व सुश्रुत संहिता को जानने के लिए संस्कृत पहले सीखना होगा। आई.ए.एस. व पी.सी.एस. प्रतियोगिता में संस्कृत विषय लेने वालों को गणित व भौतिक की तरह पूर्णांक मिलते है।

रेडियो, टी.वी. में समाचार वाचन, या पुरातत्व विभाग, संग्रहालयों व पुस्तकालयों में वाचक अनुवादक से लेकर अनेक प्रकार के रोजगार संस्कृत के जानकारों के लिये मौजूद है तथा विश्वविद्यालय में 2007-2008 सं संस्कृत में बी.एड. प्रारम्भ हो चुका है।"[3]

"संस्कृत वाङ्मय का विज्ञान के क्षेत्र में तीव्र गति से विकास हो रहा है इसका स्पष्ट उदाहरण गत दिनों दौरे पर आये अरविन्द फाउन्डेशन (इण्डियन कल्चर)"पाण्डिचेरी के निर्देशक सम्पदानन्द मि्श्रा ने जागरण से बातचीत में यह रहस्योद्घाटन किया। उन्होंने बताया कि नासा के वैज्ञानिक रिक ब्रिग्स ने 1985 में भारत से संस्कृत के एक हजार प्रकाण्ड विद्वानों को बुलाया था उन्हें नासा में नौकरी का प्रस्ताव दिया था। उन्होंने बताया कि संस्कृत ऐसी प्राकृतिक भाषा है जिसमें सूत्र के रूप में कम्प्यूर के जरीये कोई भी सन्देश कम से कम शब्दों में भेजा जा सकता है। विदेशी उपयोग में अपनी भाषा की मदद देने से उन विद्वानों ने इन्कार कर दिया था किन्तु बाद में संस्कृत के महत्व समझते हुये मदद की स्वीकृति प्रदान की।[4]

संस्कृत के अन्य वैज्ञानिक पहलू समझते हुये अमेरिका ने वहॉं नर्सरी क्लास से ही बच्चों को संस्कृत की शिक्षा शुरू कर दी है नासा के मिशन संस्कृत की पुष्टि उसकी वेबसाइट भी करती है उसमें स्पष्ट लिखा है कि 20 साल से नासा संस्कृत पर काफी पैसा और मेहनत कर चुकी है साथ ही इसके कम्प्यूटर प्रयोग के लिये सर्वश्रेष्ठ भाषा का भी उल्लेख है वैज्ञानिकों का मानना है कि संस्कृत पढने से गणित और विज्ञान की शिक्षा में आसानी होती है। इसके पढने से मन में एकाग्रता आती है वर्णमाला भी वैज्ञानिक है इसके उच्चारण मात्र से ही गले का स्वर स्पष्ट होता है कल्पना शक्ति का बढावा मिलता है। मिश्रा ने बताया कि कॉल सेण्टर में कार्यरत युवक-युवती भी संस्कृत का उच्चारण करके अपनी वाणी को शुद्ध कर रहे हैं। न्यूज रीडर फिल्म और थिएटर के आर्टिस्ट के लिये यह उपचार साबित हो रहा है।

---

3. "दैनिक हिन्दुस्तान" 26 अगस्त 2008
4. "दैनिक जागरण" 25 मार्च 2012

संस्कृत विद्वज्जनों के प्रयास तथा केन्द्र सरकार के सहयोग से डॉ सत्यव्रत शास्त्री महोदय की अध्यक्षता में 31-12-2013 को संस्कृत आयोग का गठन किया गया जिसका उद्‌देश्य संस्कृत अध्ययन व्यवस्था में सुधार करना तथा संस्कृत वाङ्मय की सुरक्षा करना।[5]

संस्कृत के विकास के लिये राज्यसरकारों ने प्रायः संस्कृत अकादमी का गठन किया जो अपनी तरफ से संस्कृत अध्यापकों की नियुक्ति संस्कृत की प्राचीन एवं नवीन पुस्तकों का प्रकाशन तथा संस्कृत का विकास तथा प्रसार करने के लिये सेमिनार तथा कार्यशालाओं का आयोजन करती है जो अभी 23-25 अगस्ट को विज्ञान भवन में अयोजित किया गया जिसमें निमित्त देशों के संस्कृतज्ञों ने भाग लिया तथा विदेशों में चल रहे पाठ्यक्रमों के बारे विस्तृत चर्चा हुयी थी। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत भारतवर्ष तक ही सीमित न होकर सम्पूर्ण विश्व में अपना प्रभुत्व स्थापित कर रही है।

इन सब प्रयासों के पश्चात् क्या लगता है कि संस्कृत वह स्थान प्राप्त कर सकेगी जो पूर्वकाल में प्राप्त था? यह प्रश्न आज भी चिन्तनीय है क्योंकि कहा गया कि "जिस कार्य में समस्या उत्पन्न न हो वह कार्य सफलता की प्राप्ति नही कर सकता है" इस वाक्य का ध्यान में रखते हुये हमें प्रयास करना चाहिये क्योंकि हम उस दौर में गुजर रहे हैं जहॉ हमें शास्त्र परम्परा की भी रक्षा करनी है तथा अन्य विषयों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में हमें सक्षम होना है।

समस्या-आधुनिक समय में प्रत्येक व्यक्ति व्यावयायिक हो गया है तथा प्रत्येक कार्य को व्यावसायिक दृष्टि से देखता है इस परिस्थिति में संस्कृत की दयनीय स्थिति है। जिस प्रकार विज्ञान का छात्र समाज के लिये आविष्कार करके कुछ प्रदान करते हैं उसी प्रकार संस्कृत के विद्वान् के सामने चुनौती होती है कि उसने समाज को क्या दिया इस प्रकार संस्कृत के विद्वानों के सामने अनेक समस्या है जो इस प्रकार है-

– संस्कृतज्ञों की रूढिवादिता।

---

5. "दैनिक जागरण" 31 दिसम्बर 2013

–संस्कृत भाषा के प्रति धर्मपरक दृष्टि।

–संस्कृत के द्वारा व्यवसाय का अभाव।

–केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय का अभाव।

–माध्यमिक संस्कृत विद्यालयों की दयनीय स्थिति।

–सरकार के द्वारा संस्कृत के लिये विशेष प्रावधान का अभाव।

इन सब समस्याओं से निपटने के लिए हमें तत्पर रहना होगा क्योंकि हमारी भारतीय संस्कृति की रक्षा केवल संस्कृत शास्त्र ही कर सकते हैं संस्कृत के सबसे बड़े शत्रु वह हैं जो संस्कृत को भाषा तक सीमित कर दिये है। हमारी सोच केवल भौतिक ज्ञान तक ही सीमित कर दिये हैं हमारी सोच केवल भौतिक ज्ञान तक ही सीमित नही है हमारे विचार भौतिक से ऊपर आध्यात्मिक है जहाँ **"आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च"**[6] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत इक्कीसवीं सदी में भौतिकज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान में विश्वगुरु होगा तथा उस समय मनु का वाक्य अवश्य सिद्ध होगा।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥[7]

6. "कठोपनिषद्" वल्ली-2
7. "मनुस्मृति"1-20

तिङन्त प्रक्रियाशिक्षण में श्रीमती पुष्पा दीक्षित की नवीन दृष्टि

आसुतोष सती,
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पाणिनीय व्याकरण के तीन पक्ष हैं। प्रक्रिया, परिष्कारा और दर्शन। प्रक्रिया से हमारा अभिप्राय प्रकृति प्रत्यय विभाग पुरस्सर आगम, आदेश, अतिदेश, वर्णविकार, वर्णविपर्यय करने के बाद उपलब्ध साधु शब्द राशि के ज्ञान से है।

पाणिनीय प्रक्रियाओं में तिङन्त प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका महत्त्व वाक्य निर्माण में देखा जा सकता है। प्रत्येक वाक्य में तिङन्त (क्रियापद) की आकाङ्क्षा होती है। इस दृष्टि से भी इसका ज्ञान अपरिहार्य है।[1]

पारम्परिक प्रक्रियाग्रन्थों में तिङन्त शिक्षण की विधि दश गणों तथा ण्यन्तादि प्रकरणों में उपलब्ध होती है। जिनमें एक-एक धातु से दश-दश लकारों की सिद्धियाँ की जाती हैं। जो अधिक श्रमसाध्य और समय साध्य है। इस प्रकार के शिक्षण में अध्येता प्रायः कठिनता का अनुभव करते हैं। यहाँ यह भी विचारणीय है कि वर्तमान में छात्र कम समय में व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर काव्यादि लक्ष्य ग्रन्थों को पढ़ना चाहते हैं।

श्रीमती पुष्पा दीक्षित ने शीघ्रता से अधिगम के लिये तिङन्त प्रक्रिया को खण्ड-खण्डशः विभाजित करके नवीन दृष्टि उद्घाटित की। जो तिङन्त शिक्षण को सरल बनाती है। साथ ही तिङन्त के सन्दर्भ में नवीन दृष्टि विकसित होती है। जिसका परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा

1. एक तिङ् वाक्यम्

रहा है।

- इन्होंने धातुओं का प्रक्रियानुसार वर्गीकरण किया।
- धातुपाठ को सार्वधातुक संज्ञक प्रत्ययों के लिये गणाधारित व्यवस्थित किया।
- आर्धधातुक संज्ञक प्रत्ययों के लिये धातुपाठ को गणरहित व्यवस्थित किया।
- प्रत्यय निर्माण की विधि को अलग से व्याख्यायित किया।
- परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपदी धातुओं का एक साथ पाठ किया।
- सार्वधातुक व आर्धधातुक सम्बन्धी प्रक्रिया का पृथक-पृथक प्रतिपादन किया।
- सार्वधातुक प्रत्ययों को पित् अपित् में विभाजित किया। क्योंकि अपित् सार्वधातुक ङित्वत् होता है। अत: अपित् प्रत्यय परे रहते गुण-वृद्धि नहीं होगी; सम्प्रसारणी धातुओं को सम्प्रसारण होगा, अनिदित धातुओं के उपधा नकार का लोप आदि कार्यों की प्राप्ति होगी। जो पित् प्रत्यय परे होने पर नहीं होगी।
- आर्धधातुक प्रत्ययों को कित्-ङित्,णित-ञित् तथा शेष रूप में विभाजित किया। यह विभाजन अनुबन्ध आधारित अङ्गकार्य को सरल बनाता है।
- अङ्गकार्य को उत्सर्ग अपवाद शैली में व्याख्यायित किया।
- अङ्गकार्य के लिये उपाङ्कार्य पर विशेष बल दिया। उपाङ्कार्य से हमारा अभिप्राय धात्वादेश, अतिदेश, इडागम, से है।
- समस्त धातुओं से प्रत्येक लकार व सनादि द्वादश प्रत्ययों की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप में व्याख्यायित किया।

धातुपाठ का वर्गीकरण

श्रीमती दीक्षित ने धातुपाठ को तेरह वर्गों में विभाजित किया। जो अङ्गकार्य के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह वर्गीकरण तदन्त विधि पर आधारित है।

1. आकारान्त, 2. इकारान्त, 3. ईकारान्त, 4. उकारान्त, 5. ऊकारान्त, 6. ऋकारान्त, 7. ॠकारान्त, 8. एजन्त, 9. अदुपध, 10. इदुपध, 11. उदुपध, 12. ऋदुपध, 13. शेष।

विचारणीय है, कि पाणिन्यष्टक में प्रत्ययविधान, धात्वादेश, अङ्गकार्य, इडागम, वर्णविकार, आगम आदि का विधान करने के लिये प्राय: तदन्तविधि का आश्रय लिया गया है।यथा–आकारान्त- आत श्चोपसर्गे[2], आदेच् उपदेशेऽशिति[3]। श्राभ्यस्तयोरात:[4]। यम-रम-नमातां सक्च[5]। इस दृष्टि से इन्होंने तदन्त विधि को आधार बनाकर धातुपाठ को तेरह वर्गों में वर्गीकृत किया। यह भी उल्लेखनीय है कि अनेक स्थलों पर प्रतिपद विधान भी देखने को मिलता है। यथा- पाघ्राध्माधेट्दृश: श[6]। पुन: तेरह वर्गों में विभाजित इस धातुपाठ को इन्होंने दो खण्डों में विभाजित किया।

1. सार्वधातुक संज्ञक प्रत्ययों के लिये धातुपाठ

इस धातुपाठ में धातुओं को गणानुसार व्यवस्थित किया। गणाधारित धातुपाठ का प्रमुख प्रयोजन विकरण विधान है। सूत्रपाठ में सार्वधातुक संज्ञक प्रत्यय परे रहते गण विकरणों का विधान मिलता है। गणाधारित इस धातुपाठ को दो गण समूहों में विभाजित किया।

प्रथम गण समूह– इस गण समूह में भ्वादि-दिवादि-तुदादि-चुरादि का पाठ किया क्योंकि इन गणों में अङ्ग अदन्त ही होता है। यथा–पा+शप्=पिब, अस्+श्यन्=अस्य, तुद्+श=तुद, चुर्+शप्=चोरय। सूत्रपाठ

---

2. अष्टा. 3.1.136
3. अष्टा. 6.1.45
4. अष्टा. 6.4.112
5. अष्टा. 7.2.73
6. अष्टा. 3.1.137

में अदन्त अङ्ग को सार्वधातुक परे रहते जिन कार्यों का विधान मिलता है, उनकी प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से की जा सके। जैसे–अतो दीर्घो यञि[7]। अतो गुणे[8]।

1.द्वितीय गण समूह– इस गण समूह में स्वादि-तनादि-क्रयादि-अदादि-जुहोत्यादि-रुधादि गणों का पाठ किया, क्योंकि इन गणों में अङ्ग अनदन्त ही होता है। यथा- चि+श्नु=चिनु, तन्+उ=तनु, पू+यना=पुना, ख्या+शप्=ख्या, हु+शप्=जुहु। यहाँ यह विचारणीय है कि आकारान्त, इकारान्त आदि अङ्गों कोो अलग-अलग कार्य होते हैं। जिनके ज्ञान के लिये अङ्गकार्य का ज्ञान आवश्यक है।

2. आर्धधातुक संज्ञक प्रत्ययों के लिये धातुपाठ

यह धातुपाठ गण रहित है। 1943 धातुओं का सम्मिलित पाठ है। यह बारह वर्गों में विभक्त है। ध्यातव्य है कि एजन्त धातुओं को अशित् प्रत्यय परे रहते आत्वादेश होता है। और धातु से विहित शित् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है।

प्रत्यय निर्माण

इनका मानना है कि अष्टाध्यायी के तीसरे अध्याय के चतुर्थ पाद में महर्षि पाणिनि ने एककालावच्छिन्न प्रत्यय सम्बन्धी कार्यों का विधान किया है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि पाणिनि को प्रत्यय सम्बन्धी कार्य एक साथ करना अभीष्ट है। इस दृष्टि से इन्होंने प्रत्येक लकार में प्रत्यय निर्माण का अलग खण्ड बनाया। यथा–

लट्लकार परस्मै. आत्मने लुट् लकार– परस्मै. आत्मने
ति, तः, अन्ति ते, इते, अन्ते ता, तारौ, तारः ता, क्र तारौ तारः
सि, ध, थ से, इधे, ध्वे तासि तास्थः, तास्थ तारो तासाथे, ताध्वे
मि, व, मः ए, पहे, महे तास्मि, तास्व, तास्मः ताहे, तारवहे तास्मेह

---

7. अष्टा. 7.3.101
8. अष्टा. 6.1.96

इसी प्रकार सार्वधातुक प्रत्येक लकारों में अदन्त व अनदन्त अङ्गों में भिन्न-भिन्न प्रत्यय बनेंगे तथा अर्धधातुक प्रत्येक लकारों में एक प्रकार के प्रत्यय बनेंगे।

लकार व्यवस्था

लट्-लोट-लङ्-विधिलिङ् लकारों की प्रक्रिया को एक साथ पढ़ाने पर बल दिया। क्योंकि ये चारों लकार से विधीयमान तिङ् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है। इन चार लकारों में विधीयमान तिङ् प्रत्ययों के अलावा सारे लकारों में तिङ् प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा होती है।

लुट्-लृट-लृङ् लकार की प्रक्रिया प्रायः समान है। इनका एक वर्ग है। केवल ऋकारान्त और हन् धातु को लृट-लृङ् लकार में इडागम अधिक होता है।

लिट्, आशीर्लिङ् लकार की प्रक्रिया अपेक्षाकृत जटिल है। जिसको इन्होंने स्वतन्त्र रूप में व्याख्यायित किया।

लुङ् लकार को क्स, चङ्, अङ्, सिच् और चिण् विकरणों को आधार बनाकर प्रत्येक की प्रक्रिया को पृथक-पृथक प्रतिपादित किया।

इनका मानना है कि महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में प्रत्येक कार्य के लिये प्रकरणों में सूत्रों की रचना की है। यथा–सम्प्रसारण का विधान 6.1.13 से 6.1.44 तक ही मिलता है। इसी प्रकार सारे अभ्यास कार्य 7.4 में व्यवस्थित किये हैं, आदि। एक एक कार्य के लिये एक एक प्रकरण का विधान ही पाणिनीय विधि है।[10] अतः एक खण्ड में अङ्ग तैयार किया जाय, अङ्ग कार्य के लिये उपाङ्कार्य (धात्वादेश, अतिदेश, आगम, इडागम, अभ्यासकार्य) पर पृथक-पृथक विचार किया जाय। दूसरे खण्ड में प्रतयय तैयार किये जाएँ और अन्त में दोनों को जोड़ने का कार्य किया जाय जिसको नव्यसिद्धान्तकौमुदी अथवा अष्टाध्यायी सहज बोध में देखा जा सकता है। इस तरह के विभाजन से–

---

9 दृष्टव्य प्रक्रियानुसाररिपाणिनीयधातुपाठः, पृ.सं. 10-12, 135-16, 241-244

10 पाणिनीयप्रक्रियाविज्ञानम् पृ.सं. 35

* तिङन्त प्रक्रिया के अधिगम में सरलता होती है।

* प्रत्येक कार्य के लिये स्पष्ट दृष्टि विकसित होती है।

* धातुओं का प्रक्रियात्मक स्वरूप पता चलता है।

* पाणिनीय सूत्ररचना का विज्ञान स्पष्ट होता है।

* किसी भी धातु से प्रत्येक लकार में रूप सिद्धि की जा सकती है।

* क्रियापदों के ज्ञान व प्रयोग में सरलता होती है।

पाणिनीय प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में श्रीमती पुष्पा दीक्षित का यह नवीन चिन्तन है। जो आधुनिक अध्यापन पर आधारित है। जिससे तिङन्त प्रक्रिया का बहुत कम समय में अधिगम किया जा सकता है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

अष्टाध्यायीसूत्रपाठः पाणिनि, सम्पा. पुष्पादीक्षित, ज्ञानभारती पब्लिकेशन्स, शक्तिनगर, दिल्ली।

दीक्षित, पुष्पा–

1. अष्टाध्यायी सहजबोध, ज्ञानभारती पब्लिकेशन्स, शक्तिनगर, दिल्ली।
2. नव्यसिद्धान्तकौमुदी, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली।
3. प्रक्रियानुसारी पाणिनीयधातुपाठः, संस्कृतभारती, दिल्ली।
4. "पाणिनीयप्रक्रियाविज्ञानम्", पण्डितपरिषदव्याख्यानमाला, लोकप्रिय-साहित्यग्रन्थमाला, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान, दिल्ली।

संस्कृत शिक्षा एवं शिक्षण शास्त्र

रचना सिंह
शिक्षाचार्य छात्रा
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ
नई दिल्ली - 110016

देववाणी को ही संस्कृत भाषा कहा जाता है। यह सर्वविदित है कि सभी भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा ही है। इसको हम कालिदास के शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं -

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थाप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥

किसी भी भाषा का आदि साहित्य हमें कविता के रूप में मिलता है। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, तमिल, तेलगू आदि भाषा के साहित्य के देखने से इस कथन की सत्यता प्रभावित हो जाती है। कविता से सौन्दर्यानुभूति होती है और मनुष्य का हृदय सदा से सौन्दर्य पर रीझता चला आया है। इसलिए जितना अधिक कविता हृदय को स्पर्श करती है उतना अधिक साहित्य की अन्य विधाएँ नहीं पाती हैं। कविता कवि के हृदय से निकलती हैं और पाठक के हृदय तक सीधी पहुँचती है। जब किसी घटना का या विचार पर कवि का हृदय रसातिरेक से विभोर हो उठता है। उस समय रस कविता के रूप में फूट पड़ता है। ऐसी ही घटना तो आदि कवि वाल्मीकि के समक्ष घटी थी। कामातुर की क्या दशा होती है, यह सभी जानते हैं। क्रौञ्च को मारने की चेष्टा क्रौञ्च बाज से बचने का प्रयत्न कर रहा था और उसकी दशा को देखकर उसकी स्त्री करुणाजनक विलाप कर रही थी महर्षि यह सब अपनी आँखों से देख रहे थे। करुणातिरेक से ऋषिवर के मुख से

अचानक निकल पड़ा।

मा निषाद! प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समा।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।

इसी प्रकार की रसानुभूति से कविता का जन्म होता है। इसी आशय का विचार प्रकट करते हुए 'ध्वन्यालोक' में ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्य लिखते हैं।

काव्यस्तात्मा स एवार्थः स चाविकवेः पुरा।

क्रौञ्चद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।।

उपर्युक्त श्लोक में ध्वनिकार स्पष्ट करते हैं कि क्रौञ्च के जोड़े के भावी वियोग से आदि कवि के हृदय में उत्पन्न शोक ही श्लोक के रूप में बाहर आ गया। कवि के हृदय में उत्पन्न रस ही वस्तुतः कविता के रूप में बाहर आता है। विश्वनाथ कविराज ने भी कहा है।

वाक्य रसात्मकं काव्यम्।

अर्थात् रसयुक्त वाक्य ही काव्य है। कविराज के अनुसार काव्य की आत्मा रस है।

इस प्रकार विभिन्न आचार्यों ने कविता के स्वरूप पर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं। किन्तु रीति या संगीत तत्त्व काव्य में केवल सहायक का कार्य करता है। वह बाह्य प्रभाव है न की आत्मा। दंडी, भामह आदि ने अलंकार को काव्य की आत्मा कहा है। अलंकारों से शोभा बढ़ती है। प्रश्न है किसकी? अलंकारों से अलंकार की शोभा कैसे बढ़ेगी? इसके उत्तर में जो कुछ आयेगा वह काव्य होगा और उसका लक्षण अलग से करना होगा।

कविता शिक्षण के सामान्य उद्देश्य - कविता शिक्षण के सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. लय, भाव, गति तथा मति के अनुसार पद्य पाठ करने की योग्यता विद्यार्थी में उत्पन्न करना।

2. छात्रों के हृदयगत भावों का परिष्कार करके उनमें उच्च भावों का विकास तथा वृद्धि करना।

3. कविता में आये शब्दों की योजना के आधार पर दृश्य चित्रों का उद्‌भावन करना।

4. छात्र काव्य सौन्दर्य की अनुभूति कर सके उनमें ऐसी क्षमता उत्पन्न करना।

5. उन्हें कविता की प्रासंगिक उद्‌भावनाओं अन्त:कामनाओं एवं समानार्थक अन्य भाषाओं की कविताओं से परिचित कराना।

6. छात्रों में काव्य के रस तथा भाव सौन्दर्य का आनन्द लेने की क्षमता उत्पन्न करना।

इन विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर छात्रों को कविता का अध्ययन कराना चाहिए।

कविता शिक्षक के लिए कविता का चयन - छात्रोपयोगी कविता का चयन करने हेतु निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

1. कविता शब्द तथा भावों की दृष्टि से छात्रों के आयु के अनुकूल हो।

2. प्रारम्भ में छात्रों के लिए श्रृंगार रस से युक्त नहीं पढ़ाई जानी चाहिए। बालक की ग्रहण शक्ति का सर्वथा ध्यान रखा जाना चाहिए। साथ ही अलंकारों से मुक्त कविता भी न पढ़ायी जाये। सामान्यत: हम छात्रों के लिए वाल्मीकि रामायण, महाभारत, नीतिशतक, चाणक्यनीति, विदुरनीति आदि सरल ग्रन्थों से सरल कविताओं का चयन कर सकते हैं।

3. कविता का सम्बन्ध छात्रों के दैनिक जीवन से अवश्य होना चाहिए। व्यवहारोपयोगी कविताएँ ही छात्रों को प्रारंभ में आकर्षित कर सकेंगी।

4. प्रारंभिक अवस्था में छात्रों की अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा आदि छन्दों की कविताएँ भी पढ़ाई जानी चाहिए।

सामान्यत: कक्षा 6 से 8 तक छात्रों के लिए निम्नलिखित प्रकार की सरल व सुबोध कविताएँ होनी चाहिए-जैसे-

काकचेष्टा .... पञ्चलक्षणः॥

काकः कृष्णः .... पिकः पिकः॥

येषा विद्या .... मृगाश्चरन्ति॥

माध्यमिक स्तर पर - नीति, भक्ति, उत्साह, धैर्य, ज्ञान, कर्म आदि भावों से पूर्ण कविताओं का चयन किया जाना चाहिए। जैसे-

उद्योगिनं पुरुष .... सिद्धयति कोऽत्र दोषः॥

संसारकटु .... सुजनै जनैः॥

उद्योगिनं हि सिध्यन्ति .... प्रविशन्ति न मुखे मृगाः॥

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कक्षा में छात्रों को रसानुभूति की कविताएँ पढ़ाई जानी उपयुक्त रहेंगी। इस स्तर पर छात्रों को संस्कृत साहित्य का प्रारंभिक परिचय देना भी उपयुक्त रहेगा। जैसे -

विललाप स वाष्प-गद्गद् सहजा मप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्त भयोडपी मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु॥
तं गौरवं दुद्ध-गतं चकर्ष भार्यानुराग पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयात् नापि ययौ न तस्यौ तंरस्तरंगेष्विव राजहंसः॥

संस्कृत पद्य शिक्षण के आधुनिक उद्देश्य - संस्कृत पद्य शिक्षण के आधुनिक उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. छात्रों में संस्कृत पद्य को स्मरण करने की उत्कृष्ट अभिलाषा जागृत करना।

2. छात्रों में कविता की गति, लय एवं सस्वर वाचन करने की क्षमता विकसित करना।

3. छात्रों की शब्दभंडार में अभिवृद्धि करना।

4. छात्रों को कविता की रसानुभूति एवं भावानुभूति करने में सक्षम बनाना।

5. छात्रों में सदाचार, सच्चरित्रता, शुचिता एवं निर्मलता की भावना जागृत कर उन्हें आदर्शों के प्रति सचेत करना।

6. कवि जीवन दर्शन से परिचित कराना।

काव्यशिक्षण की विधियाँ - काव्यशिक्षण की विधियाँ निम्नलिखित रूप से जाना जा सकता है-

1. **परम्परागत प्रणाली** - इस प्रणाली में अध्यापक विद्यार्थियों से श्लोक या पद्य पढ़वाकर अर्थ अनुवाद करता है। इस विधि का प्रयोग सभी विद्यालयों में होता है। यह विधि अमनोवैज्ञानिक है। इसमें कविता के सौन्दर्यबोध पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

2. **छन्दानुगत प्रणाली या गीत तथा नाट्य प्रणाली** - इस प्रणाली में कविता को छन्द के अनुसार उचित लय आरोह-अवरोह के अनुसार सस्वर पढ़ा जाता है और याद किया जाता है। इस विधि में बालगीतों का प्रयोग होता है।

3. **भावानुगत प्रणाली** - भावानुगत प्रणाली में लय, स्वर का ध्यान तो रखा जाता है साथ-साथ कविता के भावों को यथास्थान स्पष्ट किया जाता है। इसे अन्वय द्वारा स्पष्ट करते हैं। इसके दो प्रकार हैं -

(क) दण्डान्वय प्रणाली - इसमें श्लोक के अर्थ को हिन्दी भाषा में समझने के बाद उसके अनुसार कर्ता, कर्म एवं क्रिया आदि का पता लगाया जाना ही दण्डान्वय प्रणाली है।

(ख) खण्डान्वय प्रणाली - इसमें अन्वय किया जाता है। इसमें इस प्रकार के छोटे-छोटे प्रश्नों का निर्माण किया जाता है कि उनके उत्तर वा छात्रों से प्राप्त कर सम्पूर्ण कविता का अन्वय हो जाता है। और अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

4. **व्यास प्रणाली** - इसके अन्तर्गत अध्यापक एक व्यास की भाँति कथावाचक बन जाता है और शिक्षण कार्य करता है। व्यास प्रणाली को हम भाष्य प्रणाली भी कहते हैं। वह अध्यापक प्रत्येक शब्द के उसके सही स्थान, माधुरी एवं वाक्य विन्यास पर भी प्रकाश डालता

है। यह उच्च कक्षाओं में उपयोगी है।

5. **तुलना प्रणाली** - इसके अन्तर्गत किन्हीं दो पद्यों को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करके तुलना प्रणाली में अनुसरण किया जाता है।

6. **व्याख्या प्रणाली** - व्याख्या प्रणाली में अध्यापक श्लोक के अर्थ के साथ कवि के जीवन परिचय, भाषा शैली उसका उद्देश्य तथा कविता की भावों को सम्पूर्ण व्याख्या करता जाता है।

7. **समीक्षा प्रणाली** - इस प्रणाली का समस्त कार्य साहित्यालोचन है। समीक्षा पर आधारित है। चूकि यह प्रणाली स्नातक कक्षाओं के लिए उपयोगी है। निम्न व छोटी कक्षाओं में अनुपयुक्त कही जा सकती है।

पद्य पाठों का शिक्षण क्रम - पद्य पाठ तीन प्रकार से है- 1. सूचनात्मक 2. सूक्तिरूप 3. रसात्मक।

कविता शिक्षण के पाठयोजना का प्रारूप - कविता पढ़ाने के लिए कविता शिक्षण का क्रम एवं पाठयोजना की रूपरेखा निम्नलिखित होगी-

1. सामान्य प्रारम्भिक बातें - यथा - दिनांक, कक्षा आदि।
2. सामान्य उद्देश्य
3. विशिष्ट उद्देश्य
4. सामान्य सामग्री
5. पूर्व ज्ञान
6. प्रस्तावना - कविता के प्रस्तावना कतिपय प्रश्नों के द्वारा, कवि का परिचय देकर आदि के द्वारा।
7. उद्देश्य कथन
8. विषयोपस्थापन - (क) पाठ्यसामग्री का उल्लेख (ख) शिक्षक के द्वारा आदर्श वाचन (ग) अनुवाचन (घ) छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन (ङ) बोध प्रश्न

9. स्पष्टीकरण - (क) अन्वय करके (ख) पदच्छेद तथा पदार्थ कथन करके (ग) शिक्षक द्वारा स्पष्टीकरण (घ) भाव विश्लेषणात्मक प्रश्न (ङ) शिक्षक द्वारा कविता का पाठ

10. तुलना - संस्कृत तथा मातृभाषा में सामान्य भाव की कविताओं का पाठ करके उनसे प्रस्तुत कविता की तुलना करना।

11. सस्वर वाचन - शिक्षक तथा छात्रों द्वारा प्रयोग - (क) छात्रों को श्लोक कण्ठस्थ करना (ख) श्लोक का मातृभाषा में भावानुवाद (ग) अन्वय लिखना।

इस प्रकार काव्य का अन्त एवं काव्य का स्वरूप अतिव्यापक एवं अत्यन्त उत्कर्ष वाला है। इसीलिए कविता का सीधा प्रभाव हृदय पर पड़ता है। हृदय की मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है वही कविता है। पद्य शिक्षण के विभिन्न विधियों में से छात्रों के स्तर के आधार पर उपर्युक्त विधि का चुनाव कर पद्य शिक्षण कराया जाना चाहिए। जिससे छात्रों को सरलता से अधिगम हो सके।

सन्दर्भग्रन्थ :

संस्कृत शिक्षण - डॉ. उषा शर्मा, स्वाति पब्लिकेशन्स, जयपुर

रघुवंशम् - कालिदास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी

रामायण - वाल्मीकि, गीता प्रेस, गोरखपुर

श्रीमद्भगवद्गीता - गीता प्रेस, गोरखपुर

संस्कृत शिक्षा का मूल्यांकन

पूनम त्यागी

शिक्षाचार्य (छात्रा)

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली-110016

मूल्यांकन का अर्थ

आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा और जाँच के स्थान पर एक नवीनं पारिभाषिक शब्द मूल्यांकन का प्रयोग किया जाने लगा है। मूल्यांकन द्वारा शिक्षा के विस्तृत उद्देश्यों की प्राप्ति तथा सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण को जाँच का लक्ष्य बनाया गया है। इस तरह मूल्यांकन प्रचलित परीक्षाओं की तुलना में बहुत अधिक व्यापक एवं उद्देश्यपूर्ण है। इस तरह मूल्यांकन की प्रक्रिया एक सतत् प्रयास है, जिसके द्वारा अध्यापक और विद्यार्थी दोनों परिश्रम तथा लाभ की मात्रा का मूल्य आँकते रहते हैं।

संस्कृत शिक्षा में मूल्यांकन का महत्त्व

* शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति
* पाठ्यक्रम में संशोधन
* शिक्षण विधियों की सफलता
* व्यक्तिगत एवं सामूहिक मार्गदर्शन
* वर्गीकरण
* संस्कृत शिक्षण में मौखिक तथा लिखित में होने वाली त्रुटियों की अभिज्ञता
* भविष्य का जीवन स्तर

संस्कृत शिक्षा में निदानात्मक एवं उपचारात्मक मूल्यांकन की भूमिका

निदानात्मक मूल्यांकन

निदान चिकित्सा शास्त्र का शब्द है। जिस प्रकार रोगों के इलाज करने से पूर्व रोगों के लक्षणों को देखकर रोग का निश्चय किया जाता है, उसी प्रकार पढ़ते समय छात्र जो अशुद्धियाँ करते हैं उन्हें दूर करने के लिए शैक्षणिक निदान की आवश्यकता होती है। निदानात्मक परीक्षणों से किसी क्षेत्र विशेष के स्तर का ज्ञान कराकर उस समस्या का पता लगाया जाता है जहाँ पर विषय समझने में छात्र को कोई कठिनाई होती है।

परिभाषा

''भाषा में निदानात्मक परीक्षण वह परीक्षण है जिसके द्वारा अनुसन्धानकर्ता छात्र के भाषागत दोषों को खोजता है जो अपने स्कूल के विषय में सामान्य प्रगति नहीं कर पाते।'' (शोनेल)

उद्देश्य

1. निम्न श्रेणी के अध्यापन एवं अधिगम का निवारण करना।
2. किसी विशिष्ट विषय में उपलब्धि की कमी का पता लगाना।
3. विषय समझने की गुणात्मक तथा संख्यात्मक कठिनाई का पता लगाना।
4. मूल्यांकन का विश्लेषण करना
5. छात्रों का वर्गीकरण करना
6. विशिष्ट गुणों का मूल्यांकन करना

उपचारात्मक मूल्यांकन

अर्थ – छात्रों द्वारा की जाने वाली त्रुटियों के निवारणार्थ समुचित

शिक्षण प्रक्रिया अपनाना ही उपचारात्मक शिक्षण है। शैक्षणिक निदान एवं उपचारात्मक शिक्षण एक ही शिक्षण प्रक्रिया के दो अभिन्न पहलू हैं। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व निरर्थक है। शैक्षणिक निदान ही उपचरात्मक शिक्षण की आधारभूमि प्रस्तुत करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में उपचार शब्द चिकित्सा क्षेत्र से लिया गया है जिसका प्रयोजन ऐसी प्रभावशाली विधियों का निर्माण है जिनके द्वारा प्रशिक्षण देकर सभी प्रकार की त्रुटियों का निराकरण किया जा सके। शैक्षणिक उपचार द्वारा इस बात का प्रयास किया जाता है कि छात्र-छात्राएँ भूतकाल में की गई त्रुटियों की पुनरावृत्ति भविष्य में न करें।

उद्देश्य

1. छात्रों की व्यक्तिगत कठिनाईयों को दूर करना।
2. समय व शक्ति की बचत।
3. पिछड़े बालकों को हीन भावना से बचाना।
4. अपराधी प्रवृत्ति के बालकों का उचित मार्गनिर्देशन।
5. हकलाने, तुतलाने वाले बालकों की समस्या दूर करना।
6. विषय के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
7. व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर पढ़ाना।
8. भाषा के स्तर को उन्नत करना।
9. छात्रों में प्रतिस्पर्धा की भावना भरना।

संस्कृत शिक्षा का पठन एवं लेखन के आधार पर मूल्यांकन

पठन मूल्यांकन में उच्चारण की भूमिका

संस्कृत में शुद्ध उच्चारण का महत्त्व है। शिक्षा नामक वेदांग उच्चारण की विद्या से ही सम्बद्ध है। अन्य भाषाओं में भी उच्चारण को महत्त्वपूर्ण माना गया है, किन्तु शुद्धोच्चारण की जितनी महत्ता संस्कृत में है उतनी अन्य भाषाओं में नहीं है। महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में यहाँ तक लिख दिया है कि 'एको शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च

कामधुग्भवति' अर्थात् एक भी शब्द अच्छी तरह जाना हुआ और अच्छी तरह प्रयोग किया हुआ, इस लोक एवं परलोक में इच्छाओं की पूर्ति करने वाला होता है।

वेदाध्ययन में उच्चारण का विशेष महत्त्व था इसलिए वेदों को गुरु अपने शिष्य को व्यक्तिगत रूप से पढ़ाता था। पाणिनि ने लिखा है-

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा,
मिथ्या प्रयुक्ते न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतो ऽपराधात्॥

अर्थात् स्वरों एवं वर्णों के शुद्ध उच्चारण से रहित मन्त्र अर्थ का अनर्थ कर देता है। इस प्रकार का अशुद्ध मन्त्र यजमान के लिए भी वज्र की भाँति घातक होता है, जिस प्रकार इन्द्र का शत्रु स्वर के मिथ्या प्रयोग के कारण स्वयं मारा गया। यज्ञ में पुरोहितों ने - इन्द्रशर्विवर्द्धस्व' (इन्द्र के शत्रु अर्थात् वृत्रासुर की वृद्धि हो) इन्द्रशत्रु समस्त पद है इसका समास विग्रह दो प्रकार से हो सकता है। एक तो इन्द्र का शत्रु और दूसरा इन्द्र ही हो शत्रु जिसका। प्रथम के अनुसार वृत्रासुर की वृद्धि की कामना है, किन्तु दूसरे के अनुसार इन्द्र की वृद्धि की कामना है।

शुद्ध उच्चारण की महत्ता दर्शाने वाला एक अन्य श्लोक संस्कृत में बहुत प्रचलित है-

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत, सकलं शकलं सकृत्कृत॥

वर्णोच्चारण

वर्णों का उच्चारण किस प्रकार हो, इसके विषय में पाणिनीय शिक्षा में पाणिनि ने कहा है-

व्याघ्री यथाऽहरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोज्येत्॥

पठन के गुणों के आधार पर मूल्यांकन

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठकाः गुणाः॥

अर्थात् अच्छे पठन के निम्नलिखित छः गुण हैं-

1. मधुरता
2. अक्षरों का स्पष्टोच्चारण
3. पदों का उचित विभाजन (अर्थ की दृष्टि से शब्द समूहों का एक सा उच्चारण)
4. सुन्दर और शुद्ध स्वर के साथ उच्चारण
5. धैर्य
6. उचित लय के अनुसार पढ़ना

लेखन मल्यांकन

सुन्दर लेख - मुद्रण यन्त्र के अविष्कार के पूर्व संस्कृत के बड़े बड़े ग्रन्थ हाथ से लिखे जाते थे। सुन्दर लेखन सभी को अच्छा लगता है। सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई सामग्री को बरबस बढ़ने का मन करता है। अतः छात्रों को सुन्दर लिखने की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए।

अनुलिपि - लिखने का अभ्यास कराने के लिए अनुलिपि अच्छा साधन है। मुद्रित अक्षरों की ही भाँति सुन्दर व सुडौल अक्षर बनाने का प्रयत्न करना।

प्रतिलिपि - प्रतिलिपि के लिए भी पुस्तिका पर छात्र नियमित रूप से किसी पुस्तक या पत्रिका के किसी निर्दिष्ट अंश की प्रतिलिपि करते हैं।

श्रुतलेख - लेखन के अभ्यास के लिए श्रुतलेख भी अच्छा साधन है। श्रुतलेख से सुन्दर लिखने का तो अभ्यास होता है, साथ में शीघ्रतापूर्वक लिखने का अभ्यास होता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार संस्कृत शिक्षा का मूल्यांकन लेखन एवं पठन दो के आधार पर किया जा सकता है यदि पठन में कोई त्रुटि नहीं होगी तो लेखन भी शुद्ध होगा। लेखन के अन्तर्गत वर्णों का शुद्ध लेखन होना चाहिए। जिससे कि अर्थ का अनर्थ न हो। पाणिनि ने वर्णों के सही प्रयोग पर बल देते हुए कहा है–

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग्वर्ण प्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते॥

संस्कृत शिक्षा एवं शिक्षण शास्त्र

केशरी कुमार तिवारी
शिक्षाचार्य छात्र
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ
नई दिल्ली - 110016

यह सर्वविदित है कि संस्कृत में ही भारतीय संस्कृति निहित है। साथ ही सभी भाषाओं की जननी भी संस्कृत भाषा ही है, इसीलिए तो इसे देववाणी कहा गया है।

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषः .... वाग्भूषणं भूषणम्।।

(नीति शतकम्)

वर्तमान शिक्षा उद्देश्यनिष्ठ शिक्षा है अतः प्रत्येक विषय का उद्देश्य निर्धारण करने के पश्चात् ही शिक्षण कार्य प्रारम्भ किया जाता है। उद्देश्यहीन शिक्षा उस नौका के समान है जिसका नाविक अपने निर्दिष्ट स्थान से अनभिज्ञ अतः मञ्जिल पर पहुँचने से पहले पथभ्रष्ट हो जाता है। अथवा बाधाओं से जूझना पड़ता है।

वस्तुतः शिक्षा का लक्ष्य विस्तृत है अतः उद्देश्यों का निर्धारण करके पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। अन्त में मूल्याङ्कन के द्वारा उपलब्धि का मापन किया जाता है इसके तीन पक्ष है-ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक। संस्कृत शिक्षण के तीन स्तर है - प्रारम्भिक स्तरीय कक्षा - 6,7,8 माध्यमिक स्तरीय कक्षा 9,10,11 तथा 12 एवं उच्चस्तरीय विश्वविद्यालयीय सम्बन्धित महाविद्यालय।

अन्य उद्देश्य - निर्देशात्मक उद्देश्य, व्यवहारिक उद्देश्य

प्रारम्भिक स्तर - 1. सरल भाषा में शुद्ध-शुद्ध पढ़ना, 2. उच्चारण दक्षता, 3. कण्ठस्थीकरण की योग्यता, 4. लिखने की योग्यता का विकास, 5. श्रुतिलेख, 6. अनुवाद, 7. समझने में सरलता।

माध्यमिक स्तर - 1. विभक्ति, चिह्नादि के द्वारा शुद्धोच्चारण, 2. विरामादि चिह्नों के छन्दान्तर करने में योग्यता, 3. संस्कृत साहित्य से परिचित कराना, कोशों की जानकारी आदि, 4. वाणी में प्रभावोत्पादकता बनाने का प्रयास, 5. मातृभाषा में अनुवाद करने की योग्यता का विकास, 6. संस्कृत भाषा, संक्षिप्त निबन्ध आदि लेखन की क्षमता का विकास।

उच्च् स्तर - 1. सरल कठिन दोनों का पाठ उच्चारण में शुद्धता, 2. गति लयादि के साथ पढ़ना, 3. अगाध साहित्यावगाहन की क्षमता का विकास, 4. भाषा एवं साहित्य के अनुसंधानिक दृष्टिकोण, 5. भाषा बोलने की दक्षता का विकास।

निर्देशात्मक उद्देश्य - 1. जीवन मूल्यों की प्राप्ति, 2. रचना के क्षेत्र में विभिन्न रूपों का ज्ञान प्राप्त करना, 3. भाषा का शुद्ध वाचन करना, 4. भाषा का शुद्ध लेखन करना, 5. सरल शब्दों में भावाव्यक्ति करना, 6. अर्थ ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त करना, 7. भाषा एवं साहित्य में रुचि।

व्यावहारिक उद्देश्य - 1. भावाभिव्यक्ति करना, 2. मानव जीवन मूल्यों की प्राप्ति, 3. साहित्य के प्रति संवेदनशील अभिरुचि, 4. पाठ्येतर सहगामी प्रवृत्तियाँ और अभिवृत्तियाँ, 5. शुद्ध वाचन एवं शुद्ध लेखन।

संस्कृत भाषा शिक्षण के महत्त्व के आधार - 1. बौद्धिक विकास, 2. मानसिक विकास, 3. शैक्षणिक विकास, 4. सांस्कृतिक विकास, 5. धार्मिक प्रक्रियाओं का ज्ञान, 6. व्यावसायिक प्रक्रियाओं का बोध, 7. मनोरञ्जन, 8. कला विज्ञान

संस्कृत का सांस्कृतिक महत्त्व - भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार - संस्कृत के मूलाधार आध्यात्मिक है जो भारत की विश्व को अनूठी देन है।

संस्कृत भाषा शिक्षण के सिद्धान्त - 1. अनु-अभिव्यक्ति का सिद्धान्त, 2. पाठ आवृत्ति का सिद्धान्त, 3. समन्वय तात्पर्य की बोध का सिद्धान्त, 4. शब्द व्युत्पत्ति का सिद्धान्त, 5. रचना शिक्षण का सिद्धान्त, 6. शिक्षण सूत्रों का उपयोग का सिद्धान्त।

शिक्षण सूत्र - ज्ञात से अज्ञात की ओर, सरल से कठिन की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, पूर्ण से अंश की ओर, विश्लेषण से संश्लेषण की ओर, आगमन से निगमन की ओर, उदाहरण से नियम अथवा विशेष से सामान्य की ओर, अनिश्चित से निश्चित की ओर।

उच्चारण एवं वर्तनी शिक्षा - मुख्य अवयवों के माध्यम से जो ध्वनि स्पष्ट रूप से ध्वनित होती है उसे उच्चारण कहते हैं। ध्वनि यन्त्र मुखविवर के अलावा तालु, जिह्वा, ओष्ठ, कण्ठ, दन्त आदि की सहायता से उच्चारण करते हैं। वर्ण + शब्द + वाक्य = वाक्यविन्यास का निर्माण होता है।

संस्कृत शिक्षण के दो भेद होते हैं - वैदिक और लौकिक। वैदिक के तीन भेद हैं - उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित। लौकिक के भेद हैं - ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत।

उच्चारण शिक्षण का महत्त्व - महर्षि पतञ्जलि के अनुसार - 'एको शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्ते स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।' पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि-

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तदर्थमाह।
स वाग्वज्रं यजमान हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात्।।

(पा.शि.)

संस्कृत शिक्षण में उच्चारण के उद्देश्य -

परिनिष्ठित संस्कृत हेतु शुद्धोच्चारण की शिक्षा, संश्लिष्ट और सन्धिनिष्ठ एवं समासनिष्ठ के अनुसार शिक्षा, पदों व अर्थों को समझने के लिए, वर्णोच्चारण से भाषा में परिमार्जन लाना।

उच्चारण दोष के कारण - अज्ञानता, वर्ण के उच्चारण स्थान का सही ज्ञान न होना, प्रयत्न लाघव, अभ्यास का अभाव, क्षेत्रीय या स्थानीय प्रभाव।

पाणिनि के अनुसार अशुद्धोच्चारण के दस कारण हैं-

उपांशुदष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गदगदितं प्रगीतम्।

निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न न दीननतु सानुनाश्यम्।। (पा.शि.)

शुद्धोच्चारण के लिए पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है-

स्वस्थ प्रशान्तो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेत् बुधः।

नाभ्यहन्यान्न निर्हन्यान्न गायेन्न च कम्पयेत

यथा दावच्चरेद् वर्णास्तथैवैतान समापयेत्।। (पा.शि.)

याज्ञवल्क्य शिक्षा के अनुसार शुद्ध उच्चारण के षड् गुण माने गये हैं -

माधुर्यमक्षरमव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।

धैर्यं लय समर्थञ्च षडेते पाठका गुणाः।। (पा.शि.)

संस्कृत शिक्षण की उच्चारण विधियाँ -

1. अनुकरण विधि, 2. अभ्यास विधि, 3. पर्यावरण विधि, 4. त्वरित सुधार विधि, 5. वाक्य शोधनविधि

संस्कृत शिक्षण में ध्वनि शिक्षण

किसी भी भाषा को सीखने के लिए उस भाषा के ध्वनि तत्त्व को समझना अति आवश्यक है। संसार के प्रत्येक भाषा के कुछ प्रतीक संकेत होते हैं जिससे उस भाषा को पहचाना जाता है ध्वनि शब्द का प्रयोग प्रमुखतः दो अर्थों में किया जाता है कुछ विद्वानों के अनुसार वर्ण ही ध्वनि है। जबकि दूसरे विद्वान् अव्यक्त ध्वनि को ध्वनि मानते हैं। ध्वनि के प्रकारों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है।
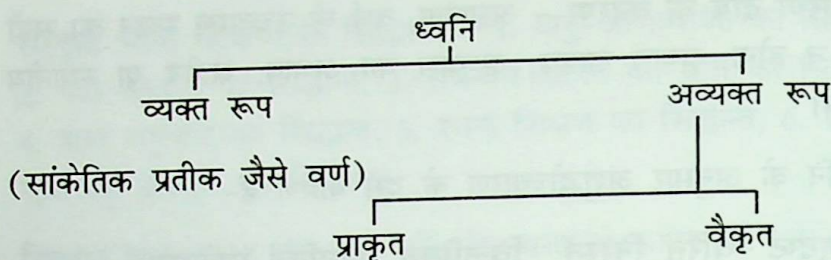
(वर्णों को अभिव्यक्त करती है) (वर्ण अभिव्यक्ति के बाद उत्पन्न होती है, वह शब्द उपलब्धि का हेतु है)

वैकृत ध्वनि घण्टा नाद के अनुकरण की भाँति उस वर्ण या वर्णात्मक शब्द की अभिव्यक्ति बाद में सुनाई देती है।

संस्कृत ध्वनियाँ - पाणिनि ने संस्कृत ध्वनियों की उत्पत्ति शिव के डमरु से बताई है तथा वर्णों के 14 सूत्र बताये हैं। अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल्।

संस्कृत ध्वनियाँ मुख्यतः दो भागों में विभक्त है - 1. स्वर तथा 2. व्यञ्जन

स्वर - स्वर के उच्चारण में मुख विवर में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् जिन वर्णों का उच्चारण बिना किसी बाधा के हो जाता है वे स्वर कहलाते हैं, इन्हें संस्कृत में अच् भी कहते हैं।

व्यञ्जन - जब फेफड़ों में आने वाली वायु की मुख विवर में रुकावट होती है, अर्थात् उपकरण जिह्वा, तालु, मूर्धा आदि से संघर्ष करने के बाद जिन वर्णों का उच्चारण होता है वे मुख्य विवर के व्यञ्जन कहलाते हैं। इन्हें संस्कृत में हल् भी कहते हैं।

संस्कृत वर्णमाला

स्वर - 9 स्वर, 5 मूल स्वर, 4 संहित या संयुक्त स्वर है।

मात्रा – ह्रस्व दीर्घ प्लुत यथा –

एक मात्रा भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।

त्रिमात्रस्तु भवेत् प्लुतो व्यञ्जनार्थं मात्रिकम्।।

उच्चारण शिक्षण की उपयोगिता

मात्राओं से सस्वर और सुस्वर पाठ होता है। यति, गति, पदान्त एवं अवग्रह में सहायक होता है। प्रत्येक वर्ण के उच्चारण में सहायक व्यञ्जनों की अपेक्षा स्वर वर्णों में मात्रा का विशेष स्थान होता है क्योंकि मात्राओं पर ही स्वर व्यञ्जन व्यवस्थाएँ आधारित होती है।

स्वर के भेद –

उदात्त – उच्चैरुदात्तः, अनुदात्त – नीचैरनुदात्तः, स्वरित – समाहारः स्वरितः

लक्षण – इसमें गल विवर और वायु मध्य रूप से काम करता है अर्थात् स्निग्धता रुक्षता दोनों समिश्रित रहती है।

प्रयोग – अब केवल वेद मन्त्रोच्चारण के लिए ही तथा काकु, बलाघात, गीत आदि के लिए उपयोग होता है। लौकिक संस्कृत में स्वरों के उच्चारण का ध्यन नहीं रखा जाता है।

प्रयत्न दो प्रकार के हैं – 1. बाह्य प्रयत्न 2. आभ्यन्तर प्रयत्न

कैयट के अनुसार –

खरो विवारः श्वासाः अघोषाश्च

हंसः संवाराः नादाः घोषाश्च।

वर्णानां प्रथम-तृतीय-पञ्चमाः यणश्चाल्पप्राणाः

वर्णानां द्वितीय चतुर्थो शलश्च महाप्राणाः।।

ध्वनि यन्त्र -

ध्वनियों का उच्चारण मुख विवर में स्थित वागेन्द्रियों, हृदय व फेफड़ों के सहयोग से होता है। वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ध्वनि यन्त्र में 17 भाग सम्मिलित है-

1. श्वासनलिका (विण्ड पाइप) 2. भोजननलिका (गलेट) 3. कण्ठपिटक (लेरिक्स-टेटुआ) 4. स्वरयन्त्र (ग्लोटिस) 5. स्वरतन्त्री (वोकलकोड्स) 6. अभिकाकल (ऐपिग्लोटिस) 7. नासिकाविवर (नेजरकैविटी) 8. यखविवर (माउथकैविटी) 9. कण्ठ (गुटुर) 10. कोमलतालु (सौफ्टपैलेट) 11. मूर्धा (सेरिब्रल) 12. दन्त (टीथ) 13. ओष्ठ (लिप्स) 14. जिह्वा (टंग) (15) नासिका (नोज) 16. जिह्वामूल (रुट आफ टंग) 17. अलिजिह्वा (यूव्यूले)

उक्त परिचर्चा में संस्कृत शिक्षकों के लिए बताये गये विधियों का प्रयोग करना परम आवश्यक है। जिससे छात्रों को सरल रूप से अधिगम होने के साथ-साथ उच्चारण आदि त्रुटियों को दूर करने में सहायता प्राप्त हो सकती है। इन विधियों के प्रयोग के लिए ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति में प्राथमिकता दी जाय, जिससे संस्कृत शिक्षण शास्त्र को प्रोन्नत बनाया जा सके। इसके लिए समय-समय पर संस्कृत शिक्षण सम्बन्धी सेमिनार, गोष्ठी, परिचर्चा आदि आयोजित की जाय, जिनमें शिक्षक व विद्यार्थी दोनों को भाग लेने की सुविधा प्रदान की जाय। संस्कृत शिक्षण की अच्छी पुस्तकों का प्रकाशन कर विद्यालयों में वितरित करने की योजना सरकार द्वारा अथवा संस्कृत प्रेमियों द्वारा योजना बनाई जाय।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

संस्कृतशिक्षण - डा. उषा शर्मा, स्वाति पब्लिकेशन्स, जयपुर

लघुसिद्धान्तकौमुदी - वरदराजः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी

संस्कृत शिक्षा के प्रसार के उपाय

नवीन आर्य
शिक्षाचार्य छात्र
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
नई दिल्ली-110016

संस्कृत भारत की ही नहीं अपितु विश्व की प्राचीनतम भाषा है। विश्व के अन्य देशों में लोग जिस समय सांकेतिक भाषा से काम चला रहे थे उस समय भारत में संस्कृत भाषा द्वारा ब्रह्म ज्ञान का प्रसार किया जा रहा था।

भारतीय इतिहास के अनुसार विश्व के आदिकर्ता ब्रह्म के मुख से वेदमयी संस्कृत भाषा का जन्म हुआ-

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में कहा है-

संस्कृतं नाम दैवी वागन्व्याख्याता महर्षिभिः।
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाण भारती॥

अर्थात्, संसार की समस्त भाषाओं में से त्रिकालदर्शी ऋषियों द्वारा ईश्वरीय भाषा संस्कृत प्रचलित हुई।

यह वही संस्कृत भाषा है जिसके विषय में महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में लिखा है - 'ग्रामे-ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते'। अर्थात् भारत के ग्राम-ग्राम में वेदों की कठ तथा कालापक शाखा का अध्ययन होता था।

भारतीय धर्म, दर्शन तथा संस्कृति की भाषा के रूप में बौद्धिक,

भावात्मक, आध्यात्मिक तथा कलात्मक निष्पत्ति के हितार्थ प्रेरणा की स्थायी तथा अजस्र धारा के रूप में संस्कृत भाषा का महत्त्व अवर्णनीय है। संस्कृत ज्ञान का भण्डार है यह सर्वविदित है। संस्कृत का क्षेत्र विशाल है इसमें वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, दर्शन भूगोल एवं खगोलीय ज्ञान, गणित, ज्योतिषशास्त्र, चिकित्साविज्ञान, राजनीतिविज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, भौतिकविज्ञान, रसायनशास्त्र, वनस्पतिविज्ञान, जीवविज्ञान, यन्त्रविज्ञान, कामशास्त्र, संगीतशास्त्र आदि इसमें निबद्ध हैं।

शायद इसीलिए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था कि "संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसमें भारतीय संस्कृति का चिरसंचित ज्ञान भरा है। बिना संस्कृत पढे कोई अपने को पूर्ण भारतीय और विद्वान नहीं बना सकता"।

भूतपूर्व प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरु के शब्दों में "यदि मुझसे पूछा जाय कि भारत की सबसे विशाल सम्पत्ति क्या है और उत्तराधिकार के रूप में उसे सर्वोत्तम कौन सी वस्तु प्राप्त हुई है तो निःसंकोच उत्तर दूँगा कि वह सम्पत्ति संस्कृत भाषा और उसके साहित्य एवं उसके भीतर जमा सारी पूँजी ही है।"

संस्कृत शिक्षा का प्रसार

संस्कृत शिक्षा के प्रसार व विकास के लिए निम्नलिखित उपाय हैं जो कुछ शासनाधीन हैं, कुछ समाज के अधीन हैं।

शासनाधीन उपाय

आधुनिक वैज्ञानिक युग में शिक्षा जगत् में हाई-टेक कक्षा-कक्ष, कम्प्यूटरीकृत पुस्तकें, कम्प्यूटर के रूप में पुस्तकालय, विचारों के आदान-प्रदान में इन्टरनेट सेवा आदि का बोल-बाला है। आज पेपरलैस सोसायटी की संकल्पना की जा रही है। यह सब प्रयास अवश्यमेव सराहनीय है, किन्तु इतनी तीव्रगति से हो रहे नवीन तकनीकी एवं वैज्ञानिक विकास के साथ शिक्षा अपने उद्देश्य की प्राप्ति में दिग्भ्रमित होती जा रही है। आज शिक्षा को केवल व्यवसाय प्राप्त करने का आधार समझा जाने लगा है जिसके कारण वास्तविक ज्ञान के महत्त्व को भूल

छात्र केवल उपाधियाँ प्राप्त करना चाहते हैं। वर्तमान भ्रष्टाचार के युग में जबकि नैतिकता का ह्रास अपनी चरमसीमा पर है। संस्कृत शिक्षा ही एक मात्र ऐसा साधन हो सकती है जो छात्रों में नैतिक गुणों का संचार करे, आत्मानुशासन की शक्ति प्रदान करें तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में अपना सहयोग प्रदान करें। एतदर्थ कतिपय महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को विचारार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. पूर्व प्राथमिक स्तर के उच्चतम स्तर तक विद्यालयों, महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व प्रार्थना, उद्‌बोधन, सुभाषित वाक्यों तथा श्लोकों का पाठ अवश्य किया जाय। सन् 1880 में बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 'वन्दे मातरम्' की रचना संस्कृत में की थी, क्योंकि उनका मानना था कि संस्कृत भारत की एक स्वाभाविक भाषा है।

2. संस्कृत को अन्य विषयों के साथ जोड़कर पढ़ाया जाय।

3. संस्कृत में निहित देशप्रेम व एकता की भावनाओं से ओतप्रोत श्लोकों का पाठ/गान विद्यालयों में करवाया जाय।

4. औपचारिक अवसरों पर संस्कृत का अधिकाधिक प्रयोग किया जाय। जनसाधारण अथवा विशेष महाविद्यालयों के द्वारा निर्वाचित इन सदनों के सदस्यों का शपथग्रहण सामान्यतः संस्कृत में सम्पन्न होना चाहिए। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की कार्यवाही का उद्‌घाटन ऋग्वेद में मंत्रों द्वारा किया जाना चाहिए। जैसे–'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'। इसी प्रकार सम्मेलनों की समाप्ति पर यथोचित वैदिक प्रार्थना का स्थायी रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। दीक्षान्त समारोह के वाक्यों का प्रयोग संस्कृत में ही किया जाना चाहिए। महत्त्वपूर्ण प्रमाण पत्रों में भी संस्कृत तथा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा दोनों का प्रयोग होना चाहिए।

5. नैतिक शिक्षा हेतु संस्कृत के सुभाषित वाक्यों, हितोपदेश तथा पञ्चतन्त्र की कथाओं को आधार बनाया जाना चाहिए। नवम अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन के अवसर पर सम्मेलन के साहित्यिक

संस्कृत विभाग के अध्यक्ष के रूप में एफ. डब्ल्यू. थामस ने कहा था – "चारित्रिक तथा व्यावहारिक निरीक्षण सम्बन्धी संस्कृत साहित्य का यह अंश अपने सम्पत्ति वैभव, दृष्टि तथा बुद्धि की सूक्ष्मता एवं गाम्भीर्य में अद्वितीय है। संस्कृत साहित्य का केवल यही एक अंश है जहाँ कि भारतीय मानवता क्या समस्त विश्व की मानवता अपने सम्पूर्ण स्वरूप में प्रकट होती है।"

6. संस्कृत के शुद्धोच्चारण पर बल दिया जाय, एतदर्थ श्लोक पाठ को महत्त्व देने से संस्कृतमय वातावरण तैयार करने में सुविधा होगी।

7. नवीन शब्दावली तथा मानक शब्दावली हेतु संस्कृत भाषा का अधिकाधिक सहारा लिया जाय।

8. भारतीय इतिहास, सभ्यता तथा संस्कृति के ज्ञान हेतु संस्कृत शिक्षा पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाय। न केवल भारत देश में अपितु विदेशों में भी जहाँ भारतीयों की संख्या अधिक है वहाँ अपने दूतावासों के माध्यम से अथवा व्याख्याताओं एवं कलाकारों के विशेष दलों को उन देशों में भेजकर भारत में इस जनसमुदाय का बन्धन सदा जीवित रखने की व्यवस्था करे।

9. वर्तमान वैज्ञानिक युग में यह बहुत बड़ी अपेक्षा संस्कृत से की जाती है, कि उसके अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाय। नवीनतम चिन्तन, नवीन खोज पर बल देने हेतु उच्चतम स्तर पर अधिकाधिक अनुसन्धान कर आज के परिप्रेक्ष्य में उसे लाभदायक बनाया जाय। इस क्षेत्र में संस्कृत शिक्षा बहुत पीछे है।

10. कई वर्षों पहले यह सिद्ध हो चुका है कि संस्कृत भाषा कम्प्यूटर पर सबसे अधिक सफल भाषा है, किन्तु कम्प्यूटर के क्षेत्र में हुए कार्यों में कहीं भी चर्चा की जाय तब ज्ञात होता है कि संस्कृतज्ञ इसमें अधिक रुचि नहीं ले रहे हैं।

11. सभी शिक्षा संस्थानों में 'सामान्यसंस्कृत' के नाम से एक प्रश्न पत्र के रूप में अनिवार्य किया जाय।

12. संस्कृत भाषा से सम्बन्धित अनुसन्धानकर्ताओं के लिए विशिष्ट छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाय।

13. दूरदर्शन पर संस्कृत से जुड़े काव्य, नाटक, कथा, आख्यानक, लेख, पाठ, चर्चा-परिचर्चा, अन्त्याक्षरी, कविसम्मेलन आदि कार्यक्रमों को भी दिखाया जाय।

समाजाधीन उपाय

समाज संस्कृत के प्रचार निम्नलिखित उपायों से कर सकता है-

1. संस्कृत भाषा केवल निर्धन, पौरोहित्यकर्म करने वाले एवं ब्राह्मणों की ही भाषा नहीं है अपितु यह सबके लिए है। इसलिए जरुरी है कि सभी संस्कृत पढ़ें।

2. भारतीय संस्कृति सभ्यता संस्कारों में सभी को श्रद्धा रखनी चाहिए और इनके प्रति स्वाभिमान भी होना चाहिए।

3. संस्कृत अध्ययन करने वाले छात्रों का समाज समुचित आदर करे।

4. भारतीयता की सुरक्षा के लिए सभी संस्कृत भाषा को अनिवार्य रूप से पढ़ें।

5. संस्कृत अध्यापक उत्साहपूर्वक छात्रों को अध्ययन करायें।

6. समय-समय पर शिक्षण संस्थाओं में एवं अन्य उपयुक्त स्थानों पर संस्कृत भाषा में नाटक-भाषण-कवि सम्मेलन आदि की व्यवस्था हो।

7. संस्कृत को जानने वाले लोग परस्पर वार्तालाप एवं पत्रव्यवहार सदैव संस्कृत भाषा में ही करें।

8. संस्कृत भाषा में प्रकाशित समाचार पत्र-पत्रिकाओं को खरीदें और उन्हें पढ़ें। आकाशवाणी पर संस्कृत भाषा में समाचार प्रसार को सभी नियम पूर्वक सुनें।

9. नई पीढ़ी को संस्कृत अध्ययन के प्रति जागरूक करें।

10. संस्कार एवं नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में उतारने के लिए संस्कृत का अध्ययन अपेक्षित समझा जाय।

जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत भाषा का समय व्यतीत हो गया वे गलती पर है। संस्कृत न केवल भारत में अपितु समस्त संसार में व्याप्त है। जो संदेश इस भाषा में है वे अन्यत्र कहीं नहीं। संस्कृत में बहुमूल्य निधियाँ सुरक्षित हैं और आज वर्तमान में यदि धर्मनिरपेक्षता, विश्वबन्धुत्व भावना, परस्पर सौहार्द, भाईचारा, नैतिक मूल्य, संस्कार एवं संस्कृति को निरन्तर बनाए रखना चाहते हैं तो संस्कृत शिक्षा का प्रचार-प्रसार अत्यन्त आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत शिक्षण - डॉ. सन्तोष मित्तल
2. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - एस. एस. पाण्डेय एवं एस. के. पाण्डेय
3. भारतीय साहित्य का अनुशीलन - बलदेव उपाध्याय
4. संस्कृत शिक्षा के सम्बन्ध में (देश के मूर्धन्य मनीषियों के विचार) - सम्पादक - श्री वासुदेव द्विवेदी शास्त्री

शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से ज्योतिषशिक्षणविधियों का विवेचन

मुकेश शर्मा
शोध-छात्र
रा. सं. संस्थान , श्रीरणवीरपरिसर, जम्मू

वर्तमान तकनीकी युग में समय की बचत हेतु तथा कार्य की सरलता हेतु नित नये आविष्कार खोजें और नियमों का प्रतिपादन हो रहा है जिसका प्रभाव शिक्षा जगत में भी देखा जा सकता है। शिक्षा जगत में शिक्षण प्रक्रिया को रुचिकर तथा बोधगम्य बनाने हेतु शोधकर्त्ताओं द्वारा तथा शिक्षाविदों द्वारा नये नये नियमों तथा शिक्षणविधियों का प्रतिपादन किया जा रहा है। शिक्षाशास्त्र में तो शिक्षणप्रक्रिया रुचिकर तथा बोधगम्य बनाने हेतु बहुत सी विधियों का वर्णन प्राप्त होता है परन्तु उन सभी विधियों का प्रयोग सभी विषयों पर प्रयोग नहीं कर सकते परन्तु तब भी उन सभी विधियों का अन्य विषयों में प्रयोगात्मक अध्ययन सतत चलता आ रहा है। प्रारम्भ में तो शिक्षणविधिविशेष का प्रयोग विषयविशेष में ही किया जाता रहा। परन्तु जैसै-जैसे शिक्षाविदों का तथा शोधकर्त्ताओं का अध्ययन शिक्षणविधियों पर होता रहा वैसे-वैसे ही इन विधियों का प्रयोग विषयान्तर में भी होने लगा। इन्हीं सभी विषयों को ध्यान में रखकर इन विधियों का प्रयोग परम्परागत विषयों पर भी होने लगा है। उक्त शोधविषय को ध्यान में रखते हुए शिक्षाशास्त्र में प्रयुक्त किन शिक्षणविधियों का प्रयोग ज्योतिषशिक्षण में हो सकता है इसका विवेचन करने का प्रयास शोधकर्त्ता द्वारा किया जा रहा है।

ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन का अर्थ कुण्डली निर्माण तथा भविष्यफल से ही नहीं है, ज्योतिष तो वो विज्ञान है जिसका सम्बन्ध सीधे-सीधे ग्रह-नक्षत्र-आकाशगङ्गा इत्यादि से है। इसलिए ज्योतिषशास्त्र को सूर्यादिग्रह और

काल का ज्ञान कराने वाला शास्त्र भी कहा गया है। ज्योतिषशास्त्र में ब्रह्माण्ड के अनेक तत्त्वों का वर्णन प्राप्त होता है, जैसे ग्रहनक्षत्रादिगति , धूमकेतु उल्कापात आदि , ज्योतिः पदार्थों के स्वरूप, गति, स्थित्यादि। इन सभी तत्त्वों में छिपे रहस्यों का पता लगाने में वैज्ञानिक आज भी प्रयासरत हैं। उन सभी रहस्यों से सम्बन्धित ज्ञान ज्योतिषग्रन्थों में भरा पड़ा है। अब यहाँ पर प्रश्न उठता है कि यदि सभी रहस्यों से सम्बन्धित ज्ञान ज्योतिष ग्रन्थों में उपलब्ध है तो वैज्ञानिकों ने ज्योतिष ग्रन्थों में क्यों नहीं ढूंढा ? इसका उत्तर यह है कि सभी उपलब्ध ज्योतिषग्रन्थ संस्कृतभाषा में है तथा संस्कृतभाषा का अध्ययन और अध्याापन वर्तमान समय में कितना हो रहा है यह तो सभी को ज्ञात ही है। यदि ज्योतिषग्रन्थों में विद्यमान रहस्यों का प्रकटीकरण करना है तो उसके लिए सबसे पहले हमें ध्यान देना होगा कि क्या इन ज्ञान विज्ञान से ओतप्रोत ज्योतिषग्रन्थों का अध्यापन वर्तमानसमय के अनुरूप हो रहा है या नहीं। यदि हो रहा है तो उसमें और क्या नवीनता होनी चाहिए कि लौकिक तथा अलौकिक रहस्यों का उद्घाटन हो सके। इसी संन्दर्भ में कुछ चिन्तनीय प्रश्न हैं जैसे – ज्योतिषशिक्षण कैसे हो ? ज्योतिषशिक्षण को कैसे सुगम्य तथा बोधगम्य बनाया जाये ? ज्योतिषशिक्षण में किन किन शिक्षणविधियों का प्रयोग किया जाये ? ज्योतिषशिक्षण में आधुनिक शिक्षणविधियों का प्रयोग कैसे हो ? ऐसे ही कई प्रश्नों के ऊपर चिन्तन कर के उन पर कार्य करने की आवश्यकता है। इन्हीं प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए शिक्षाशास्त्र में वर्णित नवीन शिक्षणविधियों का प्रयोग ज्योतिषशिक्षण में कर के ज्योतिषशिक्षण को रुचिकर तथा बोधगम्य बनाया जा सकता है। जिन शिक्षणविधियों का प्रयोग ज्योतिषशिक्षण में कर सकते हैं उनका वर्णन निम्नवत् दिया जा रहा है –

ज्योतिषशिक्षण में नूतन विधियां

शिक्षाशास्त्र में वर्णित शिक्षणविधियों का प्रयोग भिन्न-भिन्न विषयवस्तुओं में भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। ज्योतिषशिक्षण में भी भिन्न-भिन्न विषयवस्तुओं में भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग कर के ज्योतिषशिक्षण को भी रुचिकर तथा सुबोधगम्य बनाया जा सकता है।

१. व्याख्याविधि –

व्याख्याविधि में शिक्षक एक एक शब्द को लेकर उसका अर्थ स्पष्ट करता है। पद का अर्थ बताते समय वह समास-विग्रह व्युत्पत्ति आदि बताते हुए सम्पूर्ण वाक्य अनुच्छेद एवं पाठ का अर्थ बताता है। तत्पश्चात् पाठ का सारांश भावार्थ आदि भी स्पष्ट किया जाता है। लेखक या कवि की शैली आदि का भी परिचय कराया जाता है। इस विधि को व्याख्यान सम्बन्धी निम्नलिखित श्लोक ध्यान देने योग्य है –

पदच्छेदः सदाथोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्यानं षड्विधं स्मृतम्।।

अर्थात् व्याख्यान के निम्नलिखित छः ढंग है –

१. पदच्छेद , २. पदार्थोक्ति , ३. विग्रह , ४.वाक्ययोजना , ५. आक्षेप, ६. समाधान। उपर्युक्त श्लोक से व्याख्यापद्धति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

२. आगमन निगमन विधि

१. आगमन विधि – इस विधि में अध्यापक छात्रों के समक्ष अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है तत्पश्चःत् छात्र उन उदाहरणों के माध्यम से नियम निर्धारण करता हैं। अर्थात् यह विधि उदाहरण से सिद्धान्त की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, विशेष से सामान्य की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर इत्यादि सूत्रों के अन्तर्गत निहित है। इस विधि में वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक गुणों का समावेश है।

आगमनविधि के चरण – १. उदाहरण, २. निरीक्षण, ३.नियम-निर्धारण, ४. परीक्षण।

२. निगमनविधि – इस विधि में अध्यापक सर्वप्रथम छात्रों समक्षनियम उपस्थित करता है, इसके उपरान्त छात्र नियम को ध्यान में रखकर उदाहरणों का निर्धारण करते हैं।

निगमन विधि के चरण - १. नियम २. स्पष्टीकरण ३. प्रयोग ४. प्रदर्शन ५. पुन: परीक्षण।

आगमन विधि का प्रयोग पहले केवल व्याकरणशास्त्र में प्रचलित था। परन्तु समय के अनुसार इस विधि का प्रयोग अन्य शास्त्रों में भी होने लगा। इस तरह से ज्योतिष में भी इस विधि का प्रयोग करके आचार्य विषय वस्तु को रुचिकर बनाने में सफल हो सकते है।

३. विश्लेषण-संश्लेषण विधि

इस विधि में पूर्ण से अंश की ओर, विश्लेषण से संश्लेषण की ओर इन सूत्रों का अनुकरण होता है। इस विधि में सर्वप्रथम विषयवस्तु के विभिन्न अंशों को पृथक् पृथक् करके पढाते हैं। उसके पश्चात् उन अंशों के संश्लेषण से समग्र स्वरूप का बोध कराते हैं। अध्यापक जब इस शिक्षण विधि का प्रयोग कक्षा में करता है तो वह विषयवस्तु को अंशों में विभाजित करके उनका अर्थ स्पष्ट करता है। फिर उनको इकट्ठे करके विश्लेषण करता है। इस विधि को हम अलग-अलग करके निम्न प्रकार से देख सकते हैं।

विश्लेषणविधि -

विश्लेषण शब्द का तात्पर्य है **विश्लिश्यते विभक्तीकरणं अनेनमिति**, अर्थात् अलग-अलग करने की प्रक्रिया। इस प्रकार अलग-अलग करने की प्रक्रिया को विश्लेषण विधि कहते है। जिसमें समस्या या उदाहरण का विशिष्ट अध्ययन से आरम्भ करते हैं और समस्या के अन्दर तक पहुँचने की कोशिश करते हैं। समस्या को छोटे-छोटे अंशों में विभक्त करके उसका अध्ययन और विवेचन करते हुए सामान्य से विशेष की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर चलने का प्रयास करते हैं।

विश्लेषण विधि का ज्योतिषशास्त्र में प्रयोग इस तथ्य के आधार पर किया जाता है कि सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र का प्राय: स्वरूप गणित या सिद्धान्त की प्रक्रिया पर आधारित है। अत: ज्योतिष में अंक गणित हो अथवा रेखा गणित या बीज गणित सभी में सिद्धान्त का निरूपण समस्या पर आधारित होता है।

संश्लेषण विधि –

संश्लेषण शब्द का अर्थ **संश्लिष्यते अनेनेति संश्लेषणम्** अर्थात् अलग अलग खण्डों को जोडना। इसमें विश्लेषण द्वारा विषयवस्तु को अलग-अलग खण्डों में विभक्त किया जाता है तथा उसके द्वारा बच्चों को स्पष्ट जानकारी देने के बाद उन समस्त खण्डों को एकत्र कर ज्ञात से अज्ञात की ओर जाया जाता है।

ज्योतिष के सिद्धान्तों का उपस्थापन भी इन्हीं सिद्धान्तों के आधार किया जाता है। आर्यभट्ट, वराहमिहिर , भास्कराचार्य ब्रह्मगुप्त आदि ज्योतिषाचार्यों ने भी अपने सिद्धान्तों में इन्हीं विषयों को आधार बनाया है।

४. अन्वेषण विधि ह्युरिष्टिक विधि

इस विधि में छात्र स्वयं खोज कर के ज्ञान प्राप्त करने की प्रवत्ति के विकास पर बल देते हैं। अध्यापक का कार्य मात्र छात्रों का मार्गनिर्देशन करना होता है। इस विधि में छात्र स्वयं विविध उपकरणों का प्रयोग करके नियम सिद्धान्त आदि का निर्धारण करते हैं। इस विधि के प्रर्वतक जे. एस. ब्रूनर है। इस विधि को ह्युरिष्टिक विधि के नाम से भी जाना जाता है। ह्युरिष्टिक शब्द ग्रीक भाषा के ह्युरिष्को शब्द से विकसित हुआ है। जिसका अर्थ है - मैं स्वयं खोज करता हूँ। इस प्रकार इस विधि में स्वयं खोज करके ज्ञान प्राप्त करने को महत्त्व दिया जाता है।

अन्वेषण विधि को ब्रूनर ने विज्ञान शिक्षण के लिए प्रतिपादित किया था। अतः इसी आधार पर इस विधि का प्रयोग ज्योतिष शिक्षण में भी करके ज्योतिषशास्त्र की विषयवस्तु को छात्रों के लिए खोज का विषय बनाकर प्रस्तुत कर सकते हैं। जिससे उन छात्रों में खोज करने प्रवृत्ति का विकास होगा।

अन्वेषण विधि के चरण -

१. प्रकरण का निर्धारण

२. उपयुक्त साधनों की उपलब्धता

३. तथ्यों की खोज

४.उपकल्पना का निर्माण

५. उपकल्पना का निरीक्षण

६. निष्कर्ष निकालना

५. प्रायोजना विधि

इस विधि में छात्रों के समक्ष कुछ समस्यायें प्रस्तुत की जाती है , और उनको इस बात की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है कि वे समस्या के समाधान के आंकडें तथा अन्य सम्बन्धित सामग्री का प्रयोग कर सकते हैं।

प्रायोजना विधि का स्वरूप रुसो ने अपनी पुस्तक 'एमिल' में, फ्रोबेल ने अपनी पुस्तक 'एजुकेशन आफ मैन' में शिक्षा के लिए क्रियायों को बल देकर किया है। प्रायोजना विधि का प्रयोग सबसे पहले व्यावसायिक क्षेत्र में किया था। सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में इस विचारधारा का श्रेय अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय के शिक्षा शास्त्र के प्रो. जॉन डीवी को है , किन्तु विधि के निर्माण तथा विकास का श्रेय विलियम किल्पैट्रिक को जाता है।

प्रायोजना कार्य में छात्र-छात्राओं को स्वयं कार्य करने के लिए दिया जाता है जो उनके लिए उपयोगी एवं लाभकारी होता है। ज्योतिषशास्त्र में अनेक विषयवस्तुएँ ऐसी है जहाँ छात्रों को प्रायोजना कार्य देकर उनके उत्तरदायित्व की भावना का विकास तथा उनमें एक योजना के अनुरूप कार्य करने की दक्षता का विकास हो सकता है।

प्रायोजना विधि के चरण

१. परिस्थिति का निर्माण

२. प्रायोजना का चयन और उद्देश्य निर्धारण

३. योजना का कार्यक्रम बनाना

४. प्रायोजना को व्यावहारिक रूप देना

५. प्रायोजना का मूल्यांकन

६. प्रायोजना का विवरण

६. समस्याविधि

इस विधि में शिक्षक तथा छात्र मिल कर किसी शैक्षिक समस्या के समाधान के लिए प्रयास करते हैं। सम्पूर्ण कक्षा शिक्षक के मार्गनिर्देशन में समस्या के समाधान के लिए कार्य करते हैं। समस्या के स्वरूप के अनुसार छात्र आवश्यक सूचनाओं, सिद्धान्तों, कारणों आदि का संग्रह करते हैं। तत्पश्चात् उनका संगठन एवं विश्लेषण करते हैं। विश्लेषण के उपरान्त समस्या का समाधान निकालते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समस्या विधि छात्रों को स्वयं सीखने के लिए प्रेरित करती है।

समस्या विधि का प्रयोग जिस प्रकार सुकरात महोदय ने आध्यात्मिक सम्वादों में किया था उसी तरह से ज्योतिष के कतिपय विषयों के अध्यापन में उक्त विधि का प्रयोग करके ज्योतिषशिक्षण को बोधगम्य तथा स्थाई बनाया जा सकता है।

समस्याविधि के चरण

१. समस्या की अभिस्वीकृति

२. कठिनाई की समस्या के रूप में व्याख्या

३. समस्या के समाधान के लिए कार्य करना

- तथ्यों का संग्रह करना
- तथ्यों का संगठन करना
- तथ्यों का विश्लेषण करना

४. निष्कर्ष निकालना

५. निष्कर्षों को प्रयोग में लाना

अध्ययन और अध्यापन की पद्धति में जिस तरह का वर्तमान में

परिवर्तन हुआ है उसी को ध्यान में रखते हुए परम्परागत अध्यापकों में भी अपने शिक्षण में प्रचलित शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

ज्योतिषशिक्षण को रुचिकर, बोधगम्य तथा आकर्षक बनाने हेतु तो उपरोक्त कुछ एक विधियों का प्रयोग तो कुछ विद्वान् अथवा अध्यापक अपने अध्यापनकाल में प्रयोग करते हैं परन्तु यदि उपरोक्त सभी विधियों का प्रयोग विषयवस्तु को ध्यान रखकर किया जाय तो सम्भवतः ज्योतिषशास्त्र के सभी तथ्यों को स्थायी रूप प्रदान किया जा सकता है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

१. ज्योतिषशिक्षणम् – डा. वेदनारायण चौधरी

२. भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री

३. सफल शिक्षण कला – पाठक एवं त्यागी

संस्कृत शिक्षा की पाठ्यचर्या की अभिकल्पना

विपिन शर्मा, शोध छात्र

संस्कृतं संस्कृतेर्मूलं ज्ञानविज्ञानवारिधिः।
वेदतत्त्वार्थसंजुष्टं लोकाऽलोककरं शिवम्॥

सभी भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा, भारत की बहुमूल्य एवं अनुपम सम्पत्ति है। इसके अध्ययन से मानवमात्र को अनुशासन और पवित्र जीवन की आन्तरिक प्रेरणा मिलती है। यह राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधकर समन्वय-संस्कृति की धारा प्रवाहित करने वाली सभी भाषाओं की आत्मा है।

प्राचीन समय में संस्कृत की आवश्यकता जितनी थी, उससे कहीं अधिक संस्कृत की आवश्यकता आज के समय में है। संस्कृत एवं संस्कृति हमारे समाज की धरोहर है। संस्कृत भाषा में ही भारतीय संस्कृति सुरक्षित है। अतः संस्कृत भाषा का ज्ञान कराना अत्यन्त आवश्यक है। संस्कृत भाषा का ज्ञान अथवा संस्कृत शिक्षा बाल्यकाल से ही प्रारंभ की जानी चाहिए जिससे शिक्षा के तीनों स्तरों पर बालक को अपनी संस्कृति का परिचय उनके स्तरानुकूल होता जाए वे अपने संस्कृतियुक्त संस्कारों से एक अच्छे नागरिक बन सकें।

शिक्षा के प्रथम स्तर (प्राथमिक) स्तर पर संस्कृत शिक्षा का उद्देश्य उनको संस्कारित करना है क्योंकि मनुस्मृतिकार ने कहा है-

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तादिह कथ्यते॥

अर्थात् बाल्यकाल में दिए गए संस्कार बालकों में जीवन पर्यन्त सुदृढ़ रहते हैं जिनका आचरण वे आदर्श, सुसंस्कृत भारतीय नागरिक

बनते हैं और इन्हीं महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार करते हुए अब प्रश्न यह उठता है कि संस्कृत जब इतनी महत्त्वपूर्ण भाषा है तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली एवं शैक्षिक पाठ्यक्रम में शिक्षा के स्तरों के अनुकूल उसका क्या स्थान हो क्योंकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में संस्कृत का अध्ययन विभिन्न राज्यों में विभिन्न कक्षाओं में प्रारंभ होता है किन्तु प्रारंभिक विद्यालयों में कहीं पर भी संस्कृत का अध्यापन नहीं होता। यह ठीक भी है क्योंकि प्रारंभिक विद्यालयों में छात्रों को सर्वप्रथम मातृभाषा का अच्छी तरह से ज्ञान कराना चाहिए। मातृभाषा के ज्ञान के आधार पर संस्कृत का अध्ययन सुगम हो जाएगा क्योंकि भारतीय भाषाओं का विकास संस्कृत से ही हुआ है। परन्तु फिर भी प्राथमिक स्तर पर संस्कृत के कुछ मंत्र अथवा श्लोक अवश्य ही कंठस्थ कराए जाने चाहिए ताकि प्रारंभ से ही उनमें संस्कार का बीजारोपण हो सके।

संस्कृत शिक्षा हेतु मुख्यतः २ प्रकार के विद्यालयों की व्यवस्था है-

आधुनिक-विद्यालय एवं शास्त्रीय-विद्यालय। तथा भारतीय शैक्षिक-स्तर तीन वर्गों में विभक्त हैं-

१. प्राथमिक/प्रारंभिक स्तर
२. माध्यमिक स्तर
३. उच्च स्तर

प्राथमिक स्तर से तात्पर्य प्रारंभिक पाठशालाएँ (१, २, ३ इत्यादि) नहीं, बल्कि संस्कृत शिक्षण के प्रारंभिक स्तर से है और इस स्तर के अन्तर्गत कक्षा ६, ७ एवं ८ हैं।

माध्यमिक स्तर में माध्यमिक कक्षाएँ अर्थात् ९, १०, ११ और १२ हैं

तथा उच्च स्तर पर विश्वविद्यालय की अन्तिम परीक्षा तक हो सकती है।

उपर्युक्त तीनों स्तरों पर संस्कृत शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य हैं

जिनके आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया है जो इस प्रकार है–

संस्कृत शिक्षा के संदर्भ में प्राथमिक पाठ्यक्रम का अभिकल्प

प्रारंभिक स्तर अर्थात् कक्षा ६, ७ और ८ के छात्र बाल्यावस्था के अन्तिम भाग या किशोरावस्था में पदार्पण करने की तैयारी में रहते हैं जहाँ पर मानसिक दृष्टि से उसके मन में बड़ी उथल-पुथल मची रहती है, वहाँ पर उन्हें उपयुक्त मार्गदर्शन एवं आदर्शों की आवश्यकता भी पड़ती है। संस्कृत साहित्य ऐसे आदर्शों से भरा पड़ा है, अतः छात्रों को यदि उचित प्रेरणा प्रदान कर दी जाय तो संस्कृत भाषा को बड़ी रुचि से पढ़ेंगे। किन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखने की बात है कि छात्र इस समय संस्कृत को प्रारंभ करते हैं, अतः उनसे बहुत अधिक आशा नहीं करनी चाहिए अपितु इतने से सन्तुष्ट हो जाना चाहिए कि छात्र सरल संस्कृत को पढ़ सकें व उसे समझ सकें। इस स्तर पर संस्कृत शिक्षण हेतु पाठ्यक्रम-निर्माण का अभिकल्पन इस प्रकार है–

१. छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे संस्कृत भाषा में लिखे हुए सरल गद्य खण्डों को शुद्ध-शुद्ध पढ़ सकें।

२. उन्हें इस योग्य बनाना कि वे सरल संस्कृत श्लोकों का शुद्ध उच्चारण करते हुए पाठ कर सकें।

३. उन्हें कुछ महत्त्वपूर्ण श्लोकों को कण्ठस्थ करने की प्रेरणा देना।

४. उन्हें इस योग्य बनाना कि वे संस्कृत के कठिन से कठिन गद्य खण्डों एवं श्लोकों के मुद्रित रूप को देखकर उन्हें ठीक-ठीक अपनी पुस्तिकाओं में लिख सकें।

५. छात्रों में यह योग्यता भी उत्पन्न करना कि वे कण्ठस्थ किए हुए श्लोकों को उनके मुद्रित रूप को देखे बिना शुद्ध-शुद्ध लिख सकें।

६. उन्हें श्रुतिलेख लिखने का अभ्यास करना।

७. उन्हें इस योग्य बनाना कि वे मातृभाषा के सरल वाक्यों का

संस्कृत में अनुवाद कर सकें।

८. संस्कृत के सरल गद्य खण्डों एवं सरल श्लोकों को समझने की योग्यता प्रदान करना।

९. छात्रों को यह योग्यता प्रदान करना कि वे आवश्यकतानुसार सरल संस्कृत वाक्यों एवं श्लोकों का मातृभाषा में अनुवाद कर सकें।

संस्कृत शिक्षा के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का अभिकल्पन

माध्यमिक स्तर पर छात्र प्रारंभिक स्तर पर कक्षा ६, ७ व ८ में संस्कृत को पढ़ चुके होते हैं। उनमें यह योग्यता आ जाती है कि वे संस्कृत के सरल गद्य-खण्डों एवं श्लोकों को शुद्ध-शुद्ध पढ़ सकें। इस स्तर पर छात्रों को संस्कृत साहित्य का भी परिचय देना चाहिए, किन्तु भाषा की शिक्षा इस स्तर पर भी महत्त्वपूर्ण रहेगी। इस स्तर पर पाठ्यक्रम का अभिकल्पन इस प्रकार है–

१. संस्कृत के सरल ही नहीं कठिन गद्य खण्डों को उचित विराम एवं शुद्ध उच्चारण के साथ पढ़ने की क्षमता प्रदान करना जिससे छात्र संस्कृत भाषा में लिखे हुए बड़े से बड़े वाक्यों को भी उचित अन्वितियों में विभक्त करके पढ़ सकें और कहीं ऐसा न हो कि वे 'अस्ति गोदावरी तीरे विशालः शाल्मली तरु' के स्थान पर 'अस्तिगोदावरी तीरेवि शालः ....' जैसा पढ़कर गद्य खण्ड को निरर्थक कर दें।

२. संस्कृत श्लोकों को उचित लय, मात्रा एवं विराम का ध्यान रखकर पढ़ने की योग्यता प्रदान करना जिससे वे मालिनी, शिखरिणी, द्रुतविलम्बित, इन्द्रवज्रा, भुजङ्गप्रयात आदि छन्दों के पाठ में अन्तर कर सकें।

३. संस्कृत के सरल साहित्य से छात्रों को परिचित कराया जाए जिससे वे संस्कृत साहित्य के अक्षय कोष में कुछ रत्न स्वयं प्राप्त कर सकें और आनन्द की अनुभूति कर सकें। यथा– पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा कालिदास की रचनाएँ आदि

४. संस्कृत के महत्त्वपूर्ण श्लोकों को कण्ठस्थ करने की प्रेरणा इस स्तर पर दी जाय ताकि वे मातृभाषा के माध्यम से अपने वार्तालाप में आवश्यकता पड़ने पर अपनी बात की संपुष्टि में एवं वाणी को प्रभावोत्पादक बनाने की दृष्टि से संस्कृत के श्लोकों का उद्धरण दे सकें।

५. संस्कृत साहित्य के सरल अंशों को मातृभाषा में अनूदित करने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे जन-समुदाय को संस्कृत साहित्य के अमृत का पान करा सके।

६. मातृभाषा के सरल अनुच्छेदों एवं सामान्य वाक्यों को संस्कृत में अनूदित करने की योग्यता प्रदान करना।

७. सरल विषयों पर संस्कृत भाषा में कुछ संक्षिप्त निबन्ध के रूप में कुछ वाक्य लिखने की क्षमता प्रदान करना।

८. यदि संभव हो तो संस्कृत में कुछ सरल वाक्यों में बोलने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे अभीष्ट अवसरों पर सरल रीति से संस्कृत भाषा में कुछ वाक्य शुद्ध रूप से बोल सकें।

संस्कृत शिक्षा के सन्दर्भ में उच्च स्तर पर पाठ्यक्रम का अभिकल्पन

उच्च स्तर पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित होने चाहिए—

१. सरल एवं कठिन सभी प्रकार के गद्य-खण्डों को उचित विराम एवं उच्चारण सहित पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करना।

२. सभी प्रकार के श्लोकों का अभीष्ट लय के अनुसार पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।

३. संस्कृत के अगाध साहित्य का अवगाहन करने की क्षमता प्रदान करना।

४. भाषा एवं साहित्य के प्रति अनुसन्धानात्मक दृष्टिकोण प्रदान करना।

५. संस्कृत साहित्य का मातृभाषा में अनुवाद करने की क्षमता प्रदान करना।

६. मातृभाषा के सभी प्रकार के वाक्य साँचों को संस्कृत में अनूदित करने की योग्यता उत्पन्न करना।

७. आवश्यकतानुसार उचित अवसरों पर संस्कृत भाषा में बोलने की क्षमता प्रदान करना।

८. संस्कृत भाषा में पत्र-लेख, निबन्ध-लेखन, संवाद-प्रेषण आदि की योग्यता उत्पन्न करना।

यद्यपि संस्कृत भाषा के पढ़ाने के उद्देश्य निम्न स्तरों पर भिन्न अवश्य हैं, किन्तु मूल रूप में सभी भाषा के कौशलों और साहित्य के आनन्द से सम्बन्धित है। किसी भी भाषा को पढ़ाने में अग्रलिखित मूल उद्देश्य होते हैं–

१. बोलना

२. पढ़ना

३. सुनना

४. लिखना

इन चारों उद्देश्यों के अन्तर्गत भाषा सम्बन्धी अनेक क्रियाओं का ज्ञान कराना आवश्यक हो जाता है। इनमें कुछ क्रियाएँ पहले तथा कुछ बाद में आनी चाहिए। इसीलिए विभिन्न स्तरों पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य भिन्न बनाये गये हैं। जिसे पाठ्यक्रम द्वारा अधिकाधिक छात्रों को संस्कृत का समुचित ज्ञान हो सके और संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य की प्राप्ति भी की जा सके तथा भारतीय संस्कृति जो वस्तुतः संस्कृत साहित्य में सुरक्षित है। इस प्रकार का अलौकिक भाषा का ज्ञान प्राप्त करके संस्कृत छात्र अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने में समर्थ हो सकें।

निष्कर्ष रूप में संस्कृत पाठ्यक्रम में निम्न विषयों पर अवश्य ही ध्यान दिया जाना चाहिए–

१. संस्कृत पाठ्यक्रम में संस्कार, संस्कृति तथा नीतिपरक पाठों/कथाओं आदि को प्रारंभ में ही सम्मिलित किया जाना चाहिए।

२. छात्रों के स्तर एवं रुची का भी पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए।

३. मौखिक पक्ष पर भी उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए।

४. संस्कृत व्याकरण के अध्ययन हेतु विभिन्न विधियों एवं तकनीकियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

५. वर्तमान महापुरुषों के जीवन चरित्रों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

६. आधुनिक ज्ञान विज्ञान संबंधित विषयों को भी पढ़ाया जाना चाहिए।

७. मनोविज्ञान संबंधी विषयों का भी प्राचीन संस्कृत वाङ्मय से उद्धृत श्लोकादि के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए।

संस्कृत शिक्षा का सशक्तिकरण, व्यवसायीकरण–मुद्दे तथा चुनौतियाँ

रतन सिंह, शोध छात्र

संस्कृत भाषा

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम्, समृद्धतम एवं श्रेष्ठतम भाषा है। यह देववाणी सभी आर्य भाषाओं की जननी तथा द्रविड़ भाषाओं की संपोषिका है। इसका साहित्य सरस एवं व्याकरण सुनिश्चित है। इसके गद्य–पद्य में लालित्य, भावबोध सामर्थ्य एवं श्रुतिमाधुर्य विद्यमान है।

चरित्र निर्माण की जैसी सत्प्रेरणा संस्कृत वाङ्मय देता है। वैसा अन्य किसी भाषा का साहित्य नहीं। भारत के सभी सम्प्रदाय, सभी वर्ग, सभी समूह संस्कृत के प्रति आदर का भाव रखते हैं। इसलिए तो इसे देववाणी कहा गया है। हमारे आदर्शों, मान्यताओं एवं मूल्यों का स्त्रोत वही है और उसी ने हमारी परम्पराओं को जन्म दिया है। भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओं से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है, आर्य परिवार की भाषाओं की तो वह जननी है। द्रविड़ परिवार की भाषाओं की भी धात्री है। अतः संस्कृति के प्रति उपेक्षा भारतीयता के प्रति उपेक्षा है। उसका अनादर मतामही का अनादर है। और उसके प्रति राष्ट्र के प्रति प्रेम है।

सुर–सरिता के समान हमारे जीवन में प्राणों का संचार करके जिस भाषा ने हमें देव बना दिया, स्वयं सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने चार वेद रचकर पञ्चम् वेद "नाट्यशास्त्र" के रचयिता भरतमुनि को नाट्य प्रस्तुति के लिए 24 अप्सराएँ दी, देवाधिदेव महेश ने अपने शिष्य तण्डु को देकर जिसमें नृत्य की थिरकन भर दी, जो बीर्वाणवाणी विश्व भाषाओं की जननी बनी, जिसका संस्पर्श आज भी मानव में अलौकिकता भरने में समर्थ है,

इस भाषा के प्रखर स्वरूप को उद्भाषित करने के उद्देश्य से ही यह कृति की जा रही है। किन्तु नई शिक्षा नीति में उस देववाणी की उपेक्षा करके इस राष्ट्र ने अपने ही हाथों अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारी है। हम जिस डाल पर बैठे हैं उसी को काटने में लगे हैं। इससे हमारी जो दुर्गति होने वाली है उसकी कल्पना भी रोमांचित कर देती है। अन्ततः गति हमें अपनी संस्कृति को अपनाने से ही प्राप्त होगी और अपनी संस्कृति का ज्ञान संस्कृत के बिना अधूरा है। इसलिए संस्कृत का ज्ञान हर भारतीय के लिए अनिवार्य है। इससे ही उसकी सर्वतोन्मुखी प्रगति सम्भव है। काश! हमने विगत 200 वर्षों से अंग्रेजी की बन्धभक्ति न की होती तो हमें "जड़ से कट जाने वाले वट वृक्ष" जैसी दुर्गति देखने को न मिलती।

यह परम सन्तोष की बात है कि स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, योगिराज अरविन्द, जयशंकर प्रसाद, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे मनीषियों ने हमें झकझोर कर जगाया और हमें दिव्य स्वरूप का परिचय दिया। हम विश्व-मानवता को उनका दिव्य सन्देश देकर अपनी लोक-प्रतिभा की रक्षा कर सकते हैं। संस्कृत के अध्ययन के बिना यह सम्भव नहीं है।

भारत माता की स्वतन्त्रता, गौरव, अखण्डता और सांस्कृतिक एकता संस्कृत के द्वारा ही सुरक्षित रह सकती है। इसलिए विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालय एवं प्रशिक्षण महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा को सम्मिलित करके इसके अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था की गई है।

संस्कृत भाषा का सशक्तीकरण

संसार की समस्त परिष्कृत भाषाओं में संस्कृत ही प्राचीन है। इस विषय में विद्वानों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। धार्मिक दृष्टि से इसे देववाणी, सुरभारती अथवा गीवार्ण भारती भी कहा जाता है। देवकार्य एवं हिन्दू धर्म से सम्बन्ध रखने वाले सभी शास्त्रों का अवतरण इसी भाषा में हुआ। ऋषियों मुनियों एवं अन्य प्राचीन महापुरुषों के उपदेश

प्रायः इसी भाषा में उपलब्ध होते हैं। साथ ही यह भाषा सरल, सुबोध एवं परिनिष्ठत भी है, जैसा कि दण्डी ने काव्यादर्श में लिखा है–

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाणभारती॥

संसार का प्रमुख एवं प्रथम ज्ञाननिधि ग्रन्थरत्न ऋग्वेद इसी सुरभारती में अवतरित हुआ है। अन्य वेद तथा अध्यात्मपरक समस्त उपनिषद् ग्रन्थों का भी प्रणयन इसी भाषा में हुआ है। स्मृति साहित्य, दर्शनशास्त्र, पुराण, इतिहास, काव्य आदि समस्त साहित्य का अभ्युदय इसी भाषा में हुआ है। भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध तथा लोकाभ्युदय एवं निःश्रेयस के साधक समस्त ज्ञान-विज्ञान परक ग्रन्थों का निर्माण इसी संस्कृत भाषा में हुआ है। इस प्रकार इसकी प्राचीनता एवं व्यापकता स्पष्ट है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से संसार की भाषाओं में दो ही भाषाएं ऐसी हैं जिनके बोलने वालों ने संस्कृति एवं सभ्यता का निर्माण किया है। एक है– "आर्य भाषा" और दूसरी है सामी या "सेमेंटिक भाषा" आर्य भाषा के अन्तर्गत दो विशिष्ट शाखाएं हैं– "पश्चिमी और पूर्वी"। पश्चिमी शाखा के अन्तर्गत यूरोप की सभी प्राचीन तथा आधुनिक भाषाएं सम्मिलित–ग्रीक, लैटिन, प्यूटानिक, फ्रेंच, जर्मन, इंग्लिश आदि से समस्त भाषाएं मूल आर्य भाषा से ही उत्पन्न हुई हैं। पूर्वी भाषा में दो प्रधान विभाग हैं– ईरानी और भारतीय। ईरानी भाषा का नाम "जेन्द अवेस्ता" है, जिसमें पारसियों के मूल धार्मिक ग्रन्थ लिखे गये हैं। भारतीय शाखा में संस्कृत ही सर्वस्व है। आर्य भाषाओं में यही सबसे प्राचीनतम है। आर्य भाषा के मूलरूप को जानने के लिए जितने साधन यहाँ उपलब्ध हैं उतने अन्यत्र कहीं नहीं। भारत की समस्त प्रान्तीय भाषाएं (द्राविणी भाषाओं को छोड़कर) संस्कृत भाषा से ही निकली हैं। भारतीय वर्ग की भाषाओं का मूल वैदिक संस्कृत है। जिसका प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद है अर्थात् ऋग्वेद के मन्त्रों की भाषा ही प्राचीनतम भारतीय भाषा है। और इसी का विकसित रूप लौकिक संस्कृत, प्राकृत आदि उत्तरकालीन भाषायें हैं।

संस्कृत का नामकरण

संस्कृत शब्द "सम्" उपसर्ग पूर्वक "कृ" धातु से बना है। जिसका मौलिक अर्थ है–संस्कार की गई भाषा। इस सम्बन्ध में यह मान्यता है कि देववाणी अति प्राचीनकाल में अत्याकृत थी। अतः इसका उपदेश पहले प्रतिपद पाठविधि से किया जाता था, फलतः उसका अध्ययन कठिन एवं कालसाह्य था। कठिनता के परिहारार्थ देवों की प्रार्थना पर, शब्दवेता भगवान इन्द्र ने देववाणी के प्रत्येक शब्द को विभक्त कर अध्ययन को सरल, सुगम एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया का निर्माण किया था, इन्द्र द्वारा इस प्रकार के प्रकृति प्रत्यय विभागादि के द्वारा पुनः संस्कृत होने से उसी देववाणी का नाम संस्कृत पड़ा। कालान्तर में प्राचीन वैयाकरणों द्वारा प्रकृति प्रत्यय विभागादि रूप भाषा की, इस प्रकार प्रवृत्ति की ओर आगे बढ़ाया तथा वैज्ञानिक रूप से प्रत्येक शब्द का विवेचन प्रस्तुत कर अध्ययन की सुगम रीति निर्धारित की। उक्त प्रकार से संस्कृत होने के कारण ही इस सुरभारती का नाम संस्कृत भाषा पड़ा। भाषा के अर्थ में संस्कृत का प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में पहले पहल मिलता है। सुन्दरकाण्ड में सीताजी से किस भाषा में वार्त्तालाप किया जाये? इसका विचार करते हुए हनुमान जी ने कहा है कि यदि द्विज के समान मैं संस्कृत वाणी बोलूंगा तो सीताजी मुझे रावण समझकर डर जाएगी। यास्क और पाणिनि के ग्रन्थों में लोक व्यवहार में आने वाली बोली का नाम केवल भाषा है। संस्कृत शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं मिलता। जब भाषा का सर्वसाधारण में प्रचार कम होने लगा तो पालि तथा प्राकृत भाषाएं बोलचाल की भाषाएं बन गईं, तब जान पड़ता है कि विद्वानों ने प्राकृत भाषा से भेद दिखलाने के लिए इसका नाम संस्कृत भाषा दे दिया।

संस्कृत साहित्य के दो रूप हैं–प्रथम उसका वैदिक रूप तथा द्वितीय उसका लौकिक रूप है। वैदिक साहित्य इस बात का प्रमाण है कि भारतीय समाज का चरम लक्ष्य सत्य एवं शाश्वत आनन्दोपलब्धि रहा है। विषम से विषम परिस्थितियों में भी इसी परम आनन्द की प्राप्ति में निरत रहा है। अन्य सांसारिक जीवनोपयोगी पदार्थ उसके लिए गौण पर

प्रायः इसी भाषा में उपलब्ध होते हैं। साथ ही यह भाषा सरल, सुबोध एवं परिनिष्ठत भी है, जैसा कि दण्डी ने काव्यादर्श में लिखा है–

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीवार्णभारती।।

संसार का प्रमुख एवं प्रथम ज्ञाननिधि ग्रन्थरत्न ऋग्वेद इसी सुरभारती में अवतरित हुआ है। अन्य वेद तथा अध्यात्मपरक समस्त उपनिषद् ग्रन्थों का भी प्रणयन इसी भाषा में हुआ है। स्मृति साहित्य, दर्शनशास्त्र, पुराण, इतिहास, काव्य आदि समस्त साहित्य का अभ्युदय इसी भाषा में हुआ है। भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध तथा लोकाभ्युदय एवं निःश्रेयस के साधक समस्त ज्ञान-विज्ञान परक ग्रन्थों का निर्माण इसी संस्कृत भाषा में हुआ है। इस प्रकार इसकी प्राचीनता एवं व्यापकता स्पष्ट है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से संसार की भाषाओं में दो ही भाषाएं ऐसी हैं जिनके बोलने वालों ने संस्कृति एवं सभ्यता का निर्माण किया है। एक है– "आर्य भाषा" और दूसरी है सामी या "सेमेंटिक भाषा" आर्य भाषा के अन्तर्गत दो विशिष्ट शाखाएं हैं– "पश्चिमी और पूर्वी"। पश्चिमी शाखा के अन्तर्गत यूरोप की सभी प्राचीन तथा आधुनिक भाषाएं सम्मिलित–ग्रीक, लैटिन, प्यूटानिक, फ्रेंच, जर्मन, इंग्लिश आदि से समस्त भाषाएं मूल आर्य भाषा से ही उत्पन्न हुई हैं। पूर्वी भाषा में दो प्रधान विभाग हैं– ईरानी और भारतीय। ईरानी भाषा का नाम "जेन्द अवेस्ता" है, जिसमें पारसियों के मूल धार्मिक ग्रन्थ लिखे गये हैं। भारतीय शाखा में संस्कृत ही सर्वस्व है। आर्य भाषाओं में यही सबसे प्राचीनतम है। आर्य भाषा के मूलरूप को जानने के लिए जितने साधन यहाँ उपलब्ध हैं उतने अन्यत्र कहीं नहीं। भारत की समस्त प्रान्तीय भाषाएं (द्राविणी भाषाओं को छोड़कर) संस्कृत भाषा से ही निकली हैं। भारतीय वर्ग की भाषाओं का मूल वैदिक संस्कृत है। जिसका प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद है अर्थात् ऋग्वेद के मन्त्रों की भाषा ही प्राचीनतम भारतीय भाषा है। और इसी का विकसित रूप लौकिक संस्कृत, प्राकृत आदि उत्तरकालीन भाषायें हैं।

संस्कृत का नामकरण

संस्कृत शब्द "सम्" उपसर्ग पूर्वक "कृ" धातु से बना है। जिसका मौलिक अर्थ है–संस्कार की गई भाषा। इस सम्बन्ध में यह मान्यता है कि देववाणी अति प्राचीनकाल में अत्याकृत थी। अतः इसका उपदेश पहले प्रतिपद पाठविधि से किया जाता था, फलतः उसका अध्ययन कठिन एवं कालसाह्य था। कठिनता के परिहारार्थ देवों की प्रार्थना पर, शब्दवेता भगवान इन्द्र ने देववाणी के प्रत्येक शब्द को विभक्त कर अध्ययन को सरल, सुगम एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया का निर्माण किया था, इन्द्र द्वारा इस प्रकार के प्रकृति प्रत्यय विभागादि के द्वारा पुनः संस्कृत होने से उसी देववाणी का नाम संस्कृत पड़ा। कालान्तर में प्राचीन वैयाकरणों द्वारा प्रकृति प्रत्यय विभागादि रूप भाषा की, इस प्रकार प्रवृत्ति की ओर आगे बढ़ाया तथा वैज्ञानिक रूप से प्रत्येक शब्द का विवेचन प्रस्तुत कर अध्ययन की सुगम रीति निर्धारित की। उक्त प्रकार से संस्कृत होने के कारण ही इस सुरभारती का नाम संस्कृत भाषा पड़ा। भाषा के अर्थ में संस्कृत का प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में पहले पहल मिलता है। सुन्दरकाण्ड में सीताजी से किस भाषा में वार्त्तालाप किया जाये? इसका विचार करते हुए हनुमान जी ने कहा है कि यदि द्विज के समान मैं संस्कृत वाणी बोलूंगा तो सीताजी मुझे रावण समझकर डर जाएगी। यास्क और पाणिनि के ग्रन्थों में लोक व्यवहार में आने वाली बोली का नाम केवल भाषा है। संस्कृत शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं मिलता। जब भाषा का सर्वसाधारण में प्रचार कम होने लगा तो पालि तथा प्राकृत भाषाएं बोलचाल की भाषाएं बन गईं, तब जान पड़ता है कि विद्वानों ने प्राकृत भाषा से भेद दिखलाने के लिए इसका नाम संस्कृत भाषा दे दिया।

संस्कृत साहित्य के दो रूप हैं–प्रथम उसका वैदिक रूप तथा द्वितीय उसका लौकिक रूप है। वैदिक साहित्य इस बात का प्रमाण है कि भारतीय समाज का चरम लक्ष्य सत्य एवं शाश्वत आनन्दोपलब्धि रहा है। विषम से विषम परिस्थितियों में भी इसी परम आनन्द की प्राप्ति में निरत रहा है। अन्य सांसारिक जीवनोपयोगी पदार्थ उसके लिए गौण पर

परमानन्दोपलब्धि ही एकमात्र जीवन का लक्ष्य रहा है। धार्मिक सहिष्णुता, आशावादिता और आध्यात्मिकता ही उसका जीवन था। यही कारण है कि वैदिक संस्कृत साहित्य का मुख्य प्रतिपाद्य रस या आनन्द ही देखा जाता है। तपः पूत भारतीय ऋषियों का जीवन जो कि वैदिक साहित्य में प्रस्फुटित हुआ है। इसका प्रमाण है कि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य-संहिता, ब्राह्मण आख्यान और उपनिषद्-इसी परम सत्य आनन्द साधनपरक भारतीय जीवन की ओर संकेत करता है। आध्यात्मिक भावाभूत भारतीय जनमानस का साक्षात् प्रतिबिम्ब इस प्राचीन वैदिक साहित्य में देखा जा सकता है।

न केवल वैदिक साहित्य ही लौकिक साहित्य भी जो कि इसी वैदिक साहित्य का विकसित रूप है। भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। भारतीय संस्कृति का वही उदात्त स्वरूप आध्यात्मिक भावना और वही पूत विचारधारा लौकिक संस्कृत साहित्य में भी प्रवाहित हुई है। न केवल नाटकों, काव्यों में ही साधारण से साधारण आख्यानों में भी तप, त्याग, दया, उदारता, सत्य, दान, परमानन्द, आशावादिता, धार्मिकता, आदि विशिष्ट गुणों से अनुप्राणित भारतीय संस्कृति का वही भव्य रूप देखने को मिलता है। इस लौकिक साहित्य की आत्मा भी रस या आनन्द है। और रसानुभूति ही इस साहित्य का चरम उद्देश्य है। वाल्मीकि और व्यास रचित रामायण और महाभारत में तो यह बात प्रत्यक्ष भी है। कालिदास, भवभूति, भारवि, बाण, दण्डी और अन्य कवियों की रचनाओं में भी वही भारतीय संस्कृति और शिष्टाचार दृष्टिगोचर होता है। यह बात दूसरी है कि इन काव्यों और आख्यानों में वह विविध चरित्रों और विचित्र-विचित्र कथाओं में अलंकृत परिवेश में अवतरित हुई है। पर उसकी आत्मा वही है जोकि हमें वैदिक साहित्य में देखने को मिलती है। इन कवियों ने प्रकृति के माध्यम से विविध रंगीन कल्पनाओं एवं नवीन उद्भावनाओं द्वारा सजाकर उसी भारतीय प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचारों का बाह्य रूप ही कुछ नवीन ढंग से संवारा गया है। इनकी अन्तरात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं है। अपितु कलात्मकता के आवरण में उसका रूप और भी निखर गया है। भारतीय समाज में जो आज इन कवियों को आदर की दृष्टि से देखा जाता है और भारतीय जनमानस में जो इन मनीषियों

को इतनी बड़ी श्रद्धा एवं रुचि है, इसका कारण भी इनकी रचनाओं द्वारा भव्य संस्कृति के स्वरूप का प्रस्तुतीकरण ही है। अतः स्पष्ट है कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति एवं समाज का आदर्श है। आज विश्व में भारतय संस्कृति साहित्य का जो इतना महत्त्व है इसका कारण भी इस साहित्य की आध्यात्मिक भावना, धार्मिक साहिष्णुता, उदात्त भावना, सांस्कृतिक चेतना एवं कलात्मकता है। और कला की मनोज्ञता के साथ-साथ भारतीय समाज का आदर्श है।

मुद्दे

संस्कृत भाषा के मुद्दे निम्नलिखित हैं।

- भारतीय दर्शन
- भूगोल एवं खगोल
- ज्योतिष
- गणित
- चिकित्सा विज्ञान
- प्राकृतिक विज्ञान
- यन्त्र विज्ञान
- सामाजिक क्षेत्र
- भाषा विज्ञान तथा व्याकरण
- विधि के क्षेत्र में
- कामशास्त्र के क्षेत्र
- संगीत का क्षेत्र
- पुराण युग में
- साहित्य क्षेत्र इत्यादि।

चुनौतियाँ

संस्कृत भाषा में लगातार दिन प्रतिदिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कहीं-कहीं पर इन चुनौतियों का सामना करते हुए संस्कृत भाषा पर काफी हद तक असर पड़ता है। ये चुनौतियाँ संस्कृत भाषा को डावाडोल कर देती हैं। चुनौतियाँ इस प्रकार से संस्कृत भाषा को प्रभावित करती हैं कि संस्कृत भाषा का विस्तार किया जाए या नहीं, इसके पीछे तीन मत हैं। जो इस प्रकार है-

प्रथम मत

प्रथम मत उन शिक्षाशास्त्रियों का है जो संस्कृत को अतीत की व मृत भाषा समझते हैं। इनके अनुसार संस्कृत का अध्ययन, अध्यापन करना समय को नष्ट करना है। यह केवल ब्राह्मणों की भाषा है और जिसके अध्ययन की आवश्यकता केवल कर्मकाण्ड सीखने के लिए होती है।

मत का खण्डन

इस मत के समर्थक विद्वानों की सम्मति पूर्वाग्रह व द्वेष की भावना से ग्रस्त प्रतीत होती है। उनके मत पर दूषित राजनीति का दुष्प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। संस्कृत भाषा की क्या महत्ता है? संस्कृत भाषा एवं साहित्य का अध्ययन क्यों आवश्यक है? इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए कुछ विद्वद्वरेण्यों द्वारा अभिव्यक्त विचारों एवं सम्मतियों का अवलोकन कर लेना समीचीन रहेगा, जिन्हें अधोलिखित बिन्दुओं में भली-भांति समझा जा सकता है-

(i) भौतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा में समन्वय के लिए अनिवार्य।

(ii) राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने के लिए।

(iii) संस्कृत सभी भारतीयों की भाषा है।

(iv) समानता एवं समाजवाद की स्थापना में सहायक।

(v) जीवित भाषा।

(vi) भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का स्रोत।

उपरोक्त कथनों, वक्तव्यों (बिन्दुओं) से स्पष्ट है कि भारतीय विद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा एवं साहित्य को उचित स्थान देना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

द्वितीय मत–

पाठ्यक्रम में संस्कृत का स्थान क्या हो? इस सम्बन्ध में द्वितीय वर्ग उन शिक्षाविदों का है, जो संस्कृत को पाठ्यक्रम में वैकल्पिक विषय के रूप में सम्मिलित करने पर बल देते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि संस्कृत को उन्हीं लोगों को पढ़ानी चाहिए जो उसे पढ़ना चाहें। जो उसे न पढ़ना चाहें, उन्हें बलपूर्वक इसको पढ़ने के लिए बाध्य नहीं किया जाए। जहाँ तक सम्भव हो पाठ्यक्रम में संस्कृत की अपेक्षा आधुनिक विषयों को अधिक महत्त्व दिया जाए। इस प्रकार द्वितीय मत के विद्वान् संस्कृत के प्रति अतीव उदासीनता का भाव रखते हैं। वे इसके प्रचार–प्रसार के लिए कुछ भी न करने की सलाह देते हैं। ये चुनौतीपूर्ण कार्य संस्कृत भाषा के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है।

तृतीय मत–

संस्कृत भाषा के पाठ्यक्रम में संस्कृत के स्थान के विषय में प्रस्तुत तृतीय मत के अन्तर्गत उन शिक्षाविदों को सम्मिलित किया जाता है। जो संस्कृत को अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर बल देते हैं उनका मत है कि संस्कृत प्राचीन भाषा होने के साथ–साथ एक आधुनिक भाषा भी है। देश भर में संचालित पाठशालाओं में आज भी संस्कृत भाषा के माध्यम से ही शिक्षा दी जाती है।

संस्कृत भाषा एवं साहित्य के उच्च अध्ययन के लिए भी कई संस्कृत विश्वविद्याल देश के विभिन्न भागों में स्थापित किए गए हैं– पुरी, वाराणसी तथा दरभंगा, श्री लालबहादुर शास्त्री रा.सं.सं. (नई दिल्ली) के संस्कृत विश्वविद्यालय उनमें से प्रमुख हैं। संस्कृत भाषा के महत्त्व को देखते हुए देश में ही नहीं, अपितु विदेशों के विश्वविद्यालयों में भी संस्कृत के अध्ययन एवं अध्यापन की व्यवस्था की गई है।

आज इस भाषा में कई पत्रिकाएं भी प्रकाशित हो रही हैं। ज्योतिष, आयुर्वेद, दर्शन, योग आदि विषयों की बढ़ती लोकप्रियता ने संस्कृत भाषा के अध्ययन को अत्यावश्यक बना दिया है, अत: इसे पाठ्यक्रम में अनिवार्य विषय के रूप में प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। साथ ही भारत को एकता के सूत्र में बांधने व अपनी सांस्कृतिक परम्परा को समझने की दृष्टि से भी संस्कृत अनिवार्य रूप में पढ़ाई जानी चाहिए।

अत: इन सभी चुनौतियों का सामना करते हुए संस्कृत भाषा ने कई चरणों को पार किया और इन चुनौतियों का सामना करते हुए अपने यौवन को प्राप्त कर ही लिया।

संस्कृत का पाठ्यक्रम

संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए संस्कृत का पाठ्यक्रम कैसा हो? यह एक प्रमुख प्रश्न है। पाठशाला प्रणाली का पाठ्यक्रम कुछ ऊँचा स्तर वाला होता है। स्कूलों में संस्कृत का अध्ययन इतना गहन नहीं हो पाता है। अत: पाठ्यक्रम रचना के साधारण नियम निम्नलिखित हो सकते हैं–

(i) पाठ्यक्रम स्वत: सम्पूर्ण होना चाहिए।

(ii) पाठ्यक्रम में उच्चारण, श्रवण, पठन-पाठन सभी कार्यों का समावेश हो।

(iii) छात्रों के पूर्व ज्ञान को दृष्टि में रखा जाए।

(iv) विषय सामग्री यथा सम्भव छात्रों के वातावरण से ली जानी चाहिए।

(v) पाठ्यक्रम छात्रों के स्तर के अनुरूप हो।

(vi) संस्कृत का पाठ्यक्रम ऐसा हो ताकि इतिहास आदि अन्य विषयों के साथ इसका सामंजस्य हो सके।

(vii) पाठ्यक्रम वर्गीकृत होना चाहिए।

इस प्रकार संस्कृत पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो छात्रों की रुचि, स्तर व वातावरण के अनुरूप हो। वह छात्रों को अनावश्यक भार प्रतीत न

हो तथा इतना सरल व संक्षिप्त भी न हो कि छात्रों द्वारा अनादृत हो जाए।

प्राथमिक माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का व्यवसायीकरण

प्राथमिक माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का व्यवसायीकरण बहुत ही जरूरी माना गया है इस स्तर के पाठ्यक्रम में छात्रों को व्यवसाय से संबंधित कई प्रकार के पाठ्यक्रमों में व्यवसाय का चयन कराया जाता है। इस स्तर के छात्रों को अपनी रुचि, अभिरुचि के व्यवसाय संबंधी पाठ्यक्रम चुने जाते हैं जैसे इन पाठ्यक्रमों में कृषि, गृह–विज्ञान, कम्प्यूटर शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, प्रबन्धन इत्यादि। इन पाठ्यक्रमों को छात्रों के सम्मुख रखकर वे छात्र अपने भावी जीवन की तैयारी करते हैं तथा आगे आने वाले समय में अपने आपको अपनी पसंद का व्यवसाय चुनने में मदद करते हैं।

अतः इस प्रकार प्राथमिक माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का व्यवसायीकरण बहुत अहम् भूमिका निभाता है। पाठ्यक्रम का व्यवसायीकरण हर छात्र के लिए एक अहम पहलू है इससे छात्र अपने भावी जीवन की तैयारी कर अपने आगे आने वाले समय में अपने आपको अपने व्यवसाय के प्रति सजग रखेंगे। आज इस तकनीकी युग में व्यवसायीकरण की लहर दौड़ रही है। जो हमारे विद्यालय के पाठ्यक्रम में अहम् भूमिका निभाता है।

प्राथमिक माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम के मुद्दे

पाठ्यक्रम का नियोजन शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम के स्वरूप को निश्चित करने हेतु शिक्षा के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को सामने रखना पड़ता है। उद्देश्य दर्शन से प्राप्त होते हैं। जैसे शिक्षा के उद्देश्य होते हैं उन्हीं के अनुकूल पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जाती है यदि ऐसा न किया जाए तो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति दुर्लभ हो जाए। शिक्षा के उद्देश्य देश, काल तथा समाज को दार्शनिक तथा सामाजिक विचारधाराओं के अनुसार बदलते रहते हैं। वस्तुतः पाठ्यक्रम की रूपरेखा में भी परिवर्तन होता रहता है। इसलिए

यदि यह कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा कि– "किसी देश की शिक्षा का पाठ्यक्रम उस देश की नीति तथा विचारधारा के अनुसार निश्चित होता है।" ऐतिहासिक पर्यवेक्षण से इस विचार की सत्यता पूर्णतया सिद्ध हो जाती है। "प्राचीनकाल में स्पार्टा की शिक्षा का उद्देश्य राज्य की रक्षा करना था।"

अत: उनके पाठ्यक्रम में "खेलकूद, शारीरिक व्यायाम, कुश्ती, कृत्रिम युद्ध, सैनिक शिक्षा इत्यादि की प्रधानता थी।" एथेंस निवासी व्यक्तित्व के विकास के पक्षपाती थे। उनके राष्ट्र में व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुसार उन्नति करने की स्वतंत्रता थी। अत: वहाँ शिक्षा के पाठ्यक्रम में विभिन्न कलाओं को प्रधानता दी गई थी। भारतवर्ष में भी वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक परिस्थिति काल, विचार तथा आदर्शानुकूल पाठ्यक्रम के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। जो आज हमारे देश की पाठशालाओं का Curriculum है। वह दो हजार वर्ष पूर्व न था और जो विषय गुरुकुलों में पढ़ाए जाते थे वे आाज की पाठशालाओं में नहीं पढ़ाए जाते। इनका मुख्य कारण यही है कि आज हमारे जीवन का लक्ष्य तथा शिक्षा का उद्देश्य पुराने ऋषियों से भिन्न है। अतएव हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि शिक्षा के पाठ्यक्रम का स्वरूप देश की शिक्षा के आदर्शानुकूल निश्चित किया जाता है। और शिक्षा के उद्देश्य बदल जाने पर पाठ्यक्रम स्वरूप भी बदल जाता है। और इसके अतिरिक्त एक ही काल में दो भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की शिक्षा पाठ्यक्रमों में विभिन्नता पाई जाती है। क्योंकि एक ही काल में दो भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की शिक्षा के पाठ्यक्रमों में विभिन्नता पाई जाती है। क्योंकि एक ही काल में दो भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के जीवन तथा शिक्षा के उद्देश्य भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इंग्लैंड, रूस, अमेरिका तथा भारतवर्ष की आज की पाठशालाओं के पाठ्यक्रम का जब हम अध्ययन करते हैं तो इस कथन की सत्यता स्पष्ट हो जात है।

आज हमारे देश के कर्णधार तथा शिक्षाशास्त्री हमारे जीवन तथा

देश के नये-नये लक्ष्यों के अनुकूल शिक्षा के पाठ्यक्रम के प्रारूप बनाने में प्रयत्नशील हैं। स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम का नियोजन देश की सामाजिक दार्शनिक तथा राजनीतिक विचारधाराओं पर आधारित होता है। शिक्षाशास्त्रियों ने पाठ्यक्रम का दर्शनिक आधार, सामाजिक आधार, मनोवैज्ञानिक आधार आदि अनेक पाठ्यक्रम आधारों का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है, जिससे छात्रों को पाठ्यक्रम के विषय में अच्छे ढंग से ज्ञान प्राप्त हो सके।

पाठ्यक्रम का मूल्यांकन

शिक्षा राज्य का विषय होने के कारण विभिन्न प्रांतों में विद्यालय शिक्षा का पाठ्यक्रम प्रांतीय सरकारों द्वारा नियत विद्यालय शिक्षा बोर्डों द्वारा ही तय किया जाता है। कुछ माध्यमिक विद्यालय केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् से अपने आपको संबंधित करा लेते हैं। उनमें इस परिषद् द्वारा विकसित पाठ्यक्रम का अनुगमन किया जाता है। पाठ्यक्रम पर अगर गंभीरता से विचार किया जाये तो इसमें विषयवस्तु, क्षेत्र, उद्देश्य तथा उद्देश्य पूर्ति हेतु किए गए मार्ग-दर्शन को लेकर जो कमियाँ नजर आती हैं उनका वर्णन इस प्रकार है–

(i) पाठ्यक्रम में विस्तृत अनुभवों की कमी।

(ii) पाठ्यक्रम में पर्यावरण केन्द्रिता का अभाव है।

(iii) पाठ्यक्रम दैनिक जीवन की आवश्यकताओं से संबंधित नहीं है।

(iv) राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय भावों के पोषण में असमर्थ है।

(v) पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ध्यान नहीं रखा गया है।

(vi) पाठ्यक्रम में शिक्षण विधियों, शिक्षण सामग्री, मूल्यांकन आदि का उचित उल्लेख।

(vii) लचीलेपन का अभाव।

(viii) पाठ्यक्रम व्यावहारिक न होकर सैद्धान्तिक है।

(ix) क्रियाशीलता एवं रुचि संबंधी सिद्धांतों का ध्यान नहीं रखा गया है।

(xi) पाठ्यक्रम में प्रकरणों, विषयवस्तु एवं अनुभवों का उचित एकीकरण व समन्वय नहीं है।

इस तरह से देखा जाए तो माध्यमिक कक्षाओं के लिए निर्मित वर्तमान पाठ्यक्रम शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों की ठीक प्रकार से असफल ही प्रतीत होता है। बालकों का आगामी जीवन के लिए तैयार करने, सामाजिक प्रगति को समझने और उसमें अपना योगदान देने तथा एक उत्तरदायित्वपूर्ण सामाजिक जीवन बिताकर मानवीय मूल्यों की स्थापना में सहयोग देने का जो आदर्श सभी विषयों के शिक्षण द्वारा पूरा हो सकता है। उसे सार्थक बनाने में यह असमर्थ है। अत: इसमं पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है जिसके लिए मोटे तौर पर सुझाव की आवश्यकता होती है।

सुझाव

(i) पाठ्यक्रम विषय केंद्रित न होकर बाल केंद्रित होना चाहिए।

(ii) पाठ्यक्रम में वातावरण केंद्रिता–क्रियाशीलता, रुचि, जीवन के प्रति संबद्धता, समवाय, लचीलापन आदि सिद्धान्तों का पर्याप्त अनुसरण किया जाना चाहिए।

(iii) पाठ्यक्रम में सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों का ही उचित समन्वय एवं तालमेल रहना चाहिए।

(vi) पाठ्यक्रम निर्माण समिति द्वारा विषयों के शिक्षण के उद्देश्यों का पूरी तरह मनन और विश्लेषण कर ही पाठ्यक्रम निर्माण किया जाना चाहिए।

(v) पाठ्यक्रम निर्माण समिति में अनुभवी अध्यापकों, शिक्षा विशारदों तथा समाजशास्त्रियों को उचित प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(vi) पाठ्यक्रम समय और साधनों को ध्यान में रखकर निर्मित किया जाना चाहिए।

(vii) पाठ्यक्रम बोझिल न होना चाहिए।

(viii) पाठ्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षण–विधियों, शिक्षण–सामगी तथा मूल्यांकन संबंधी आवश्यक बातों का भली–भाँति उल्लेख किया जाना चाहिए।

संस्कृत शिक्षा एवं शैक्षिक प्रबन्धन तथा अनुसंधान

साहित्य समाज का दर्पण होता है। किसी देश का, राष्ट्र का, समाज का वास्तविक चित्रण उसके साहित्य के द्वारा ही होता है। अत: किसी भी समाज का परिचय प्राप्त करने के लिए हमें उसके साहित्य का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। इसी प्रकार भारतवर्ष का परिचय प्राप्त करने के लिए संस्कृत साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। पुरातन काल में संस्कृत को केवल एक जाति विशेष की भाषा माना जाता था। तथा इसका महत्त्व केवल कर्मकाण्ड या धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित कर दिया गया था। परन्तु आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत के महत्त्व को अंकित किया जा चुका है।

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है। अत: ऋग्वेद ही विश्व का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। संसार के अन्य क्षेत्रों में जिस समय सांकेतिक भाषा हो रही थी उस समय भारत में संस्कृत का प्रसार हो रहा था। संस्कृत भाषा का इतिहास अत्यधिक लम्बा है तथा इसे तीन स्तरों में विभक्त किया जा सकता है।

सर्वाधिक प्राचीन काल को वैदिक काल कहा जाता है। यह प्रारम्भ से लेकर 700 ई.पू. कहा जाता है। इस समय ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अर्थवेद की रचना हुई। वैदिक साहित्य में वेदों की रचना के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई। ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद आरण्यक तथा उपनिषद की रचना हुई।

लौकिक साहित्य वैदिक साहित्य के बाद का काल है। वाल्मीकि की रामायण से लेकर अधुनातन रचनाएं इसमें परिगणित की जा सकती हैं। इस साहित्य में रामायण, महाभारत, अठारह पुराण, भास, कालिदास,

अश्वघोष, माघ, भारवि, श्री हर्ष तथा अन्य अनेक विश्वविख्यात कवियों ने अपनी उत्कृष्टतम मौलिक देन पद्य साहित्य को दी। रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, शतकत्रय, गीतगोविन्द आदि ग्रन्थ रत्न विश्वसाहित्य की अमूल्य निधि हैं।

शैक्षिक प्रबन्धन

उद्योग, व्यापार तथा शिक्षा जैसे क्षेत्र में प्रबन्धन का अपना महत्त्व है। प्रबन्धन के द्वारा समस्त मानवीय एवं भौतिक संसाधनों की व्यवस्था तथा उनका अधिकतम उपयोग किया जाता है। इससे कार्य प्रणाली में गति आती है। संसाधनों का मितव्ययतापूर्ण उपयोग होता है तथा उद्देश्यों की पूर्ति सहजता के साथ हो जाती है। प्रबन्धन ही वह तत्त्व है जिसके द्वारा हम पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को कम से कम समय तथा परिश्रम के साथ प्राप्त कर सकते हैं। उद्योगों में प्रबन्धन को इसी अर्थ में लिया जाता है। किन्तु **डेविस** ने इसका प्रयोग उद्योगों से लेकर शिक्षण तथा अधिगम के क्षेत्र में भी किया है। इस प्रकार प्रबन्धन या व्यवस्था प्रत्यय का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ है। प्रबन्धन के द्वारा शिक्षण तथा अधिगम के क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ है। प्रबन्धन के द्वारा शिक्षण तथा अधिगम के लिए न केवल मानवीय तथा भौतिक संसाधनों की व्यवस्था ही की जाती है। अपितु उनमें इस प्रकार का परस्पर समन्वय किया जाता है जिससे वांछित उद्देश्यों की सहज प्राप्ति हो सके।

प्रबन्धन के द्वारा ही हम विभिन्न अधिकारियों तथा व्यक्तियों के उत्तरदायित्व तथा उनके स्थिति क्रम का निर्धारण भी करते हैं। प्रबन्धन किसी भी संगठन (चाहे वह औद्योगिक जगत से सम्बन्धित हो या शिक्षा जगत से) का मस्तिष्क कहलाता है। यही नीति निर्धारण का कार्य करता है। तथा उनके क्रियान्वयन की व्यवस्था करता है। यही भविष्य के लिए योजना निर्माण का कार्य भी करता है। कहा भी गया है– "प्रबन्धन सतत् निर्णय-निर्माण में लगा रहता है। तथा उनके क्रियान्वयन के प्रयास करता है।"

अनुसंधान

जहाँ तक अनुसंधान का प्रश्न है, इसके लिए हमें सर्वप्रथम ज्ञान

की आवश्यकता होती है। व्यक्ति अपने ज्ञान के आधार पर ही अनुसंधान कार्य पूरा कर पाता है। अनुसंधान का कार्य पूरा होने पर इनके परिणाम हमारे ज्ञान में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार अनुसंधान तथा ज्ञान एक-दूसरे के सहायक हैं। तथा परस्पर निर्भरता करते हैं।

व्यक्ति अपनी बुद्धि तथा अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करता है। सामान्य रूप से तथ्यों तथा सिद्धांतों की जानकारी ही ज्ञान का आधार होती है। जिज्ञासा, कौतूहल, शिक्षण, परिश्रम, मनन आदि ज्ञान के भण्डार को बढ़ाने में व्यक्ति की सहायता करते हैं। व्यक्ति के पास ज्ञान की मात्रा ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है। उसकी और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की ललक भी बढ़ती है। इसी ललक में वह ज्ञान प्राप्त करने के लिए सुनियोजित तथा व्यवस्थित प्रयास करता है। ये प्रयास ही अनुसंधान का रूप धारण करते हैं। अनुसंधान करने से जो परिणाम तथा निष्कर्ष निकलते हैं। वे पुनः व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार ज्ञान तथा अनुसंधान की यही श्रृंखला अनवरत चलती रहती है।

अब प्रश्न उठता है कि पहले ज्ञान के लिए अनुसंधान आवश्यक है या पहले अनुसंधान के लिए ज्ञान आवश्यक है। इस समस्या का सीधा सा उत्तर है कि पहले ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। ज्ञान के आधार पर ही और अधिक सत्य ज्ञान या प्रमाणिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुसंधान आवश्यक है।

Sanskrit Language : Challenges and Solutions

Dr. Rajani Joshi Chaudhary
Associate Professor
Sri Lal Bahadur Shashtri Rashtriya
Sanskrit Vidyapeetha, New Delhi

Sanskrit is the ancient literary and classical language of India. It is the language of our *Sanskriti*. It is rich in spirituality and gives us power to live with positive thoughts. Sanskrit develops many ethical thoughts such as *Vashudev kutumbkam, Sarvey Bhavantu Sukhinah, Sanghchachha-dhavam, Sankadadhavam Asatomasatgamay, Tamsoma jyotirgama, Satyamev Jayatey and others*. The growing influence of technology on human behaviour especially moral and ethical is being challenged by its own foundational instability and its unforeseen ramifications. We are experiencing dilemmas between the global and the local, the universal and the individuals, long term and short term visions, competition and *satiation,* the equality of opportunities - spiritualism versus materialism, traditional versus modern. But, at the same time, due to the development of ICT, we are coming closer to each other around the world. Our national boundaries have become permeable for movements of cultures thus we can now exchange our ideas, theories, knowledge, values and culture with each other. In the same way we can share and learn languages amongst different countries. But Sanskrit, which is supposed to be the mother of all languages, spiritually and ethical, rich with sound scientific grammar has not been very popular and widely accepted by our people, specially, the younger generation.

Challenges-

Sanskrit is the ancient literatres and classical language of our country. It is desirable that every citizen of India know about our ancient language and should be able to interact in this language. We are not only handicapped to speak, read and write, we are becoming ignorant about our ancient sound and ethical language. Moreover our children are preferring to opt foreign languages to learn at school or college level. People especially the younger generation of the country are developing lack of awareness of this ancient language. Our policies are also ignoring our ancient and classical literature and not motivating the people of the country to know and learn Sanskrit. Hence, today we have to face challenges in making it popular among Indians (*Jan Jan ki Vani*) and expansion of the Language over the globe. Some of the challenges are given below-

1. No Compulsion for Studying Sanskrit as foundation Course-

There is no compulsory course for schools for knowing the Indian language. Since Sanskrit is ancient and classical language of our nation, there is no such policy of education where Sanskrit is as compulsory foundation course at any level of education for our students.

2. The lack of Awareness about literature in Sanskrit-

We, the Indians ourselves are un-aware of our literature of Sanskrit. We teach our students about Hindi and English subjects as languages. The medium of instructions are also Hindi or English, although, Sanskrit is as optional subject in few schools. Only those students as who study in Gurukuls, know about Sanskrit and can speak in Sanskrit,as they are taught in Sanskrit medium. However the number is very few.

3. Tendency to Restrict Knowledge of Sanskrit only to Few People.

As there is no compulsion to learn Sanskrit at primary level or any level, we are not aware about beauty and importance of this language and we are unable to develop interest in this language also don't want to choose this language as option due to lack of opportunities in the job market. Thus, only few people are learning and teaching Sanskrit.

4. No acceptance of Sanskrit as Optional language-

Nowadays there is trend of globalization hence parents and students are opting foreign languages as optional languages. It is appreciable to learn other than own country language keeping in view the opportunities in foreign. It appears ironical that a citizenge and ancient language.

5. No fun while learning and No Website for e-learning-

There are no attractive methods for teaching Sanskrit to students. We are still teaching Sanskrit in old Patterns. No proper websites to attract learners from other countries as we are in ICT era and the concept of global village.

6. Acceptance as the Language of Rituals-

Sanskrit in our country is accepted by the people as only in Pooja on religious occasions. It can be mentioned here the rituals are still always done with Sanskrit language although not understood by the clientele.

7. No indigenous efforts to develop on computer-

With the grammar based on scientific rules, it is the language of computer. It can be more popular and acceptable all over the world, if software approches can be developed for on line teaching of Sanskrit. We are not prompt to develop Indigenous programmes to develop software.

8. No Effective Techniques for Teaching Sanskrit-

There are no effective techniques, models and approaches for making Sanskrit attractive. We are not teaching Sanskrit with

the use of effective hardware and software techniques. At school level there are no interesting material aids available such as animation, charts and audio visuals.

9. No Road Map for Expansion-

There is no planning for exploring our rich and classical Sanskrit literature. As discussed above, we have no good policies, no innovative and attractive methods of teaching, no software, .no e-methods etc to develop and explore the language at national and international levels.

10. **Less scope and little Opportunities for Jobs.**

This language is not accepted and opted for career. The scope for jobs are also getting restricted.

11. No environment for communication

Today we are forgetting our ancient language day by day. There is no question for interacting in Sanskrit. There are only few persons who speak in Sanskrit.

Suggestions-

Today we are facing a number of challenges in accepting Sanskrit as a language of people with the background and history of classical and ancient language. It is very serious issue for us that our ancient and classical language with rich and scientific grammer is going towards extinction and leading towards dead language. There is need to think and to make it as popular as it was in past, So that our coming generation can accept this like Sanskrit other foreign languages. It is suggested that efforts at different levels may be done:

A. For Policy Makers

1. There is need to start Sanskrit at the level of Primary Education as compulsory as Hindi or mother tongue language and English. The child will start learning Sanskrit along with these languages. When a child can be taught the foreign and Inter-

national language and child learns it successfully then there is no question of him not learning of Sanskrit.

2. This language can also be started from primary level for computer literacy. Nowadays we are teaching computer literacy in English. Why we do not start Sanskrit for computer literacy along with Hindi and English?

3. Compulsory foundation courses could be started for such students who never studied Sanskrit at any level of education so that our student will be aware and know our Ancient and Classical Sanskrit Literature. Thus students returning from abroad will not ask their parents and teachers about Vedas and Upanishads, about which they face questions in other countries.

B. For teachers

1. To make the subjects interesting and acceptable,it is the duty of a teacher that they develop such animations, material aids, software and audio-visuals which will attract our new generation to learn Sanskrit. Programmes should be developed for e- learning of Sanskrit.

2. For teaching at primary level, new innovative and attractive techniques of teching Sanskrit may be developed such as play way method, Antakshary methods etc.

3. The traditional methods of Sanskrit teaching should be enriched by the use of ICT. Thus, there is need to develop new Models of teaching Sanskrit.

4. To teach Sanskrit as fun such as Shashtrarth method, Antakshari method. Old traditional evaluative techniques as Shalaka parikshan (oral exam) should also be added along with new techniques of evaluation.

C. Scholars of Sanskrit

1. Scholars of Sanskrit should develop translations in other Indian and foreign languages so that the people of other languages know about the our Sanskrit Sahitya. Until or unless,

we do not accept the idea of sprinkling our Sanskrit Language with other languages we can not spread the uniqueness of the Sanskrit all over the globe.

2. It is the duty of our teachers and scholars of Sanskrit that they should develop some software programmes so that anybody from anywhere on the globe can read and learn Sanskrit.

3. If we think on developing e-programmes, this will definitely create new job opportunities for our young generations.

D. Especially for Sanskrit Universities

The Researches, Dissertation works and Projects completed under different schemes written in Sanskrit should also be translated in other languages so that the people of other countries will be aware of our researches.

Thus, it can be said that there is need to re-think, to revise our policies and re-visit our methods of teaching of Sanskrit with new parameters. This is the era of knowledge where we can disseminate knowledge with the help of ICT easily from one end to another end of the world. This can be achieved by developing new programmes to make it known and popular among the people.

Empowering Sanskrit Education Issues and Challenges

(IN THE PROSPECTIVE OF JAMMU & KASHMIR)

Dr. Jagadish Raj Sharma

Associate Prof.

Rashtriya Sanskrit Samsthan (D.U)

Sri Ranbir Campus, Kot Bhalwal, Jammu, J&K – 181122

The Sanskrit Language is the root of Indian civilization and its great cultural heritage. The knowledge of Sanskrit is the supreme and the old. All the languages of India as well as of the whole world are derived from Sanskrit. Four Vedas, six Vedangas (Shiksha, Nirukta, Vyakarna, Vaisheshika, Chhandas, Jyotisha and kalpa). Six Darshan Shastras – Sankhy, Yoga, Nyaya, Nyaya-vaisheshika, Vedanta, and Mimansas. Three Nastik darshanas- Baudha darshana, Jain darshana, charwak - all are in Sanskrit In addition to the said, Ramayana, Mahabharata, Purana, upapurana, Agamas, Tantras, Kashmir shaivism are all in Sanskrit Above all, Rigveda is the oldest scripture in the whole world. Before partitation in 1947, in J&K, there were following institutions of Sanskrit –

1. Ragunath Sanskrit Mahavidyalaya 1835.
2. Sanskrit Pathshala in Prade Grond Jammu.
3. Sanskrit Pathshala Purmandal.
4. Sanskrit Pathshala Udhampur.
5. Sanskrit Phathshala Mujaffarabad.

6. Sanskrit Phathshala Poonch.

7. Sanskrit Phathshala Shrinagar.

Out of these, only Shri Ragunath Sanskrit Mahavidyalaya was in existence up to 1971 and that was taken over as shri Ranbir, Kendriya Sanskrit Vidyapeetha Jammu by the Rastriya Sanskrit Sansthan, Ministry of HRD, Edu. Department, Go-I New Delhi. Now this institution is named as shri Ranvir Campus under the Rashtriya Sanskrit Sanstan, Deemed University. In addition, there are two Pathshalas one is shri Ragunath Sanskrit Mahavidyalaya Birpur and the second is Shri Gangdev Sanskrit Mahavidyalaya Sundubani. But both the institutions are not properly nourished and poor Sanskrit education is being given to the students, whose strength is reducing continuously. MATA SHRINE BOARD, has also initiated Sanskrit Pathashala at CHARNPADUKA KATARA. Jammu University has a P.G department of Sanskrit and also in Kashmir University P.G department of Sanskrit is existing. In Ladhakh, there is also a Buddha study Centre. The issues and challenges being faced in Sanskrit studies in J&K are as follows-

1. Delete of Sanskrit in at high school level by J&K Board

In J&K Board there was a Provision of teaching Sanskrit from 6th standard to 10th standard from 1947 up to 1984 as a Compulsory Elective subject. The students may take either science or Sanskrit or FARACEE or Drawing. Sanskrit Commission (1954-56) had also recommended that the study of Sanskrit should be made compulsory at least from 6th standard to 10th standard but the kothari Commission (1964-66) had advocated the importance of Sanskrit studies but, he had deleated Sanskrit at High School level There is no study of Sanskrit at high school level Only 20 marks are allotted for Sanskrit paper at 9th & 10th level. These marks are also not included in total marks and reflect division.

2. Sanskrit at +2 level

There are only 30% Higher Secondary +2 Schools where Sanskrit is taught as an Optional Elected Subject. Whereas, in 70% Schools at +2 level, there is no provision of teaching Sanskrit in Jammu province. Whereas in Kashmir province, there is no provision of Sanskrit studies at all. In both the provinces, the government should take steps to introduce Sanskrit up to 12th standard in all the High and Higher Secondary Schools.

3. Meagre strength of Students at degree level-

Due to no provision of Sanskrit studies at feeder classes up to 10th class there is a very little strength at +2 level. This is the reason that students who study Sanskrit at graduate level are figure countable. Even in the Ranvir Campus of R.S.S.(D.U) the strength of students is reducing continuously and at the Post-graduates level there is also not too much strength who study Sanskrit.

4. Lack of employment opportunities-

Because there is no study of Sanskrit at High and Higher Secondary level. So, there are a few posts of lecturers at +2 level and also at degree Colleges. So due to lack of employment, only the students of far flung areas and of poor background come to study Sanskrit.

5. Propagation of Science and Management Subjects–

However the focus of the modern youths is towards pragmatism and is not towards Idealistic philosophy. So the intelligent students study Science and Management subjects so as to earn livelihood, money and prosperity and only a few people hanker about knowledge. i.e. of Sanskrit

6. Propagation of Western culture and language –

The modern generation is interested in Western culture and living. They want to live in prosperity and easy life. Even the poor people want to send their child in English medium schools because due to study of English, a wider scope of liveihood and earning money is available in the country and also in the abroad. They lack interest in own language and Sanskrit. Even in Kendriya Vidyalayas the study of French, German, Mandarin (Chinese) are being introduced.

7. Lack of Propagation of literature in Sanskrit.

In the past 90% (ninety percent) of the Sanskrit writers are from Kashmir such as Ruyyat, Keyyat, Mammat, Jagannath, Somnath, Abhinav Gupt, Utpal Deva etc. But in the present, there are very few scholars in Kashmir and in Jammu. There are also figure countable scholars i.e. Dr. Ved Kumari Gai, Dr. Ram Pratap, Dr. Prytam Chander Shastri, Dr. Satpal Srivatsav, Dr. Vishav Murti Shastri, Dr. Ram Chandra Shastri. All retired from their services. There is practically nothing being written in the genre of fiction. Even translational literal i.e. translations from other languages into Sanskrit is equal to nil. For propagation of a language, genres such poetry, novels, dramas are needed required to be constantly written.

8. Lack of Sanskrit Academies .

In Jammu and Kashmir – there is no government sponsor Sanskrit Academy as in some other states, where publications Seminars, Drama and other folk tales can be propagated. Only one Sanskrit Academy was started by Dr. Yash Pal Khajuria but its activities and functions are cold. So there should be provision in the state govt, as well as in the central Government to establish Sanskrit Academy at Jammu for arts and culture to propagate Sanskrit learning and its literature.

9. Lack of Functioning of Kashmir Shaiv Darshan Unit at Shri Ranvir Campus, Jammu –

Rashtriya Sanskrit Sansthan had established a Kashmir Shaivaism Unit at Jammu in 1978-79 . It has published some books of Kashmir Shaivism and also published an Encyclopedia of Kashmir Shaivism in two volumes. But slowly and steadily there is only name of the Kasmir unit is existing incumbent nor any facility is provided in this unit. So, there is urgent need to revive this institution for propagation of Sanskrit Specially Kashmir Shaivism.

10. Lack of care about manuscripts and rare books.

The Maharaja Ranbir Singh has collected more than 5000 manuscripts of various shastras, Kashmir Shaivaism, Tantras, Ayurved etc. Most of Manuscript are in Sharada lipi. They are required to be transcribed in Devnagari lipi and their translation in Hindi, English languages. Same is the condition prevailing in the Library of Kashmir University, where thousands of manuscripts are available in Sanskrit also written in Sharada lipi. They are also required to be transcribed into Devanagari lipi and translate in Hindi and English.

To conclude this, I may add that the Govt. of India, Ministry of HRD, Education Department has established Shri Ranvir Sanskrit Campus at Jammu and there is provision to propagate Sanskrit through quarterly **'Sanskrit Sambhasan Shivar'** throughout the Jammu and Kashmir state in Jammu Province under the chairmanship of Prof V.N. Shastri The Supreme court of India has also issued instructions to include Sanskrit teaching at high school level. The Govt. of Jammu & Kashmir should review its syllabus of studies of High and Higher Secondary schools to include Sanskrit subject from 6th standard to 10th standard and also at Higher Secondary level as Compulsory Elective Subject.

The appropriate arrangement of teachers should be made in the schools and lecturers at Degree level. The people should be made aware of rich cultural heritage of Sanskrit and its literature. No culture can survive for a long period without knowing its roots that are available in Sanskrit. The Sanskrit is being taught in most of the universities of the world. Oxford, Cambridge, Howard and 18 universities of Germany, Russia France, Denmark, China , etc. Because they want to know India and its culture and philosophy, Spirituality etc. As English is the communication language of the world, so Sanskrit is the language of spirituality and mother of all the languages of the world so it is the Duty of all the youths who study Sanskrit, and its scholars, and learners of Sanskrit to take sincere steps to make the language as the language of the masses so that India may get its past glory of **Jagadguru** in the whole world . Let the thought of "**Vishwam Eakam Needam**", VASUDEVA KUTUMBAKAM '**Sarve Bhavantu Sukhinaha**' may prevail there. The saying of the Socretes **that I am the resident of the whole universe** may prevail over there.

Govt. of India has taken steps in this direction and has announced and established a Sanskrit Commission under the chairmanship of Dr. Satyavrata Shastri, an eminent Professor of Sanskrit University of Delhi and renouned Scholar and Poet, to review of Sanskrit studies of Sanskrit in the whole country and prepare a Final Report for Future Guidance of the Government.

Professionalism In Teacher Education

Shri Manoj Kumar Meena
Assistant Professor, Dept of Education S.L.B.S.R.S Vidyapeetha

Teaching and coaching opportunities have broadened from the traditional school seettint to the non-school setting and from school-aged population to people of all ages, ranging from preschoolers to senior citizens. Teaching opportunities in the school setting are available at the elementary level, secondary level, and in higher education. Prospective teachers may also teach physical education in adapted physical education programmes and in professiona preparation programmes. In the youth agencies, resorts, the Armed Forces, correctional agencies, and in service organizations. Many individuals choose teaching career because of their strong desire to work with people, personal interests, and the nature of the job. Individuals desiring to pursure a teaching career, regardless of setting, should be cognizant of the numerous advantages and disadvantages of such a cacrrer.

Many prospective physical educators aspire to establish a carrer as a coach. Some of these prospective physical educators seek a dual career as a teacher and a coach, while others desire solely to coach and view a teaching career as a mean to attain their ultimate ambition. The prospective coach should be knowledgeable of the benefits and drawbacks of this career.

In an effort to improve teaching, researchers have sought to identify characteristics of effective teachers.

They determined that effective teachers possess organizational, communication, human relations, instructional, and motivational skills. Teachers have a myriad of responsibilities; their responsibilities may be classified as instructional, managerial, and institutional in nature. Coaching is similar in many respects to teaching. Effective coaches possess many of the characteristics of effective teachers and must assume the same responsibilities as well.

One problem that has become increasingly prevalent among teachers and coaches in burnout. Burnout is physical, mental, and attitudinal exhaustion, The causes of burnout are many, and personal problems may interact with professional problems to exaggerate burnout. There are also a variety of solutions to this problem. Many scholars emphasised on physical & mental fitness of individual as said by Swami Vivekananda.

"First of all, our young men must be strong. Religion will come afterwards. Be strong. my young friends, that is my advice to you. You will be nearer to heaven through football than through the study of the Gita. These are bold words, but I have to say them, for I love you. I know where the shoe pinches. I have gained a little experience. You will understand the Gita better with your biceps, your muscles, a little stronger. You will understand the mighty genius and the mighty strength of Krishna better with a little of strong blood in you. You will understand the Upanishads better and the glory of the Atman when your body stands firm on your feel, and you feel yourselves as men."

Many strategies can be used by prospective teachers and coaches to enhance their marketability. They can build on their talents and interests, take

additional cause work in a supporting area, and gain much practical experience as possible.

If a person is interested in getting into public. Schools or in non-school settings, he/she can often enhance both his/her marketability amd his/her ability to teach by building on your assets and interests. Through careful planning of your programme and wise use of your electives and practicum experiences he/she can easily improve his/her chances of gaining the professional position he/she desires. Many of the same strategies are applicable to coaching as well.

One can enhance his/her opportunities to teach in the public schools in several ways. One way is to build on talents or skills that he/she already possess. For example, the need is great for bilingual educators. Perhaps he/she have gained proficiency in a second language because of his/her family background, the location in which he/she grew up, or foreign language courses studied in secondary school. These language skills can be built on with further course work at college or university level.

Second, additional course work can be beneficial in broadening the abilities of the prospective teacher. Courses in the area of adapted physical education are an asset regardless if one is interested in working only with special needs children or not. Since adapted physical education places an emphasis on individualized instruction, the knowledge gained from its study can be applied to normal children as well as those children with special needs mainstreamed into regular physical education classes. Additional courses in health may be helpful because physical educators are often expected to teach one or two health classes. The close relationship between wellness and fitness makes knowledge of health

important to the practitioner.

Another possibility, depending on the state in which anyone plan to teach, is to gain certification to teach in a additional academic area. If he/she enjoy other areas such as math, science, sanskrit or health, dual certification would enable him to quality for additional jobs such as a teaching position that had a teaching load of one-third math and two-thirds physical education Certification is also a popular choice that enhances guidance and counseling one's credentials. To gain dual certification several courses in his/her alternate area of study are required. Often, the number of coursed required for certification may not be many more than required by your college or university for a minor. The education department in the state in which he/she plan to teach can provide he/she with additional information about the requirement for certification.

Individuals interested in teaching in a nonschool setting can enhance their marketablility in just the same way as individuals preparing for a teaching position in the public schools. Depending on where one seeks employment, having a bilingual background would be an asset. Experience in adapted physical education could be useful in working with individuals of different abilities and ages. Courses in Math and business may be helpful if one is employed in a commercial sport club or fitness center, or community sport programme, where often managerial duties in addition to teaching are part of the responsibilities. Because many of these organizations offer some type of health counseling and the interest of many of the clientale in health, courses in health would by an asset as well. Many employers may view possession of a teaching certificate by someone seeking to teach in these nonschool setting as an asset.

Expertise in one or several sport areas may also be a plus as would possession of specialized certifications.

In the coaching realm one's previous experience as an athelete in the sport is an asset. Many former athletes have capitalized on their experience to secure coaching positions. Previous work as an assistant or head coach certainly is in one's favour. Professional contacts, officials ratings in a sport, and membership in a professional organization are helpful in getting hired or advancing. Many states require that coaches hold teaching certification; holding such certification gives one more flexibility in selecting from job opportunities.

Finally, one can enhance one's credentials by gaining as much practical experience as possible working with people of all ages and abilities. This holds true whether you are seeking work in a school or nonschool setting or in coaching. This experience can be banned through volunteer work, part-time employment, summer employment, or through supervised field-experiences sponsored by your college or university. Being able to cite such practical experiences on your resume may prove invaluable when you are seeking to gain employment. Membership in professional organizations and professional contacts may also be helpful in securing employment.

Prospective teachers and coaches can enhance their marketability. Building on one's skills, taking additional courses, and gaining as much practical experience as possible will increase your options and enhance your opportunities for employment.

राष्ट्रीय संगोष्ठी
मुद्दे एवं

Prof. R.K. Pandey
Prof. K.P. Pandey

Prof. Lok Manya Mishra